दो विश्व युद्धों

के बीच

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध

[१९१९ — ३९]

ई० एच० कार

लक्ष्मी नारायण अग्रवाल
प्रकाशक व पुस्तक विक्रेता
हॉस्पिटल रोड, आगरा ।

मूल्य ६)

प्रकाशकीय

यह पुस्तक अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध व रोचक ग्रन्थ International Relations Between The Two World Wars : E. H. Carr का हिन्दी रूपान्तर है। यथा संभव रूपान्तर को सरल, बोधगम्य एवं भाषा की दृष्टि से वैज्ञानिक बनाने की चेष्टा की गई है। फिर भी कार्य दुस्तर है।

पुस्तक के मूल लेखक श्री ई० एच० कार ने रूपान्तर के निमित्त आज्ञा प्रदान की, इसके लिए हम उनके आभारी हैं। इसका रूपान्तर श्री राजमल जैन ने किया था और अब इस द्वितीय सस्करण का सशोधन तथा परिवर्धन श्री एस० आर० महेश्वरी, लेक्चरार, राजनीति विभाग, आगरा कॉलेज ने किया है। इस प्रकार यह पुस्तक सभी दृष्टियों से और भी पूर्ण तथा उपादेय बना दी गई है।

विषय-सूची

विषय प्रवेश

मानचित्र सूची

विषय-प्रवेश
(INTRODUCTION)
शांति समझौता
(Peace Settlement)

प्रथम विश्व-युद्ध की अवधि चार वर्ष तथा तीन महीनों से कुछ अधिक ही थी। युद्ध का प्रारम्भ २८ जुलाई, १९१४ को सर्बिया (Serbia) पर ऑस्ट्रिया-हंगरी द्वारा आक्रमण किए जाने से हुआ। युद्ध की समाप्ति ११ नवम्बर, १९१८ को हुई जब मित्र राष्ट्रों ने जर्मनी से विराम सन्धि (armistice) की।

मित्र और साथी राष्ट्रों (Allied and Associated Powers) ने १९१९ मे जर्मनी से वर्सेलीज (Versailles) की सन्धि (२८ जून), ऑस्ट्रिया से सेन्ट जर्मन (St. Germain) की सन्धि (१० सितम्बर), बलगेरिया से न्यूइली (Neuilly) की सन्धि (२७ नवम्बर) तथा १९२० में हंगरी से ट्रिएनॉं (Trianon) की सन्धि (४ जून) सम्पन्न की। किन्तु टर्की के साथ अंतिम शांति सन्धि (treaty of peace) पर २३ जुलाई, १९२३ को जाकर कहीं लुसाने (Lausanne) मे हस्ताक्षर हो सके। यह सन्धि ६ अगस्त १९२४ को अमल में आई और उसके बाद ही सारे ससार में पुन. विधिवत् शांति स्थापित हो सकी। इसी बीच प्रशान्त महासागर में हित (interest) रखने वाले राष्ट्रों का एक सम्मेलन १९२१-२२ के शीत काल में वाशिंगटन में हो चुका था। इस सम्मेलन में, इन राष्ट्रों ने कई सधियाँ की थी जिनका उद्देश्य यह था कि सुदूर पूर्व (Far East) में पूर्व स्थिति (status quo) दृढतापूर्वक कायम रखी जाए। इन सभी सधियो और इनके कारण की गई अनेक छोटी-मोटी सन्धियों और इकरारनामों (agreements) को शांति समझौता कहा जा सकता है। प्रथम और द्वितीय विश्व-युद्ध के बीच की अवधि में हुई अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप की प्रायः प्रत्येक राजनैतिक घटना प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इस समझौते का ही परिणाम थी; इसलिए यह आवश्यक है कि हम अपना अध्ययन इसकी मुख्य मुख्य विशेषताओं पर एक संक्षिप्त दृष्टिपात करते हुए प्रारंभ करें।

योरोपीय समझौता
(The European Settlement)

वर्सेलीज की सन्धि में कुछ ऐसी विशेषताएं थी जिन्होने इस सन्धि के परवर्ती (subsequent) इतिहास को बहुत प्रभावित किया।

एक तो यह सन्धि जर्मन प्रचारको के सुपरिचित शब्दो में "आरोपित शांति" (dictated peace) स्थापित करने वाली सन्धि थी। वह विजेताओं द्वारा विजितों पर लादी गई थी और उसका आधार परस्पर आदान-प्रदान नही था। वैसे तो युद्ध समाप्त करने वाली लगभग प्रत्येक सन्धि ही, एक सीमा तक, आरोपित शांति स्थापित करने वाली संधि होती है किन्तु वर्सेलीज की संधि में आरोप या थोपने का भाव आधुनिक युग की किसी भी पिछली शांति सन्धि की अपेक्षा अधिक स्पष्ट था। वर्सेलीज में जर्मन प्रतिनिधिमंडल को सन्धि के प्रारूप (draft) पर लिखित आलोचना करने का केवल एक ही अवसर दिया गया था। उसकी कुछ आलोचनाओं पर ध्यान भी दिया गया किन्तु संशोधित (revised) संधि उसके हाथो मे इस धमकी के साथ सौंप दी गई थी कि यदि उस पर पाँच दिन मे ही हस्ताक्षर नहीं किये गए, तो युद्ध पुनः प्रारम्भ कर दिया जायगा। जर्मन प्रतिनिधिमंडल का कोई भी सदस्य प्रारूप दिए जाने और सन्धि पर हस्ताक्षर किए जाने के दो औपचारिक (formal) अवसरो को छोड़ और किसी भी समय मित्रराष्ट्रों के प्रतिनिधियों से आमने-सामने नही मिला। इन अवसरो पर भी साधारण सामाजिक शिष्टाचार का पालन नहीं किया गया। जर्मनी की ओर से हस्ताक्षर करने वाले दोनो ही प्रतिनिधियो को हस्ताक्षर-विधि के समय मित्रराष्ट्रों के प्रतिनिधियो की बराबरी से नही बैठाया गया अपितु, इसके विपरीत, पहरे में ही उन्हे अपराधियो की भाँति हॉल के भीतर और बाहर लाया-लेजाया गया। इन अनावश्यक अपमानो के, जिनका औचित्य केवल यही हो सकता है कि युद्ध की तीव्र कटुता अब भी अवशिष्ट थी, जर्मनी में व अन्यत्र व्यापक मनोवैज्ञानिक परिणाम हुए। उन्ही के कारण "आरोपित शांति" की धारणा ने जर्मन लोगो के मन में घर कर लिया और जर्मनो में यह विश्वास सामान्य रूप से फैल गया कि उपरोक्त परिस्थितियो में जर्मनी से कराये गए हस्ताक्षर उस पर नैतिक रूप से बंधनकारी (binding) नही हैं। जर्मन लोगो

की इस धारणा को अन्य देशो के अधिकाश लोकमत ने भी सहज में ही स्वीकार कर लिया।

दूसरे, वर्सेलीज की सन्धि पिछली किसी भी शाति सन्धि से इस बात मे भिन्न थी कि उसका विज्ञापित आधार युद्ध के समय प्रचलित किये गए कुछ व्यापक सिद्धान्त थे। इनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध अमरीकी राष्ट्रपति विलसन के चौदह सूत्र (Fourteen Points) हैं जिन्हे जर्मनी ने विरामसन्धि से पहिले ही समझौते के आधार के रूप मे स्वीकार कर लिया था। मुख्यत. विल्सन द्वारा इन सिद्धान्तो का दृढ समर्थन किए जाने के कारण ही, इस सन्धि की नीव विशुद्ध आदर्शवाद पर थी। इस सन्धि मे यह व्यवस्था की गई थी कि निम्नलिखित सस्थाओ की स्थापना की जाय :—राष्ट्र-सघ (League of Nations) जिसका प्रमुख उद्देश्य शाति बनाए रखना हो, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन (International Labour Organisation) जो कि श्रमिकों की स्थिति का विनियमन (regulation) करे; और जर्मनी द्वारा सौंपे जाने वाल उपनिवेशो में सरक्षणात्मक शासन प्रणाली (mandatory system of government)। सन् १९१९ के बाद की नई विश्व व्यवस्था (new world order) की ये सस्थाएँ एक नियमित और आवश्यक अंग बन गई। जो भी हो, सन्धिकर्त्ताओ द्वारा विजेता राष्ट्रो की तात्कालिक आवश्यकताओ के साथ आदर्शवाद का मेल बैठाने के प्रयत्न के अन्य परिणाम इतने शुभ नही रहे। यही कारण था कि मूल चौदह सूत्रो के साथ सन्धि के कुछ भागो की तुलना कर उनके दोष दिखाना आलोचको के लिए कठिन नहीं रह गया। यह भी विवादास्पद था कि जो क्षेत्र (territories) जर्मनी से अलग कर पोलैंड को सौंपे गए 'निर्विवाद रूप से पोल आबादी' के थे, या जर्मनी से उसके समुद्र पार के सारे प्रदेश छीन कर 'समस्त औपनिवेशिक दावो का अबाधित, उदार व पूर्णतया निष्पक्ष निबटारा' किया गया था। इसके साथ ही जर्मनी और ऑस्ट्रिया का सघ बनाने का निषेध (prohibition), विशेषकर उस स्थिति में, निराधार था जब कि समझौतो के लिए मित्र-राष्ट्रो ने जनता द्वारा आत्म-निर्णय (self-determination of peoples) के सिद्धान्त को पथ-प्रदर्शन के लिए स्वीकार कर लिया था। सिद्धान्त और व्यवहार में इन और इसी प्रकार की अन्य असगतियो ने उन लोगो को आलोचना का अवसर

दिया जिनका यह मत था कि वर्सेलीज की सन्धि एक कलुषित दस्तावेज (tainted document) थी और मित्र-राष्ट्रों ने विरामसन्धि की शर्तों का ही उल्लंघन किया था।

वर्सेलीज की सन्धि के अनुसार जर्मनी पर लगाये गए बन्धन, कुछ ही अपवादों को छोडकर, या तो आपसी समझौतों के द्वारा या समय की गति के साथ-साथ या जर्मनी द्वारा अस्वीकार (repudiation) कर दिये जाने के कारण, अन्ततः रद्द हो गए।[1] उनमें से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण [दण्ड (penalties), *क्षतिपूर्ति* (reparations), *असेनीकृत क्षेत्र* (demilitarised zone), नि.शस्त्रीकरण (disarmaments)] का विवेचन अगले अध्यायों में किया जायगा। यहाँ योरोपीय क्षेत्रों सम्बन्धी व्यवस्था का केवल सार दे देना ही आवश्यक है। पश्चिम मे, जर्मनी ने फ्रास को आलसेक (Alsace) और लॉरेन (Lorraine) वापस दे दिये और यूपेन (Eupen) तथा मालमेडी (Malmedy) के दो छोटे-छोटे क्षेत्रखण्ड बेल्जियम को सौंप दिये तथा लक्जेमबर्ग के साथ पुराने चु गी समझौते को समाप्त कर दिया। सार (Saar) का कोयला-खदान क्षेत्र पन्द्रह वर्षों के लिए राष्ट्र-सघ आयोग (commission) के प्रशासन (administration) में सौंप दिया गया और यह व्यवस्था की गई कि इस अवधि के बाद उसके भाग्य का निपटारा जनमत (plebiscite) द्वारा किया जाये। किन्तु इन खदानों का स्वामित्व फ्रास को उसकी (फ्रास की) उन कोयला-खदानों की क्षतिपूर्ति के रूप में हस्तान्तरित (transferred) कर दिया गया जो कि युद्धकाल में नष्ट हो गई थी। दक्षिण में, जर्मनी ने एक छोटा सा भू-भाग नवगठित चेकोस्लोवाकिया राज्य को सौंप दिया, इसके साथ ही जर्मनी पर यह प्रतिबन्ध लगा दिया गया कि राष्ट्र-सघ परिषद् (Council of the League) की निर्विरोध स्वीकृति (unanimous consent) के बिना वह ऑस्ट्रिया के साथ सघ नही बना सकेगा। उत्तर मे, श्लीसविग की ग्रैंड डची (Grand Duchy of Schleswig) के एक भाग में, जिसे

---

1 "The servitudes imposed on Germany in the Treaty of Versailles were eventually, with few exceptions, abrogated either by agreement, or by lapse of time, or by repudiation on the part of Germany."

Pre-War boundaries
New boundaries
Territories ceded by Germany under the Versailles Treaty
Plebiscite Areas
0 50 100 150 200 Miles
NORTH SEA
HOLLAND
BELGIUM
Brussels
FRANCE
Paris
R Seine
Cologne
Eupen Malmedy
LUX
SAAR TERRITORY
ALSACE LORRAINE
SWITZERLAND
R. Rhine
Hamburg
R Elbe
Berlin
GERMANY
R. Oder
Prague
CZECHOSLOVAKIA
R. Danube
AUSTRIA
Vienna
Budapest
HUNGARY
POLAND
Warsaw
R Vistula
Marienwerder
EAST PRUSSIA
UPPER SILESIA
Teschen

१८६४ में डेनमार्क ने प्रशा से छीन लिया था, जनमत लेने का निश्चय किया गया। सन् १६२० की फरवरी और मार्च में वहाँ जनमत लिया गया जिसका परिणाम सन्तोषजनक स्पष्ट निर्णय हुआ। उत्तरी भाग में, ७५ प्रतिशत मत डेनमार्क के पक्ष मे पडे किन्तु दक्षिणी भाग ने इससे भी अधिक बहुमत जर्मनी के पक्ष में दिया।

पूर्व मे, जर्मनी ने मेमल (Memel) बन्दरगाह और उसकी पार्श्व-भूमि (hinterland) प्रमुख मित्र और साथी राष्ट्रो (Principal Allied and Associated Powers) को इसलिये सौंप दिये कि वे अन्त में उन्हें लिथुग्रानिया को हस्तान्तरित कर दें। पोलैंएड को उसने पोजेन (Posen) प्रान्त और लगभग चालीस मील समुद्री किनारे के प्रदश सहित पश्चिमी प्रशा के प्रान्त का अधिकाश भाग—तथाकथित गलियारा (corridor) जो कि पूर्वी प्रशा को शेष जर्मनी से अलग करता है—सौंप दिया। डानजिग (Danzig) नामक एक जर्मन नगर जो कि पोलैंएड (जिस चौदह सूत्रो में "अबाधित और सुरक्षित समुद्री मार्ग की सुविधा" देने का वचन दिया गया था) का ही एक प्राकृतिक बन्दरगाह था, पोलेएड के साथ सधि सम्बन्धो वाला एक स्वतत्र नगर (Free City) बन गया। यह नगर पोलैंएड के चुगी क्षेत्र (customs area) में सम्मिलित हो गया और उसने अपने वैदशिक संबध पोलैंएड के हाथो मे सौंप दिए। इसके अतिरिक्त पश्चिमी प्रशा के मेरीनवर्डर (Marienwerder) और पूर्वी प्रशा के एलेन्स्टीन (Allenstein) जिलो तथा समस्त ऊपरी सिलेशिया (Upper Silesia) मे जनमत लने की व्यवस्था भी की गई थी। जुलाई, १६२० मे मेरीनवर्डर और एलेन्स्टीन में जनमत लिया गया जिसका परिणाम अत्यधिक जर्मन बहुमत रहा। किंतु दोनो ही जिलो के जिन थोडे से गाँवो ने पोलैंएड के पक्ष में बहुमत दिया उन्ह पोलैंएड को हस्तातरित कर दिया गया। ऊपरी सिलेशिया मे जनमत लना अगले वर्ष तक के लिए स्थगित कर दिया गया। इस कारण दोनो पक्षो में बहुत दुर्भावना फैली और गभीर हिंसात्मक उपद्रव भी हुए। अन्य जनमत जिलो (plebiscite-districts) से ऊपरी सिलेशिया इस बात मे भिन्न था कि उसमें कोयले और लोहे की प्रचुरता थी तथा विस्तृत और घनी आबादी वाला औद्योगिक क्षेत्र भी उसमें शामिल था। मतदान से कुछ निर्णय नही

हो सका। लगभग ६० प्रतिशत मत जर्मनी के पक्ष में पड़े तो करीब ४० प्रतिशत पोलैण्ड के पक्ष में। किन्तु कुछ स्पष्ट ग्रामीण क्षेत्रों को छोड़ कर बाकी क्षेत्र में जनमत का परिणाम इतना छितरा हुआ था कि किसी निर्णय पर पहुँच सकना कठिन हो गया। एक तरफ तो ब्रिटिश और इटेलियन आयुक्तों (commissioners) ने और दूसरी तरफ फ्रांसीसी आयुक्त ने परस्पर विरोधी सिफारिशें प्रस्तुत कीं। मित्र-राष्ट्रों की सर्वोच्च परिषद् (Supreme Council) इन सिफारिशों के संबंध में एकमत नहीं हो सकी और उसने न जाने किस दुष्प्रेरणावश, यह मामला राष्ट्रसंघ परिषद में भेज दिया। दूसरों वार भी गतिरोध की आशंका से परिषद ने फ्रांसीसी आयुक्त तथा ब्रिटिश और इटेलियन आयुक्तों द्वारा प्रस्तावित नीति के लगभग मध्य का मार्ग अपनाया। चूँकि ब्रिटिश-इटेलियन नीति मतदान के परिणामों को ही यथासंभव अमली रूप दिलाने का एक सतर्कतापूर्ण प्रयत्न थी और फ्रांसीसी नीति स्पष्ट रूप से पोलैण्ड के दावों की पक्षपाती थी, इसलिए परिषद का निर्णय भी पूर्णतया निष्पक्ष नहीं कहा जा सकता। इस निर्णय से जर्मनी में रोष फैल गया और राष्ट्रसंघ के प्रारम्भिक वर्षों में ही जर्मन लोकमत को राष्ट्रसंघ के विरुद्ध बनाने में उसने काफी सहायता की। वर्सेलीज की संधि के क्षेत्रिक उपबंधों (provisions) के परिणामस्वरूप जर्मनी को योरोप में २५,००० वर्ग मील से भी अधिक भूमि और लगभग ७० लाख नागरिकों से हाथ धोना पड़ा।

अन्य योरोपीय शांति-संधियों पर यहाँ और भी संक्षेप में विचार किया जायेगा।

नवम्बर १९१८ में ऑस्ट्रो हंगेरियन राजतंत्र के पतन के कारण जर्मन-ऑस्ट्रिया एक पृथक् और विचित्र अनुपात वाला भू-भाग रह गया। उसके ७०,००,००० निवासियों में से २०,००,००० से भी अधिक नागरिक विएना में ही बसे हुए थे। बोहेमिया, मोरेविया और ऑस्ट्रियन सिलेशिया उससे अलग हो कर चेकोस्लोवाकिया का केन्द्रभाग बन चुके थे। स्लोवेनिया सहित सर्बिया (Serbia) और क्रोएशिया को मिलाकर युगोस्लाव राज्य का निर्माण किया गया था। इटली ने भी ट्रीस्ट (Trieste) और उससे लगी हुई पार्श्वभूमि पर अधिकार कर लिया। सेन्ट जर्मेन की संधि ने इन सम्पन्न तथ्यों (accom-

plished facts) को पजीयित (register) करने के अतिरिक्त और कुछ भी नही किया। आत्मनिर्णय के सिद्धात का स्पष्ट रूप से उल्लघन करने वाले दो उपबन्ध इस सधि मे भी थे। उनमे से एक का सबध ऑस्ट्रिया और जर्मनी का सघ बनाने सबधी निषेध से था। वास्तव में यह निषेध वर्सेलीज की सधि में पहिले से ही कर दी गई व्यवस्था को दोहराने जैसा था। दूसरा उपबध शुद्ध जर्मन भाषी दक्षिणी टायरोल (Tyrol) इटली को सौंपे जाने से सम्बन्धित था ताकि सामरिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण ब्रेनर का सीमात मिल जाए। किन्तु ऑस्ट्रिया की आर्थिक स्थिति इतनी खराब थी (कुछ महीनो तक विएना के लोग वास्तव मे भूखो मरते रहे) कि शाति से सम्बन्धित राजनैतिक अपमानो का उसे शायद ही अनुभव हुआ हो। मित्र राष्ट्रो ने इस भय से कि जर्मनी के साथ सघ बनाने का आन्दोलन व्यापक रूप धारण न कर ले, सन्धि के क्षेत्रेतर (non-territorial) उपबन्धो को लागू करने का कोई गम्भीर प्रयत्न ही नही किया, और ऑस्ट्रियन क्षतिपूर्ति आयोग (Austrian Reparation Commission) भी एक सहायता-सगठन (relief organisation) मात्र बन गया।

हगरी का प्राचीन राज्य भी जिसके १,७०,००,००० निवासियों मे आधे से कुछ अधिक हगरी के निवासी थे, जाति-समूहो में बँट गया। ट्रिएनाँ की सन्धि ने चेकोस्लोवाकिया, यूगोस्लाविया और रूमानिया को क्रमशः स्लोवाकिया, क्रोएशिया और ट्रासिलवानिया हस्तान्तरित किए जाने की पुष्टि कर दी। मोटेतौर पर ये निर्णय न्यायोचित थे। किन्तु जर्मनी के पूर्वी सीमात की अपेक्षा हगरी के सीमात इस बात के अधिक स्पष्ट प्रमाण है कि सन्धिकर्त्ता अपने सिद्धान्तो को मित्र-राष्ट्रो के पक्ष मे यथासभव तोडने-मरोडने और शत्रु राष्ट्र के अहित-साधन के लिए उनका उपयोग करन के लिए कुछ उत्सुक अवश्य थे। इस तोड मरोड का एकत्रित परिणाम बहुत गहरा पडा। हगरी के प्रचारको ने इन छोटे मोटे अन्यायो का अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए पूरा उपयोग किया।

हगरी के समान बलगेरिया को भी बहुत अधिक हानि उठानी पडी किन्तु उसकी अधिकाश हानि १६१६ के समझौते से नही अपितु १६१३ के शाति-समझौते के समय प्रारम्भ हुई थी जब कि द्वितीय बाल्कन युद्ध समाप्त हुआ था।

सन् १६१२ के प्रथम बाल्कन युद्ध के समय टर्कों को बाल्कन द्वीपों से निकाल बाहर करने और उसे कांस्टेंटिनोपल (Constantinople) से लगभग ५० मील दूर खदेड देने के उद्देश्य से बलगेरिया ने सर्बिया, यूनान और रूमानिया से सहयोग किया था। किन्तु लूट के विभाजन के प्रश्न पर विजेताओं मे फूट पड गई। द्वितीय बाल्कन युद्ध के समय बलगेरिया के तीनो ही पुराने साथियो और टर्को ने एक साथ बलगेरिया पर आक्रमण किया। इस युद्ध के परिणाम स्वरूप हुई सन्धि के अनुसार बलगेरिया को विवश होकर इन चारो राष्ट्रों को भूमि देनी पडी। सन् १६१६ की न्यूइली की सन्धि ने बलगेरिया की हानि पर अपनी मुहर लगा दी। बलगेरिया को और अधिक हानि में डालते हुए इस सन्धि ने सर्बिया और यूनान से लगी हुई उसकी सीमाओ में परिवर्तन कर दिया तथा रूमानिया से लगे हुए उसके अन्यायपूर्ण सीमान में कुछ भी परिवर्तन नहीं किया जो कि १६१३ मे निश्चित किया गया था। बलगेरिया की सबसे अधिक शिकायत मेसिडोनिया नही मिलने से थी जो कि प्रथम बाल्कन युद्ध में भाग लेने के बदले मे उसे दिए जाने का वचन दिया गया था। यहाँ हमारे सामने अब एक ऐसी क्षेत्रिक समस्या आ खडी हुई है जो कि अभी तक विवेचित समस्याओं से भिन्न है। जर्मनी और पोलैंएड या हगरी और रूमानिया के बीच न्यायपूर्ण सीमान निश्चित करना कठिन हो सकता था, किंतु सबधित आबादी किस मूल जाति (race) की है उसके बारे में तो कम से कम कोई सदेह था ही नहीं। मेसिडोनिया में, इस प्रारम्भिक मुद्दे को लकर ही, कटु विवाद उठ खडा हुआ। मेसिडोनिया के लोग स्लाव जाति के थे किंतु उनमें राष्ट्रीय चेतना (national consciousness) या तो कमजोर थी या उसका अभाव था। उनकी बोली (dialect) एक तरफ सर्बियन में मिल गई थी तो दूसरी तरफ बलगेरियन में। समय आने पर उन्हें पूरे बलगेरियन या पूरे सर्बियन माना जा सकता था क्योंकि वे लोग इस बात के प्रति स्वय उदासीन थे। सन् १६१३ के समझौते, जिसकी पुष्टि १६१६ में हुई, के अनुसार मेसिडोनिया का अधिकांश भाग सर्बिया को मिला और शेष भाग का भी अधिकांश यूनान के हाथ आया। किन्तु मेसिडोनिया के लोग एक ऐसी आदिम जाति के थे जिनमें लूट खसोट (brigandage) को सम्मान की बात माना जाता था। उनमें से कुछ साहसी लोग बलगेरिया चल दिए और वहाँ उन्होंने मेसिडोनियन क्रांतिकारी सगठन (Me-

cedonian Revolutionary Organisation) की स्थापना की जिसका काम यूगोस्लाव या यूनान-क्षेत्र मे समय-समय पर धावे बोलना था। इस सगठन ने सीमात के दोनो ओर की जनता में आतक फैला दिया और युद्ध के बाद के दस वर्षों से भी अधिक समय तक बलगेरिया और उसके पडोसी देशो के सबधो को कटु बनाये रखा। इस अवधि मे योरोप के अन्य किसी भी भाग की अपेक्षा मेसिडोनिया मे ही सभवतः जीवन और सपत्ति कम सुरक्षित थे।

न्यूइली की सन्धि के जिस एक और अन्य उपबध का यहाँ उल्लेख आवश्यक है, वह उस धारा से सबधित है जिसके अनुसार मित्र-राष्ट्रो ने यह वचन दिया था कि "एजियन समुद्र मे बलगेरिया को आर्थिक बहिर्भाग (economic outlet) सुनिश्चित करा दिये जायेंगे।" बलगेरिया निवासियो ने इसका अर्थ, पोलैंड की भाँति, क्षेत्रिक गलियारा (territorial corridor) लगाया। मित्र-राष्ट्रों ने बलगेरिया को यूनान के एक बदरगाह में एक कर-मुक्त क्षेत्र देने का प्रस्ताव रखा किंतु बलगेरिया निवासियो ने इसे शिरोधार्य करने की अपेक्षा अस्वीकार करना ही उचित समझा, आखिर, इस विवाद-ग्रस्त उपबध को अमल में लाने के लिए इसके बाद कुछ भी नही किया गया।

अत मे, इस बात का उल्लेख कर देना भी आवश्यक है कि नवनिर्मित राज्यो—पोलैंड और चेकोस्लोवाकिया—तथा जिन राज्यो के क्षेत्र में काफी वृद्धि हुई थी उन्हे—यूगोस्लाविया, रूमानिया और यूनान—प्रमुख मित्र और साथी राष्ट्रो से सन्धियाँ करनी पडी। इन सन्धियो के अधीन इन राज्यो ने अपने क्षेत्र में रहने वाले "मूलजातिक, धार्मिक और भाषिक (racial, religious and linguistic) अल्पसख्यको" को यह गारटी दी कि उन्हे राजनैतिक अधिकार और धार्मिक स्वतत्रता प्राप्त रहेगे तथा उनके लिए विद्यालय खोले जायेंगे और वे न्यायालयो मे तथा शासन से काम-काज पडने पर अपनी भाषा का उपयोग कर सकेंगे। आस्ट्रिया, हगरी, बलगेरिया और टर्की के साथ हुई शाति सन्धियो में भी इसी प्रकार की व्यवस्था की गई थी। किन्तु अल्पसंख्यको के सम्बन्ध मे जर्मनी का कोई कर्त्तव्य निश्चित नही किया गया। बडी विचित्र बात है कि वर्सेलीज के शाति-स्थापको ने केवल इसी मामले में जर्मनी को अन्य बडे राष्ट्रो की बराबरी का स्तर दिया था।

निकट पूर्व और अफ्रीका
(The Near East & Africa)

जुलाई, १९२३ में टर्की के साथ की गई लुसाने की संधि (Treaty of Lausanne) ही केवल एक ऐसी शांति संधि है जिसे उसके सभी हस्ताक्षरकर्ता तेरह वर्षों तक वैध और प्रभावशील (valid and applicable) मानते रहे तथा जिसे १९३६ में भी (देखिए, दसवें अध्याय का अन्तिम भाग) स्वेच्छापूर्ण समझौते द्वारा केवल एक ही बात के लिए संशोधित किया गया। ऐतिहासिक दृष्टि से, उसकी यह विशेषता कई कारणों से थी जिनकी वजह से वह अन्य शांति-संधियों से विशिष्ट हो सकी। यह संधि उस समय की गई थी जब कि युद्ध समाप्त हुए लगभग पांच वर्ष बीत चुके थे और युद्ध की कड़ुवाहट को कम होने के लिए भी अवसर मिल चुका था, वह थोपी नहीं गई थी अपितु दोनों ही पक्ष लम्बी चर्चाओं के बाद उस पर सहमत हो सके थे। उस पर हस्ताक्षर भी किसी मित्र-राष्ट्र की राजधानी में नहीं, अपितु तटस्थ देश की भूमि पर किये गए थे। जिन लम्बी और जटिल घटनाओं के कारण यह संतोषजनक संधि हो सकी, उन पर यहां एक सरसरी निगाह डालना उचित होगा।

मई १९१९ में जब कि शांति सम्मेलन (Peace Conference) जर्मनी की अधिक महत्त्वपूर्ण समस्या को सुलझाने के समय बीच-बीच में टर्की के भविष्य पर भी विचार कर रहा था, यूनानी प्रधान मन्त्री वेनिजेलास (Venizelas) ने मित्र राष्ट्रों को इस बात के लिए राजी कर लिया कि एशिया माइनर स्थित स्मर्ना (Smyrna) पर यूनानी सैनिक टुकड़ियां कब्जा कर लें। अपने कट्टर और अत्यन्त घृणित शत्रुओं द्वारा, विरामसंधि के काफी समय बाद, टर्की की भूमि का इस प्रकार अतिक्रमण (violation) किये जाने पर टर्की ने बहुत रोष प्रकट किया। इस रोष के फलस्वरूप राष्ट्रीय विद्रोह का एक व्यापक आन्दोलन उठ खड़ा हुआ जिसका नेतृत्व मुस्तफा कमाल के समर्थ और शक्तिशाली हाथों में आया। लगभग एक वर्ष में ही कमाल के दल के लोग सारे देश में छा गये और मित्र राष्ट्रों की एक नगर रक्षक सेना (garrison) के बल पर ही कांस्टेंटिनोपल में कठपुतली टर्की सरकार कायम रह सकी। खतरे की इस सूचना के बावजूद भी, मित्र-राष्ट्रों ने अगस्त, १९२० को, सेव्रिस (Sevres) में टर्की सरकार से एक शांति संधि कर ली। यह संधि वर्सेलीज

की सन्धि के ढग की ही थी और उसमें अन्य बातो के साथ ही साथ (inter alia) यह व्यवस्था भी की गई थी कि स्मर्ना पाँच वर्षों तक यूनान के कब्जे में रहे तथा उसके बाद जनमत द्वारा उसके भाग्य का निबटारा किया जाय।

जो भी हो, सेव्रिस की संधि (Treaty of Sevres) को अमल मे लाने की धुँधली सी आशा को भी यूनान की घटनाओ ने मिटा दिया। अक्टूबर, १६२० मे यूनानी शासक अलेक्जेण्डर की मृत्यु एक पालतू बन्दर के काटने से हो गई। इस घटना के बाद जो आम चुनाव हुए, उनमें वेनिजेलॉस के हाथ से सत्ता निकल गई और भूतपूर्व शासक कॉन्सटेंन्टिन (Canstantine) को, जिसे युद्ध के समय जर्मन-पक्षी (pro-Germany) भावनाओ के कारण यूनान से निष्कासित कर दिया गया था, गद्दी पर पुन बैठाया गया। इस कदम से यूनान के प्रति मित्र-राष्ट्रो की सहानुभूति हट गई—यह सहानुभूति मुख्यत. वेनिजेलॉस के आकर्षक व्यक्तित्व के कारण ही थी। अगले वर्ष, पहिले फ्रास ने और उसके बाद इटली ने कमाल सरकार से गुप्त समझौते कर लिए जो कि इस समय तक अगोरा (Angora) मे अपने पैर जमा चुकी थी। ग्रेट ब्रिटेन मे लॉयड जॉर्ज की यूनान नीति की कडी आलोचना हुई। यद्यपि यूनानी सेना स्मर्ना से एशिया माइनर के अन्तर्प्रदेश (interior) में नि शक बढ चुकी थी, तदपि यह स्पष्ट हो गया था कि अब उसे मित्र-राष्ट्रो की क्रियात्मक सहायता नही मिल सकती थी। इन परिस्थितियो मे उसका पतन (debacle) अवश्यम्भावी था। यूनानियो को धीरे-धीरे पीछे खदेड दिया गया और सितम्बर, १६२२ में कुछ भयकर मुठभेडो के बाद, मुस्तफा कमाल ने एशिया की भूमि स अन्तिम यूनानी सेनाओ को भी मार भगाया। विजय से उत्साहित हो, कमाल के लोगो ने अब कास्टेंटिनोपल (Constantinople) की ओर ध्यान दिया। फ्रांसीसी और इटालियन सरकारो ने उतावलेपन में अपनी टुकडियो को हटा लिया। परिस्थिति नाजुक हो गई और कुछ समय तक ऐसा प्रतीत होने लगा कि ब्रिटेन और टर्की में पुनः अवश्य ही युद्ध छिड जायेगा। किन्तु मुस्तफा कमाल ऐन मौके पर रुक गया। विरामसधि हो गई और लुसाने में होने वाली शाति काग्रेस के लिए रास्ता तैयार हो गया, जहाँ कि अगले ग्रीष्म मे सधि पर हस्ताक्षर कर दिये गए।

सन् १६१८ की विरामसन्धि के समय ऑस्ट्रो-हंगेरियन राजतन्त्र की भाँति ऑटोमन (Ottoman) साम्राज्य भी विघटन के रास्ते लग चुका था, उसके

विशाल अरब अधिराज्य (dominions) ब्रिटिश और फ्रांसीसी सेनाओं के कब्जे में थे। सौभाग्य से, कमालवादी आन्दोलन ने प्रारम्भ से ही ऑटोमन साम्राज्य के प्राचीन इस्लामी आधार को अस्वीकार कर, राष्ट्रीय आत्म-निर्णय (national self-determination) के आधुनिक धर्म निरपेक्ष (secular) सिद्धांत को स्वीकार कर लिया था। टर्की की नई सरकार ने अरब बहुमत वाले क्षेत्रों सम्बन्धी अपने सभी दावों को खुलेआम त्याग दिया, इस कारण शांति स्थापित करने में कोई बहुत बड़ी कठिनाई नहीं आई। योरोप में, यूनान को क्षति पहुँचाते हुए भी टर्की की सीमा एड्रियानोपल (Adrianople) से भी आगे बढ़ा दी गई; स्मर्ना में जनमत सम्बन्धी कोई भी चर्चा आगे सुनाई नहीं दी। सेव्रिस की संधि की दण्ड, क्षतिपूर्ति और निःशस्त्रीकरण सम्बन्धी धाराएँ भी ज्यों की त्यों रह गई। किन्तु कुछ आश्चर्य की ही बात है कि टर्की सरकार ने दो असैनीकृत क्षेत्र—थ्रेस (Thrace) में और जलडमरूमध्य (Straits) क्षेत्र में—अपनी ही भूमि पर स्थापित करना स्वीकार कर लिया। अंगोरा में, राष्ट्रीय सभा (National Assembly) ने अपनी प्राप्ति से सन्तुष्ट हो, टर्की को गणतन्त्र (Republic) घोषित कर दिया तथा मुस्तफा कमाल को उसका राष्ट्रपति बनाया। उसके बाद उसने धर्म-निरपेक्षता के अपने कार्यक्रम को जोरों से कार्यान्वित करना प्रारम्भ किया। सन् १६२४ के बसन्त में, उसने इस्लाम धर्म के प्रमुख ऑटोमन खलीफा का पद भी समाप्त कर दिया जो कि साढ़े चार सौ वर्षों से कांसटेंटिनोपल में चला आ रहा था।

प्राचीन ऑटोमन साम्राज्य के अरब प्रान्तों की जो स्थिति हुई उससे संरक्षणात्मक शासन प्रणाली का परिचय मिल सकता है।[1] राष्ट्र संघ के अनुबन्ध पत्र (covenant) में यह व्यवस्था की गई थी कि पराजित राष्ट्रों द्वारा सौंपे जाने वाले उन क्षेत्रों को, "जिनके निवासी आधुनिक संसार की कठिन परिस्थितियों में अपने पैरों पर खड़े होने में असमर्थ हों", "समुन्नत राष्ट्रों" (advanced nations) के संरक्षण में रखा जाए। किंतु समुन्नत राष्ट्र "यह संरक्षण राष्ट्रसंघ की ओर से नियुक्त संरक्षक राष्ट्रों (mandatories) के रूप

---

1 "The fate of the Arab provinces of the old Ottoman Empire may serve as an introduction to the mandatory system."

ही करें।" किन्तु यह कह सकना निश्चय ही सदेहास्पद था कि सरक्षक राष्ट्र किस सीमा तक राष्ट्रसघ की ओर से काम करने वाले कहे जा सकते थे। प्रश्नास्पद क्षेत्रों को जर्मनी और टर्की ने प्रमुख मित्र और साथी राष्ट्रो को सौंपा था तथा मित्र और साथी राष्ट्रो ने ही सरक्षक राष्ट्रो का भी चुनाव किया था। राष्ट्र सघ ने सरक्षण की शर्तों पर अपनी स्वीकृति दी थी। संरक्षक राष्ट्र अपने सरक्षण-क्षेत्र सम्बन्धी प्रतिवेदन (report) प्रति वर्ष राष्ट्रसघ को भेजते भी थे किंतु राष्ट्रसघ उनकी केवल मित्रतापूर्ण आलोचना ही कर सकता था। चूंकि उसने सरक्षण अधिकार नही दिये थे, इसलिए वह उन्हे वापस भी नही ले सकता था। इसके साथ ही यह भी एक कानूनी पेंच (legal conundrum) की बात थी—जिसका हल नही निकाला जा सका था—कि सरक्षित क्षेत्रो की सम्प्रभुता (Sovereignty) किसमे निहित है।

अनुबन्ध-पत्र में तीन प्रकार के सरक्षित राज्यो (जिन्हे साधारणतः 'क' (A) 'ख' (B) और 'ग' (C) सरक्षित राज्य कहा जाता है) की व्यवस्था की गई थी। यह वर्गीकरण सम्बन्धित जनसख्या के विकास की अवस्था (stage of development) के अनुसार किया गया था।

'क' सरक्षित-राज्य मे जिसके कि अधीन टर्की के भूतपूर्व प्रात किये गए थे, सरक्षक राष्ट्र का कर्त्तव्य इस प्रकार निश्चित किया गया था, "जब तक कि ये अपने पैरो पर खडे नही हो जाएं तब तक उन्ह प्रशासकीय सलाह और सहायता देना (administrative advice and assistance)"...... इसके साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया गया था कि, "सरक्षक राष्ट्र का चुनाव करते समय इनके लोगो की इच्छाओ का मुख्य रूप से ध्यान रखा जाए।" यह कहना कठिन है कि अतिम शर्त का पूरी तरह पालन किया गया था। इग्लैंड और फ्रास के बीच युद्ध के समय ही एक गुप्त समझौता हो जाने के कारण, अरब क्षेत्रो के भाग्य का निर्णय पहले हो ही चुका था। युद्ध के बाद इस समझौते को लागू करने के लिए काफी खीचातानी हुई किन्तु जनता की भावना का सम्मान करने का किसी ने नाम तक भी नही लिया। सीरिया का सरक्षण फ्रांस के जिम्मे किया गया, तथा ईराक, फिलिस्तीन और ट्रासजोर्डन का ब्रिटेन के। फिलिस्तीन का सरक्षण अंग्रेज सरकार द्वारा सन् १९१७ में दिये गए इस वचन पर आधारित था कि वह फिलिस्तीन को "यहूदी लोगो की

मातृभूमि" (a national home for the Jewish people) बना देगी। ओटोमन साम्राज्य के शेष अरब प्रांतों को स्वतंत्रता मिल गई। लाल सागर के किनारे के अरब देश का समुद्रतटीय भाग—जिसे सभी मुसलमान महत्त्वपूर्ण क्षेत्र मानते हैं क्योंकि उसमें मक्का और मदीना नामक धार्मिक स्थान हैं—हृदजाज (Hedjaz) नामक स्वतंत्र राजतंत्र के रूप में गठित हो गया। शेष अरब देश में, टर्की की सम्प्रभुता हमेशा ही नाममात्र की थी; और जहां तक इन प्रदेशों की स्थिर (settled) जनसंख्याओं का प्रश्न है, कई सुलतान, शेख और इमाम उन पर स्वतंत्र रूप से राज्य करते थे।

'ख' संरक्षित-राज्यों, जो कि अफ्रीका में जर्मनी की अधिकांश बस्तियों में स्थापित किये गए थे, की जनता को किसी भी प्रकार की प्रशासनिक स्वायत्तता (autonomy) के अयोग्य माना गया। किंतु संरक्षक राष्ट्र का केवल यही कर्त्तव्य नहीं था कि वह दासों तथा शस्त्रों के व्यापार को रोके। "पुलिस प्रयोजनों या अपने क्षेत्र की रक्षा के अतिरिक्त अन्य किसी भी उद्देश्य के लिए" (यह दोहरे अर्थ वाली भाषा ही है) देशी लोगों की भरती न करे अपितु राष्ट्र-संघ के अन्य सदस्यों का व्यापार और वाणिज्य के समान अधिकार देना भी उसके लिए आवश्यक था। पूर्वी अफ्रीका में, भूतपूर्व जर्मन उपनिवेश टैंगनिका (Tanganyika) पूरा का पूरा इंगलैंड के संरक्षण में दे दिया गया। किंतु बेल्जियन कांगो (Congo) से लगे हुए इस उपनिवेश के दो पश्चिमी प्रांत बेल्जियम के संरक्षण में रखे गये। इसी प्रकार दक्षिण में कियोंगा (Kionga) नामक बंदरगाह सीधा ही पुर्तगाल को सौंप दिया गया। पश्चिमी अफ्रीका में केमेरून्स (Cameroons) और टोगोलैंड (Togoland) दोनों ही इंगलैंड और फ्रांस के संरक्षण में बाँट दिए गए।

'ग' वर्ग का संरक्षित-राज्य, जर्मन दक्षिण-पश्चिम अफ्रीका और जर्मन प्रशान्त द्वीपों (German Pacific Islands) के लिए गठित किया गया था और इन्हें क्रमशः दक्षिण अफ्रीका संघराज्य (Union of South Africa) तथा आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और जापान के संरक्षण में रखा गया था। 'ग' वर्ग के संरक्षित-राज्यों का "प्रशासन संरक्षण-राष्ट्रों के कानूनों के अनुसार चलता था।" 'ख' और 'ग' वर्ग के संरक्षित राष्ट्रों में आवश्यक व्यावहारिक अन्तर यह था कि 'ग' वर्ग के संरक्षित राज्यों को अपने क्षेत्र में अन्य राष्ट्रों को व्यापार और वाणिज्य के समान अधिकार देना आवश्यक नहीं था।

अमेरिका और सुदूर पूर्व
(America & The Far East)

युद्ध के बाद किये गए समझौते के प्रति अमरीकी जनता का रुख कभी उग्र आदर्शवाद की ओर रहा तो कभी अत्यन्त सतर्कता (extreme caution) बरतने की ओर। तत्कालीन विदेशी मामलो के प्रति उसका यह रुख एक विशेषता लिए हुए ही था। पहिले तो अपने राष्ट्रपति के जरिए उसने इस बात पर जोर दिया कि राष्ट्र-सघ के अनुबन्ध पत्र (Covenant of the League) को भी वर्सेलीज की सधि में सम्मिलित किया जाए किन्तु बाद में, अपनी ही महासभा (Congress) के जरिए उसने इस सधि को इसलिए अस्वीकृत कर दिया कि अमेरिका अनुबन्ध के कर्त्तव्यो को निभा सकने में असमर्थ है। अमरीकी सहयोग को इस प्रकार खींच लेने के अन्ततोगत्वा परिणाम अपरिमित और दूरगामी हुए। किन्तु योरोपीय समझौते पर उसका तत्काल कोई प्रभाव नही पडा। अमेरिका ने जर्मनी, आस्ट्रिया और हगरी (बलगेरिया या टर्की से अमेरिका का युद्ध नहीं हुआ था) से पृथक् किन्तु मुख्यतः औपचारिक सधियाँ की। इस प्रकार अमेरिका पर योरोप सम्बन्धी अनिश्चित कर्त्तव्यों का भार डाले बिना ही शाति पुनः स्थापित हो गई।

सुदूर पूर्व मे, अमेरिका गम्भीर उदासीनता की अपनी नीति पर स्थिर नहीं रह सकता था। जिस जापान ने नाम मात्र से कुछ ही अधिक सैनिक गतिविधि की थी, वही जापान युद्ध समाप्त होने के बाद, प्रशात महासागर क्षेत्र के एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप मे इस समय सामने आया। वर्सेलीज की सधि के अनुसार जर्मनी से उसे चीन के शान्तु ग प्रान्त में स्थित कियोचाओ (Kiaochow) नामक "पट्टक्रामित क्षेत्र" (leased territory) मिला—यह क्षेत्र हाथ से चले जाने के कारण ही चीन ने सधि पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया था। इसके साथ ही साथ जापान को उत्तरी प्रशात महासागर स्थित जर्मनी के भूतपूर्व द्वीपो का सरक्षण भी दिया गया था। रूस को यदि छोड दिया जाए तो, चीन की सीमा पर केवल जापान ही इस समय एक बडा राष्ट्र (Great Power) था। रूसी और जर्मनी बेडो के एक साथ ही नष्ट हो जाने के कारण, जापान न केवल सुदूर पूर्व मे ही सबसे अधिक शक्तिशाली समुद्री बेडे वाला राष्ट्र रह गया था अपितु ससार मे भी वह तीसरे नम्बर की समुद्री

शक्ति हो गया था। जापान से चीन को खतरे की मात्रा और प्रशान्त महासागर में अपना सामुद्रिक प्रभुत्व (naval supremacy) स्थापित करने के जापान के प्रयत्नों से अमरीकी पर्यवेक्षकों (observers) को बहुत चिन्ता हुई। आखिर, सन् १६२१ के अन्त में, अमरीकी सरकार ने अन्य बड़े राष्ट्रों (ब्रिटिश साम्राज्य, जापान, फ्रान्स और इटली) और प्रशान्त में क्षेत्रिक हित (territorial interest) रखने वाले अन्य तीन राष्ट्रों (चीन, नीदरलैण्ड और पुर्तगाल) तथा बेल्जियम (सम्मेलन में बुलाए जाने का बेल्जियम का दावा केवल भावुकतापूर्ण था) को "शस्त्रीकरण (Armament) सीमित करने के प्रश्न पर विचार करने के लिए होने वाले एक सम्मेलन में भाग लेने के लिए, जिसमें शस्त्रीकरण के साथ ही साथ प्रशान्त महासागर और सुदूर पूर्व के प्रश्नों पर भी विचार किया जाएगा" आमन्त्रित किया। यह सम्मेलन नवम्बर, १६२१ में वाशिंगटन में हुआ।

वाशिंगटन सम्मेलन के परिणामस्वरूप तीन सन्धियाँ हुईं। उनमें से प्रथम चार राष्ट्रों की संधि (Four Power Treaty) कहलाती है जो कि अमेरिका, ब्रिटिश साम्राज्य, फ्रान्स तथा जापान के बीच की गई थी। उसके अनुसार इन राष्ट्रों ने यह समझौता किया था कि वे प्रशान्त महासागर स्थित अधीन-प्रदेशों (possessions) सम्बन्धी एक दूसरे के अधिकारों का सम्मान करेंगे और यदि इन अधिकारों के सम्बन्ध में उनमें कोई विवाद उठ खड़ा हुआ या अन्य किसी राष्ट्र की आक्रमणात्मक कार्रवाई (aggressive action) के कारण यदि उन्हें किसी प्रकार का खतरा हुआ तो वे आपस में परामर्श करेंगे। इस साधारण से दस्तावेज (document) का महत्त्व दो बातों में था। उसके कारण अमेरिका पहिली बार (राष्ट्र संघ के अनुबन्ध-पत्र को अस्वीकार कर देने के बाद) सामान्य हित के मामलों पर अन्य बड़े राष्ट्रों से एक सीमा तक परामर्श करने के लिए तैयार हो गया। इसके साथ ही इस संधि के कारण इस समय अनावश्यक उस एंग्लो जापानी गुटबन्दी को भी समाप्त करने का एक अच्छा बहाना मिल गया जो कि अमेरिका, अधिराज्यों (dominions) और ग्रेट ब्रिटेन के अधिकांश लोगों में बहुत अप्रिय हो चुकी थी। द्वितीय या पाँच राष्ट्रों की संधि (Five Power Treaty) में विस्तृत नौसैनिक निःशस्त्री-

करण (naval disarmament) की व्यवस्था की गई थी। उसकी प्रमुख विशेषताएँ थी—ब्रिटिश साम्राज्य और अमेरिका के बीच नौसैनिक समानता (parity) स्थापित करना तथा जापान के बड़े जहाजो की संख्या ब्रिटेन और अमेरिका की सख्या के ६० प्रतिशत के बराबर निश्चित करना। फ्रांस और इटली के लिए यह सख्या ३५ प्रतिशत ही थी। हलके गश्ती जहाजो (cruisers), विध्वसको (destroyers), पनडुब्बियो (sub-marines) या अन्य सहायक यानो (auxiliary craft) की संख्या पर कोई बन्धन नही लगाया गया था। सधि पर हस्ताक्षरकर्त्ता राष्ट्र इस बात पर भी सहमत हो गए कि प्रशात महासागर के एक निर्धारित क्षेत्र में वे किलेबन्दियो और समुद्री अड्डो (naval bases) सम्बन्धी पूर्व स्थिति (status quo) बनाये रखेंगे। तृतीय या नौ राष्ट्रो की सधि (Nine Power Treaty) के अनुसार सम्मेलन मे शामिल हुए सभी राष्ट्रो ने यह वचन दिया कि वे चीन की स्वतत्रता और अखण्डता (independence and integrity) का सम्मान करेंगे तथा, "चीन की वर्तमान स्थिति से लाभ उठाकर उससे ऐसे कोई भी विशेष अधिकार या सुविधाएँ प्राप्त नही करेंगे जिनसे अन्य मित्र-राज्यो की प्रजा और नागरिको (subjects and citizens) के अधिकार मे किसी प्रकार की कमी हो।" इन सधियो के अतिरिक्त, एक और दस्तावेज पर वाशिंगटन मे हस्ताक्षर हुए थे। यद्यपि उसे सम्मेलन की कार्रवाई मे शामिल नहीं किया गया था, तथापि यह निश्चित है कि ब्रिटिश और अमरीकी प्रतिनिधिमण्डलो के विशेष आग्रह के बिना यह समझौता नही हो सका था। इस समझौते के अनुसार, जो कि केवल जापान और चीन के बीच ही किया गया था, जापान ने चीन को कियोचाओ क्षेत्र लौटा देने का वचन दिया जो कि वर्सेलीज की सधि के समय जर्मनी ने उसे सौंपा था।

वाशिंगटन सम्मेलन को सकारण ही एक महत्त्वपूर्ण सफलता माना गया था।[1] उसके फलस्वरूप कम से कम ऊपरी तौर पर प्रशात महासागर में युद्ध-पूर्व का शक्ति-सतुलन पुनः स्थापित हो गया। दृढ एंग्लो-अमरीकी मोर्चों से भयभीत होकर और विश्व लोकमत के नैतिक दबाव के कारण, जापान ने

1. "The Washington Conference was hailed, not without reason, as an outstanding success."

यद्यपि प्रकट रूप से अपनी पराजय स्वीकार नही की थी, तथापि अपनी महत्त्वाकाक्षाओ पर बहुत अधिक अकुश लगाना उसने स्वीकार कर लिया था। चीन की मुख्य भूमि (mainland) पर युद्ध के समय उसे जो एकमात्र प्राप्ति हुई थी, उसका भी परित्याग कर देने के लिए उसे राजी कर लिया गया था। अब उसने ब्रिटिश साम्राज्य और अमेरिका के साथ नौसैनिक समानता का दावा करने का साहस किया किंतु ब्रिटिश और अमरीकी बेडे का ७० प्रतिशत टन बेडा रखने की उसकी मांग कम कर ६० प्रतिशत कर दी गई। इस प्रकार चीन की अखण्डता और प्रशात महासागर मे एग्लो अमरीकी सामुद्रिक प्रभुत्व को जापानी खतरा दूर किया जा चुका था। किंतु फिर भी वाशिंगटन सधियो से उत्पन्न स्थिति खतरे से खाली नही थी क्योकि एशिया की मुख्य भूमि पर आगे बढने की अपनी नीति को जापान ने अनिच्छापूर्वक ही त्यागा था। कभी न कभी, अपनी शक्ति से परिचित होते ही, जापान वाशिंगटन समझौते से हुई अपनी प्रतिष्ठा हानि का विरोध करता ही। यह मूल प्रश्न कि सुदूर-पूर्व में एग्लो-सेक्सन प्रभुत्व रहेगा या जापान की ही तूती बजेगी अभी भी अनिर्णीत (undecided) था। किंतु यह वाशिंगटन सम्मेलन का ही परिणाम था कि यह प्रश्न ठीक दस वर्षों तक भविष्य के गर्भ में ही पडा रहा।

प्रथम भाग

प्रवर्त्तन-काल (The Period of Enforcement):

गुटबंदियाँ (The Alliances)

[१९२०—१९२४]

१. फ्रांस और उसके साथी

(France and Her Allies)

सन् १९१९ के बाद के योरोपीय घटनाचक्र का सबसे महत्त्वपूर्ण एव स्थायी तथ्य फ्रास की सुरक्षा-माँग (demand for security) था।[1] सत्रहवी और अठारहवी शताब्दियो में फ्रास यह ठीक ही समझता था कि वह योरोप का सबसे शक्तिशाली सैनिक राष्ट्र है, यह परम्परा नेपोलियन-युद्धो के बाद तक चलती आई थी जबकि योरोप के अन्य राष्ट्रो ने आपस में गठबधन कर उसे हरा दिया था। सन् १८७० में, फ्रास व प्रशा (Prussia) के मध्य हुए युद्ध के समय उसकी शक्ति का भ्रम एकाएक दूर हो गया। उस समय मध्य योरोप मे एक ऐसे नए राष्ट्र का उदय हो चुका था जिसके लोगो म राष्ट्रीय भावना फ्रासीसियो के समान ही दृढ और ऐक्यपूर्ण थी तथा जिसके प्राकृतिक साधन फ्रास क साधनो की तुलना मे बहुत अधिक थे। अपनी खनिज सपत्ति के कारण जर्मनी को औद्योगिक विकास का अवसर तो मिला ही, किन्तु उसके साथ ही साथ उसमे युद्ध-सामग्री के उत्पादन की वह क्षमता भी आगई जिसकी समता करने की फ्रास आशा भी नहीं कर सकता था। फ्रास की जन सख्या चार करोड से भी कम के आँकडे पर लगभग स्थिर होगई थी। जर्मनी की आबादी हर दशक (decade) में ५० लाख के हिसाब स बढ रही थी और १९०५ तक वह छ करोड से भी अधिक हो चुकी थी। इसके अतिरिक्त जर्मन लोगो में सैन्य-सगठन की अपूर्व क्षमता भी थी। फ्रास की अपेक्षा जर्मनी का सैन्य सगठन न केवल अधिक सुसज्जित और अच्छे सैनिको से परिपूर्ण था अपितु उसका सचालन भी अधिक अच्छे ढग से होता था। सन् १९१४ में यदि ब्रिटेन तुरन्त ही हस्तक्षेप नही करता तो फ्रास छ सप्ताहो मे ही पुन पराजित राष्ट्रो की श्रेणी में आ जाता— फ्रासीसी इस बात को भली-भाँति जानते थे। सन् १९१८ की विजय की प्रसन्नता अल्पकालिक ही सिद्ध हुई ;

1. "The most important and persistent single factor in European affairs in the years following 1919 was the French demand for security"

विजयोल्लास क साथ ही साथ गम्भीर चिन्ता भी शीघ्र ही परिलक्षित होने लगी। सन् १८७० मे—सन् १९१४ से तो और भी अधिक—ही फ्रास को जर्मनी की तुलना मे अपनी कमजोरी का भीतिपूर्ण आभास था। इस समय तो उसने १८७१ क विजेता का पासा पलट दिया था। किन्तु जर्मनी १९१८ के विजेता का तख्ता किसी दिन न उलट सके इसके लिए कौन सी युक्ति काम म लाई जा सकती थी ?

इस प्रश्न पर फ्रास का प्रथम उत्तर स्पष्ट और आग्रहपूर्ण था। उसकी यह माँग थी कि उसे "भौगोलिक गारन्टी" (physical guarantee) दी जावे—राइन नदी और उसके पुल, जिन्हे पार करना पूर्व से फ्रास पर आक्रमण करन के हेतु आक्रामक (invader) के लिए आवश्यक था, स्थायी रूप मे उसके अधिकार में रह। फरवरी, १९१९ में हुए शाति-सम्मेलन मे फ्रास द्वारा प्रस्तुत एक स्मरणपत्र (memorandum) मे कहा गया था, "राइन का बायाँ किनारा और उसके पुल यदि जर्मनी के अधिकार में रहे तो खतरा है··· पश्चिमी और समुद्र पार के प्रजातन्त्रो (overseas democracies) की अपनी सुरक्षा के लिए, वतमान परिस्थितियो में यह नितान्त आवश्यक है कि वे स्वय राइन नदी के पुलो की रक्षा करें।" किन्तु फ्रास को बिलकुल निराश होना पडा। मित्र राष्ट्रो ने राइन सीमान्त को फ्रास की सुरक्षा मे देना इस आधार पर अस्वीकार कर दिया कि इस प्रकार की व्यवस्था करने से राइन के बाएँ किनार पर रहने वाले ५० लाख स भी अधिक जर्मन निवासियो को जर्मनी से पृथक करना पडता। काफी सिर पटक लेने के बाद फ्रास को अपनी माँग छोड देनी पडी और उसकी इस माँग के बदले मे :

(१) वर्सेलीज की सधि मे इस आशय की धाराएँ जोडी गई कि राइन का बायाँ किनारा पन्द्रह वर्षों तक मित्र राष्ट्रो की सेना के अधिकार मे रहेगा और उसका स्थायी रूप से असेनीकरण (demilitarisation) कर दिया जायेगा (अर्थात् राइन क पश्चिम मे किले बनाना या सेना रखना निषिद्ध कर दिया गया), तथा।

(२) वर्सेलीज की सधि के साथ ही साथ ब्रिटिश साम्राज्य और अमेरिका ने फ्रास से सधियाँ की जिनके अनुसार फ्रास को यह वचन दिया गया कि, "यदि

जर्मनी ने अकारण ही फ्रांस पर आक्रमण करने सम्बन्धी कोई गतिविधि की" तो वे तुरन्त ही फ्रांस की सहायता करेंगे।

किन्तु वर्सेलीज में हुई संधियों का अमेरिका ने अनुसमर्थन (ratification) ही नहीं किया। फलस्वरूप ब्रिटेन और अमेरिका द्वारा दिए गये वचन शून्य (void) हो गए। फ्रांस को ऐसा अनुभव हुआ कि उसे धोखा दिया गया है। उसने अपना दावा एक ऐसे वचन के विश्वास पर छोड़ दिया था जो कि निभाया ही नहीं गया। सुरक्षा के प्रश्न को लेकर फ्रांस और ग्रेट ब्रिटेन में इसके बाद जो वार्ताएँ चलीं, उनमें फ्रांस की यह शिकायत बराबर बनी रही।

इस प्रकार "भौगोलिक" गारन्टी की आशा छोड़ देने के लिए बाध्य कर दिए जाने के बाद फ्रांस अगले चार वर्षों तक जर्मनी की तुलना में अपनी प्राकृतिक हीनता (natural inferiority) दूर करने और जर्मन प्रतिशोध (vengeance) के भय को दूर करने की उधेड़बुन में ही लगा रहा। उसने दो पृथक् किन्तु समानान्तर (parallel) मार्ग अपनाए : उनमें से एक था गारन्टी संधियों (treaty guarantees) का मार्ग और दूसरा था गुटबंदियों (alliances) का।[1]

गारंटी-मार्ग (The System of Guarantees)

सन् १९२० के प्रारम्भ में, जब यह बात स्पष्ट हो गई कि अकारण आक्रमण (unprovoked aggression) के विरुद्ध ग्रेट-ब्रिटेन और अमेरिका ने फ्रांस को जो गारंटी दी है, वह कभी भी पूरी नहीं की जायगी, तब राष्ट्रसंघ के अनुबंधपत्र में निहित संरक्षण के अतिरिक्त और किसी भी प्रकार का संरक्षण फ्रांस को जर्मनी के विरुद्ध प्राप्त नहीं था। इसलिए फ्रांस ने प्रारम्भ में ही यह निश्चय कर लिया कि यह संरक्षण अपर्याप्त है। यह अवश्य ही सत्य था कि अनुबंधपत्र के दसवें अनुच्छेद के अनुसार राष्ट्रसंघ के सदस्य इस बात के

1 "Having thus been compelled to abandon her hope of a "physical" guarantee, France worked feverishly during the next four years to find compensation for her natural inferiority to Germany, and to allay her fear of German vengeance. She followed two separate and parallel methods: a system of treaty guarantees and a system of alliances"

लिए वचनबद्ध थे कि वे "राष्ट्रसंघ के सभी सदस्य-राष्ट्रों की वर्तमान राजनैतिक और क्षेत्रिय अखण्डता (territorial integrity) की बाह्य आक्रमण से रक्षा करेंगे तथा उन्हें उनके वर्तमान रूप में मानेंगे।" साथ ही अनुच्छेद १६ और १७ में यह व्यवस्था भी की गई थी कि अपने कर्तव्यों की उपेक्षा करते हुए, यदि कोई राज्य युद्ध का आश्रय लेगा तो उसके विरुद्ध अनुशास्ति (sanctions) और दंड (penalties) की कारवाई की जायगी। किन्तु दसवें अनुच्छेद को ब्रिटेन (जिसका बहुत अधिक बोलबाला था) ने अनिच्छापूर्वक ही स्वीकार किया था, और फ्रांस के इस प्रस्ताव को कि एक अन्तर्राष्ट्रीय सेना संगठित की जाए ताकि उसके बल पर अनुशास्ति को प्रभावकारी ढंग से लगाया जा सके, ग्रेट ब्रिटेन और अमेरिका ने कड़ा विरोध कर अस्वीकृत करा दिया। अनुच्छेद १६ के अनुसार राष्ट्रसंघ के सदस्यों के लिए यह आवश्यक था कि किसी भी आक्रमणकर्त्ता से वे अपने वित्तीय और आर्थिक (financial and economic) सम्बन्ध तोड़ लें। किन्तु सैनिक कारवाई (और दूसरी किसी कार्यवाई से जर्मनी को रोका भी नहीं जा सकता था) के लिए परिषद् की सिफारिश (recommendation of the Council) आवश्यक थी। इस सिफारिश के लिए निर्विरोध मत प्राप्त होना जरूरी था। यदि परिषद् ऐसी सिफारिश कर भी देती, तो भी कोई भी राज्य अपनी इच्छानुसार उसे स्वीकार या अस्वीकार कर सकता था। इसके साथ ही अमेरिका की कर्तव्यविमुखता (defection) के कारण यह बात अत्यधिक संदेहास्पद हो गई कि वित्तीय और आर्थिक नाकेबंदी (blockade) संभव भी हो सकती या नहीं, और यदि वह संभव हुई भी, तो उसका कुछ प्रभाव भी हो सकेगा अथवा नहीं।

राष्ट्रसंघ जिस समय वास्तव में अस्तित्व में आया, उस समय ही फ्रांसीसियों का यह संशय बढ़ गया था कि अनुबंधपत्र प्रभावकारी नहीं होगा। दिसम्बर १९२० में, जेनेवा में जब राष्ट्रसंघ सभा (Assembly) की प्रथम बैठक हुई, तब अनुच्छेद १० और १६ की ही सबसे पहिले आलोचना हुई। कनाडा अनुच्छेद १० को बिलकुल ही निकलवा देना चाहता था। इसी प्रकार स्कैंडेनेविया के प्रतिनिधिमंडल की यह इच्छा थी कि अनुच्छेद १६ के अधीन आर्थिक अनुशास्तियाँ अपने आप ही लागू होने संबंधी उपबंध में कुछ अपवाद भी रखे जाएँ। इन दोनों ही प्रस्तावों के कारण लम्बा विचार विनिमय हुआ।

अगले वर्ष (१६२१ मे) राष्ट्रसघ सभा ने एक प्रस्ताव स्वीकार किया जिसमे और बातो के साथ ही साथ (inter alia) यह व्यवस्था की गई थी कि आवश्यकता पडने पर परिषद् "यह सिफारिश करेगी कि अनुच्छेद १६ के अधीन आर्थिक अनुशास्तियाँ किस तारीख से लागू की जाएँ।" इसका आशय यह था कि परिषद् को आर्थिक अनुशास्तियो का लागू करना, स्थगित करने, और उनकी तारीख में परिवर्तन करने की स्वतन्त्रता दे दी गई। सन् १६२३ में इस आशय का एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया था कि अनुच्छेद १० के अधीन कर्त्तव्यो का पालन कराने के लिए कौन से कदम उठाना आवश्यक है इस बात का निश्चय "हर सदस्य (राष्ट्र) के वैधानिक अधिकारियो (constitutional authorities) द्वारा ही किया जाना चाहिए।" इस प्रस्ताव का आशय भी यही था कि सैनिक सहायता सम्बन्धी सारे मामले का निबटारा सबधित सरकारो के विवेक (discretion) के अनुसार ही हो, किन्तु एक छोटे से राज्य के विपरीत मत (adverse vote) के कारण यह प्रस्ताव स्वीकृत नहीं हो सका। यद्यपि अनुच्छेद १० और १६ मे विधिवत् (formally) कोई सशोधन नही किये गए, तथापि इन चर्चाओ से यह स्पष्ट हो चुका था कि सकट काल मे इन अनुच्छेदो का वास्तविक प्रवर्त्तन अनुबधपत्र की वास्तविक मशा के काफी पीछे ही रहेगा। अब यह भी स्पष्ट हो चुका था कि लीग सगठन वह तत्काल सैनिक कार्यवाही (prompt military action) भी सभवत. नही कर सकेगा जिसका आश्रय लेने से ही फ्रास को आक्रमण से बचाया जा सकता था।

ऐसी स्थिति मे, यदि फ्रास ग्रेट ब्रिटेन से यह आग्रह करता रहे कि जर्मन आक्रमण से उसकी रक्षा के लिए ब्रिटेन अतिरिक्त गारटी दे तो इसमे आश्चर्य की कोई बात नही। जो भी हो, इन प्रयत्नो के परिणाम परस्पर विरोधी (paradoxical) हुए। जनवरी १६२२ मे, ब्रिटिश सरकार ने आखिर हिम्मत की और १६१६ की निष्फल सधि (abortive treaty) की शर्तों के ही लगभग समान शर्तों पर फ्रास को गारटी देने के लिए वह तैयार हो गई। किन्तु तत्कालीन फ्रासीसी प्रधान मत्री पौंकारे (Poincare) हठी और अदूरदर्शी था। वह सम्पूर्ण या शून्य (All or nothing) की नीति में विश्वास रखता था। उसने यह माँग रखी कि इस गारटी के साथ ही साथ एक सैनिक समझौता (military convention) भी किया जाए जिसमें यह बात सुस्पष्ट कर दी

जाए कि ब्रिटिश सेना किस प्रकार की सहायता देगी। उसन यह भी कहा कि यदि इस प्रकार का समझौता नही किया गया तो केवल गारटी सधि का फ्रास को कोई उपयोग नही होगा। ब्रिटिश सरकार इस सीमा तक आगे बढने के लिए तैयार नही थी। उसने अपना बडप्पन निभा लिया था, इसलिए अब उसने फ्रासासियो की सुरक्षा-तृष्णा शात करन का स्पष्ट रूप स आशा शून्य (hopeless) कार्य कुछ समय क लिए एक ओर रख दिया।

गुटबन्दी-मार्ग (The System of Alliances)

पौंकारे के इस मनमानापूर्ण रुखका कारण कुछ अशा मे यह भी था कि फ्रास की सुरक्षा-निर्माण क अपन दूसरे प्रयत्न—गुटबदियो का मार्ग अपनाने—में इसी बीच सफलता मिल चुकी थी। आक्रमण स सुरक्षा की कोरी गारण्टियो पर भरोसा करन की अपेक्षा सैनिक गुटबदिया की नीति अपनाना फ्रासीसी प्रकृति और परम्परा के अनुकूल था। इसी नीति क कारण अठारहवी शताब्दी म फ्रास की धाक सारे योरोप म जम गई थी जब कि फ्रास न आस्ट्रिया के छोटे छोटे पडोसियो स गुटबदी कर उस चारो ओर स घेर लिया था। इस समय भी वह इसी नीति का अनुसरण कर जमनी को घेर लना चाहता था। पश्चिम म, बेल्जियम के साथ सितम्बर १६२० म सैनिक गुटबन्दी कर लन से उसकी स्थिति सुरक्षित हो चुकी थी। अन्य दिशाओ म उसे यह काय नए सिरे से करना था। रूस अब एक सैनिक राष्ट्र नही रह गया था। किन्तु उसक स्थान मे जमनी क पूर्वी सीमात पर पोलैंड के नए गणतन्त्र का उदय हो चुका था। दक्षिण म, मित्र राष्ट्रो की विजय के परिणामस्वरूप तीन नए या अत्यधिक वर्धित (enlarged) राज्य—चेकोस्लोवाकिया, युगोस्लाविया और रूमानिया—अस्तित्व मे आ चुके थ। वे राज्य फ्रास क स्वाभाविक मित्र और आसामी (clients) थ। युद्ध के बाद के तीन वर्षों म फ्रास न इन्हे लकर ही एक प्रभावकारी और सुगठित गुटबन्दी की।

पोलैंड

युद्ध-समाप्ति के बाद गठित पोलिश गणतत्र कोई नया राज्य नही था, अपितु प्राचीन राज्य ही पुन अस्तित्व मे आ गया था। दसवी सदी से लगाकर अठारहवी शताब्दी तक, पोलेंड विशाल और शक्तिशाली राजतत्र था। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में, उसे रूस, प्रशा और आस्ट्रिया की सयुक्त शत्रुता का सामना करना पडा, और तीन विभाजनो (partitions) के बाद, जिनमे
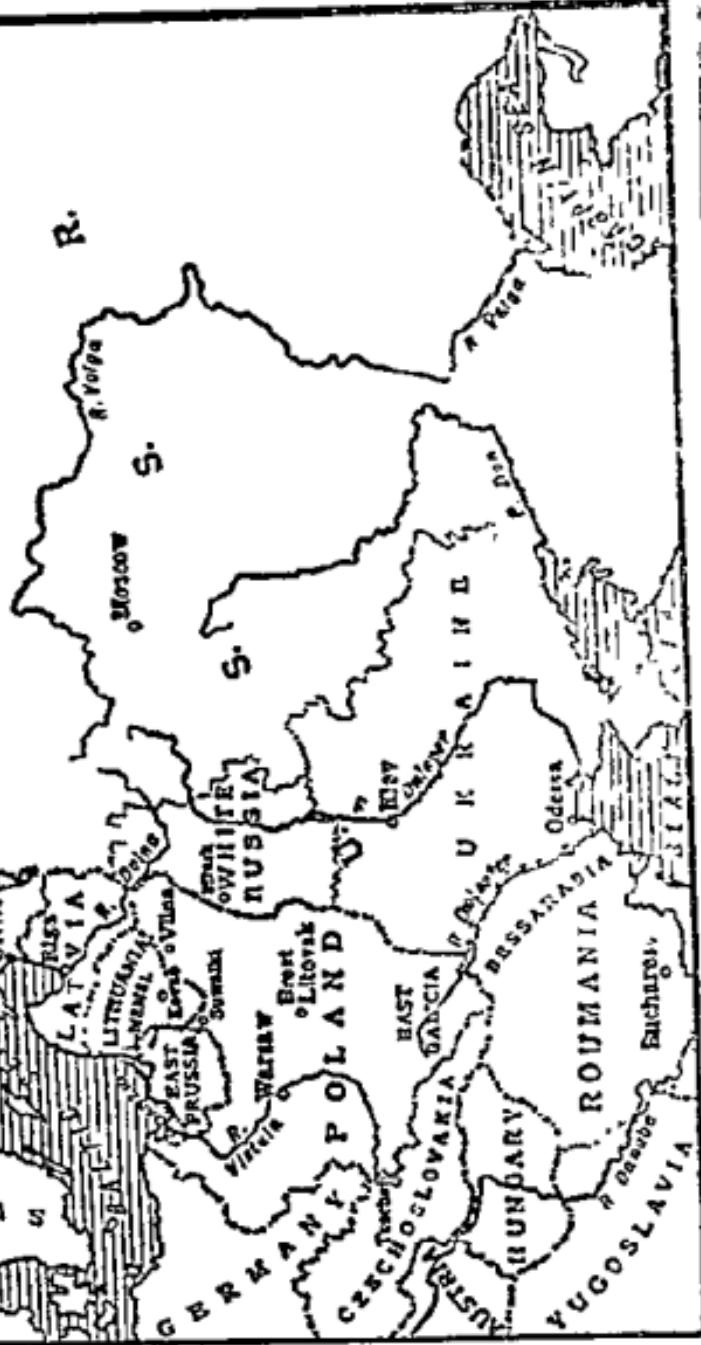
कि उसके क्षेत्र का अधिकाधिक भाग उसके हाथ से निकलता गया, सन् १७६१ मे उसकी स्वतन्त्रता भी जाती रही। सन् १६१८ मे रूसी, जर्मनी और ऑस्ट्रियन साम्राज्यो पर एक साथ आपत्ति के बादलो का घिर जाना पोलैंड के लिए सौभाग्य की एक ऐसी घडी थी जिसने कि उसका पुनरुत्थान सुनिश्चित बना दिया। किन्तु आरम्भ के कुछ वर्ष उसके लिए बडी कठिनाई के रहे। जर्मन और ऑस्ट्रियन पोल (Pole) जनता जिसे सयुक्त कर अब एक राज्य का निर्माण किया गया था, सवा सौ वर्षों तक विभिन्न कानूनो और विभिन्न प्रशासनो (administrations) के आधीन रह चुकी थी, उसने विभिन्न सेनाओ मे काम किया था और एक दूसरे के विरोधी पक्ष की ओर से युद्ध लडे थे, उसकी विभिन्न परम्पराएँ एव विभिन्न निष्ठाएं बन चुकी थी। दृष्टिकोण की इन विभिन्नताओ को मिटाने के लिए सामान्य देश प्रेम की स्वल्प भावना से ही काम नही चल सकता था। इसके अतिरिक्त, विस्तृत योरोपीय मैदान के बीच मे स्थित होने के कारण, दक्षिण को छोड और किसी भी दिशा मे, पोलैंड की स्पष्ट भौगोलिक सीमाएँ नही थी। केवल दक्षिण म ही, कारपेथियन पर्वत (Carpathian Mountains) उसे स्लोवाकिया से अलग करता था। जर्मनी के साथ लगे हुए उसके पश्चिमी और उत्तरी सीमात जैसा कि हम पहिले कह ् हैं, वर्सेलीज की सधि द्वारा निश्चित किये गए थे। अन्य और सभी दिशाओ में, सीमाओ के प्रश्न को लेकर अपने पडौसी देशो से पोलैंड की तीखी झडप हुआ करती थी।

दक्षिण पश्चिम में ऑस्ट्रियन सिलशिया (Silesia) का छोटा सा जिला, जो एक महत्वपूर्ण कोयला खदान क्षेत्र था और जिसमें चेक (Czech) और पोलिश मिश्रित आबादी थी, पोलैंड और नवगठित चेकोस्लोवाकिया राज्य के बीच झगडे की जड बन गया। सन् १६१६ के प्रारम्भ में ही चेक और पोलिश सेनाओ में इस विवादग्रस्त क्षेत्र के लिए मुठभेड हो गई और ब्रिटिश तथा फ्रासीसी अधिकारियो की मध्यस्थता (mediation) के कारण ही घमासान युद्ध टल सका। अन्त में, यह निश्चय किया गया कि इस विवाद का निबटारा जनमत द्वारा किया जाए। किन्तु मतदान का समय समीप आते आते, इतनी उत्तेजना फैल गई कि इस योजना को भी त्याग देना पडा। परन्तु फ्रास द्वारा बहुत अधिक दबाव डाले जाने पर, दोनों ही पक्षो ने समझौता कर लिया। इस

समझौते के अनुसार चेकोस्लोवाकिया को कोयले की खदानें मिली और पोलेंड को टेशेन (Teschen) (पोलेंड को इस शहर का रेलवे स्टेशन नही मिला, वह चेकोस्लावाकिया के अधिकार मे ही रहा) नामक प्रमुख नगर। इस समझौते का मूल्य समझौते के अतिरिक्त और कुछ भी नही था, इसलिए दोनो ही पक्ष मानते रहे कि उन्हें बहुत अधिक हानि उठानी पडी है।[1]

ऑस्ट्रियन पोलेंड में, एक दूसरी ही समस्या उठ खडी हुई। उसे पूर्वी और पश्चिमी गेलेशिया (Galicia) नामक दो प्रान्तो में विभाजित किया गया था। पश्चिमी गेलशिया मे शुद्ध पालिश आबादी थी। पूर्वी गेलेशिया के जमींदार और अधिकांश बुद्धिवादी (यहूदियो को छोडकर जिनकी सख्या यहां विशेष रूप से अधिक थी) पोल थे। किन्तु वहां का किसानवर्ग दक्षिण पश्चिम मे रहने वाले उन लोगो का सजातीय था जिन्हे कि लिटिल रूसी (Little Russians), यूक्रेनियन, (Ukrainians) या रूथेनोज (Ruthenes) आदि कहा जाता है। यह सभव है कि पूर्वी गेलेशिया का भूमिहीन रूथेनी किसान पालिश जमींदार को जमींदार होने की अपेक्षा पोल होने के कारण ही अधिक घृणा करता हो। किन्तु इसमें सदह नही कि यह घृणा अत्यन्त तीव्र थी। सन् १९१९ के प्रारंभिक महीनों म पूर्वी गेलेशिया मे सत्तारूढ (ruling) पोल अल्पसख्यको और शासित बहुसख्यको (majority) मे एक दुर्दम गृह युद्ध छिड गया। पोलिश कुमुक (reinforcement) शीघ्र ही बुलाई गई और अन्त मे, रूथेनियो का यह सघर्ष जिसे पोलेंड की अत्याचारपूर्ण नीति के विरुद्ध पेरिस मित्र-राष्ट्रों के मामूली विरोध क अतिरिक्त और किसी का भी प्रभावपूर्ण समर्थन प्राप्त नही था, मई में समाप्त हो गया। इस सम्पन्न तथ्य (accomplished fact) को बदल सकने में अपने आपको असमर्थ पाकर मित्र राष्ट्रो ने पोलेंड के सामने यह प्रस्ताव रखा कि पूर्वी गेलेशिया में पच्चीस वर्षों तक सरक्षण-राज्य (mandate) रहे और उसके बाद इस क्षेत्र के भाग्य का निबटारा राष्ट्रसघ द्वारा किया जाये। पोल जनता ने यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया और पूर्वी गेलेशिया पर अपना अधिकार पूर्ववत् बनाए रखा। आखिर १९२३ मे मित्र-राष्ट्रो न पूर्वी गेलेशिया

1. "It was a compromise which had no virtue except that of being a compromise; and both sides continued to regard themselves as deeply injured parties."

पर पोलेंड की सप्रभुता को यह वचन (जो कभी पूरा नही किया गया) दिए जाने पर विधिवत् स्वीकार कर लिया कि पोलेंड पूर्वी गेलेशिया में स्वायत्त शासन (autonomous regime) की स्थापना करेगा।

पोलेंड के पूर्वी सीमात पर यही समस्या और भी बडे पैमाने पर सामने आई। अपनी महानता के दिनो में पोल राजतन्त्र केवल पोलिश आबादी वाले क्षेत्रो तक ही सीमित नही था अपितु वह पूरे लिथुआनिया, श्वेत रूस (White Russia) के अधिकाश भाग और काले सागर (Black Sea) तक पूरे यूक्रन में फैला हुआ था। इन क्षेत्रो की अधिकाश भूमि, पोलिश जमींदारो के अधिकार में थी—यह अवस्था १९१७ की रूसी क्राति के समय तक चलती रही। क्राति के बाद, इन जमींदारो ने पोलेंड म शरण ली। अत यह स्वाभाविक ही था कि इन जमींदारो ने पोलेंड की सरकार पर इस बात के लिए बहुत अधिक दबाव डाला कि उनकी भूमि पुन. विजित कर पुन उनके अधिकार मे दी जाए। कुछ उत्साही देशभक्तो ने तो बाल्टिक से काला सागर तक पोलिश साम्राज्य पुन स्थापित करने के स्वप्न भी देखे। पेरिस मित्र राष्ट्रो का इस आशय का एक प्रस्ताव कि पोलेंड का पूर्वी सीमात इस प्रकार निश्चित किया जाए कि उसमे केवल वे ही क्षेत्र आएँ जिनमें पोल जनता बहुसख्यक हो, घोर अपमान समझा गया।

तो, एसी मनोदशा म, पोलिश राज्य का प्रधान (head) और सर्वोच्च सेनापति पिलसुदस्की (Pilsudski) १९२० के बसत म यूक्रेन विजय के लिए निकल पडा। गृहयुद्ध के कारण अव्यवस्थित सोवियत सना उसका पूरी तरह सामना न कर सकी, और पोल सेना तेजी से कीव (Kiev) तक पहुँच गई। जो भी हो, जून मे सोवियत सेना ने बडे पैमाने पर प्रतिरोध आक्रमण (counter offensive) किया। उसके परिणामस्वरूप न केवल पोल सेना तितर बितर कर यूक्रेन के बाहर खदेड दी गई अपितु सोवियत टुकडियाँ वारसा (Warsaw) से कुछ ही मील की दूरी तक आ पहुँची। यहाँ युद्ध (fortunes of war) ने एक बार फिर सहसा पलटा खाया। पोलिश आक्रमणकारियो की भाति सोवियत आक्रमणकारी भी शिथिल पड गए। पोलेंड की सेना एक बार फिर आगे बढी। किन्तु इस बार वह यूक्रेन को छोड पूर्व म श्वेत रूस (White Russia) की ओर कूच कर चली। अन्त मे, जब विरामसधि हुई, तब जो सीमारेखा निश्चित की गई, वह मित्र राष्ट्रो द्वारा प्रस्तावित तथाकथित "कर्जन

रेखा" (Curzon line) के पूर्व में लगभग १५० मील की दूरी पर थी। किन्तु सोवियत सरकार इस समय उदारतापूर्वक भूमि देने के लिए तैयार थी क्योंकि उसे शान्ति की आवश्यकता थी। सन् १६२१ में हुई रिगा की संधि (Treaty of Riga) ने उक्त विरामसंधि-रेखा की पुष्टि कर उसे पोलैंड और सोवियत रूस के बीच स्थायी सीमान्त के रूप में निश्चित कर दिया। पोलैंड ने यूक्रेन पर अपने दावे का परित्याग कर दिया और उसके बदले में उसे श्वेत रूस का छितरा आबादी वाला (sparsely populated) किन्तु विस्तृत भू-भाग मिला।

इसके बाद लिथुआनिया (Lithuania) की बारी आई। वहाँ झगड़े की मुख्य एवं मूल जड़ विलना (Vilna) नगर और जिला थे। मध्ययुग में विलना लिथुआनिया साम्राज्य (जो कि सोलहवीं शताब्दी में एक राजवंशी विवाह के कारण पोलैंड में मिल चुका था) की राजधानी रह चुका था। जब १६१८ में लिथुआनिया के स्वतन्त्र राज्य की पुनः स्थापना की गई, तब लिथुआनिया ने विलना को तुरन्त ही अपनी राजधानी घोषित कर दिया। दुर्भाग्य से विलना के लोगों में पोलैंड में ही बने रहने के लिए भी उतनी ही अधिक भावुकतापूर्ण आसक्ति थी। वहाँ एक प्रसिद्ध पोलिश विश्वविद्यालय था और पोलैंड के ज्ञान-विज्ञान का वह एक प्राचीन केन्द्र भी था। मानववंश विज्ञान की दृष्टि (ethnological standpoint) से, न तो लिथुआनिया का और न पोलैंड का ही उस पर दावा समीचीन था। इस नगर की आबादी यहूदी (यहूदियों का वहाँ निशान बहुमत था), पोलिश और श्वेत रूसी थी, और उसके आसपास के जिला भाग में, श्वेत रूसी तथा लिथुआनी। किन्तु जिस समय अनेक प्रकार की उत्तेजनाएँ फैल रही थीं, उस समय सम्बन्धित जनसंख्या की इच्छाओं (यदि वास्तव में उसकी कोई इच्छाएँ रही हों तब) का कोई निर्णायक प्रभाव होने की कोई संभावना ही नहीं थी।

जुलाई १६२० में, जिस समय सोवियत सेना, वारसा की ओर बढ़ रही थी, उस समय लिथुआनिया ने सोवियत सरकार के साथ एक सन्धि की थी, जिसके अनुसार सोवियत सरकार ने विलना पर लिथुआनिया के दावे को स्वीकार कर लिया था। किन्तु बाद में पोलैंड के आगे बढ़ आने के कारण लिथुआनिया का सम्बन्ध अपने सोवियत मित्रों से बिलकुल टूट गया और उसे अकेले ही पोलैंड का सामना करना पड़ा। सूवालकी (Suwalki) के पास युद्ध शीघ्र ही आरम्भ

हो गया। आशा के विपरीत, उसका परिणाम पोलैंड के हित में अधिक अच्छा नहीं रहा। अक्टूबर में एक विरामसन्धि हो गई जिसके अनुसार विलना नगर और जिला लिथुआनिया के ही अधिकार मे रहने दिये गये। तीन दिन के बाद, जेलिगोवस्की (Zeligowski) नामक एक स्वतन्त्र पोलिश सेनापति ने कुछ सैनिक इकट्ठे किये और लिथुआनिया पर एकाएक धावा बोलकर विलना पर अधिकार कर लिया। इस निंदास्पद विश्वास भग (flagrant breach of faith) की पोलैंड सरकार ने सरकारी तौर पर निन्दा की। किन्तु लूट का यह माल उसने बिना किसी हिचक के अपने पास रख लिया। कुछ वर्षों के बाद, पिलसुदस्की ने यह स्वीकार भी किया कि यह राज्यहरण (coup) उसकी जानकारी और अनुमोदन (approval) से ही हुआ था। राष्ट्रसघ द्वारा लम्बी वार्ताएं चलाए जाने के बाद भी पोल लोग विलना से नहीं हटे और १६२३ में, जबकि मेमल (जिस पर वर्सेलीज की सधि के समय से ही मित्र राष्ट्रो का कब्जा था) पर कब्जा करके लिथुआनी न्यायपथ से हट चुके थे, मित्र-राष्ट्रों ने विलना को पोलैंड के ही एक भाग के रूप मे विधिवत् मान लिया।

इस प्रकार गठित पोलिश राज्य की तीन करोड से भी अधिक जनसख्या थी—यह सख्या उसे बडे राष्ट्र की श्रेणी मे लगभग ला बिठाती थी। उसके प्राकृतिक साधन प्रचुर थे। उसके दक्षिण पश्चिमी भाग में कोयले और लोहे की तथा पूर्वी गेलेशिया में तैल की प्रचुरता थी। उसके पूर्व मे विस्तृत वन थे और लगभग सारे ही देश मे अच्छी कृषि योग्य भूमि थी। लेकिन उसकी कुछ स्पष्ट कमजोरियां भी थी। उसकी कम से कम २५ प्रतिशत जनसख्या गैर पोलिश थी जिसमे ४० लाख यहूदी भी शामिल थे, और अधिकाश अल्पसख्यक या तो वास्तव म या सम्भाव्यत. (potentially) उसके विरोधी थे। इसके अतिरिक्त अपने आरम्भिक दिनो मे ही, पोलैंड के सम्बन्ध एक भी पडोसी राष्ट्र के साथ अच्छे नहीं थे। जर्मन अल्पसख्यको के साथ व्यवहार और डानजिग (Danzig) के प्रश्न को लेकर जर्मनी से हमेशा ही उसका सघर्ष चलता रहता था और इसमें सदेह ही था कि कोई भी जर्मन सरकार पोलिश गलियारे (corridor) के कारण शेष जर्मनी से पूर्वी प्रशा का पृथक् हो जाना अनिश्चित काल तक सहन करती रहेगी। सोवियत रूस को भी अपनी उदारता पर किसी दिन पछतावा हो सकता था। चेकोस्लोवाकिया क्षमारहित रोष मे था,

लिथुआनिया यूँ ही गुर्रा रहा था और पूर्वी गेलेशिया में फिर कोई आफत खड़ी हो सकती थी। वैसे पूर्वी योरोप मे पोलेंड सबमे शक्तिशाली राष्ट्र था किन्तु मुश्किल से वह इस प्रकार की दुनिया का अकेले सामना कर सकता था।

ऐसी परिस्थिति में, जर्मनी के पड़ोसी राष्ट्रों के साथ गुटबन्दी करने की फ्रांसीसी नीति और पोलेंड की अपनी आवश्यकताओं का पूरा-पूरा मेल बैठ गया। फरवरी १६२१ में हुई गुटबन्दी सम्बन्धी फ्रांसीसी-पोलिश संधि घनिष्ठ राजनैतिक सहयोग का एक साधन थी। उसके साथ ही एक गुप्त सैनिक समझौता भी किया गया था जिसके बाद फ्रांस ने पोलिश सेना को सुसज्जित बनाने के लिए सुगम शर्तों पर काफी युद्ध सामग्री पोलेंड भेजी। सतर्कता की नीति पर चलने वाले कुछ फ्रांसीसियों का यह मत था कि इतना झगड़ालू मित्र लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक करेगा तथा कोई भी फ्रांसीसी सैनिक पोलेंड के लिए अपने प्राण होम देने के लिए तैयार नहीं होगा। कुछ पोलेंडवासियों ने भी अपने फ्रांसीसी मित्रों के संरक्षक रुख (patronising attitude) और वारसा स्थित फ्रांसीसी सैनिक मिशन की संख्या तथा उस पर होने वाले व्यय की आलोचना की। किन्तु यह गुटबन्दी समान हित के सुदृढ़ आधार पर हुई थी, इस कारण मामूली असन्तोष से टूट नहीं सकती थी। अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व के हर राजनैतिक प्रश्न पर फ्रांस और पोलेंड ने एक दूसरे का साथ दिया। क्या जेनेवा में, क्या निजी वार्ताओं में, फ्रांसीसी और पोलिश प्रतिनिधिमण्डल एक दूसरे का बराबर साथ देते रहे तथा हर सार्वजनिक चर्चा में उन्होंने साथ-साथ मत दिया एवं एक से भाषण दिये।

लघु मैत्रीसंघ (The Little Entente)

लघु मैत्रीसंघ उन तीन राज्यों की गुटबन्दी का असरकारी नाम था जिन्हें ऑस्ट्रोहंगेरियन राजतन्त्र के खण्डित हो जाने से सबसे अधिक लाभ पहुँचा। ये राज्य चेकोस्लोवाकिया, रूमानिया और यूगोस्लाविया थे।

चेकोस्लोवाकिया, जैसा कि उसके नाम (उसका यह नाम हाल मे गढ़ा गया है) से ही स्पष्ट है, का निर्माण दो पड़ोसी देशों की जनता को संयुक्त कर किया गया था। चेक और स्लोवाक एक ही स्लाव (Slav) जाति की दो शाखाएँ हैं जो एक दो भाषा को परस्पर अति निकट बोलियाँ बोलती हैं, किन्तु इन दोनों जनताओं का इतिहास एक दूसरे से सर्वथा भिन्न है। चेक जनता

मध्ययुग में बोहेमिया के एक स्वतन्त्र राजतन्त्र का प्रमुख भाग थी और १६२० के बाद से ऑस्ट्रियन साम्राज्य के जर्मन प्रभाव मे आ गई थी। प्राचीन चेक धनीवर्ग पूरी तरह जर्मन हो चुका था, जबकि अर्वाचीन चेक जनता मितव्ययी, परिश्रमी, सुशिक्षित, मध्यमवर्गीय और श्रमिकवर्ग की है। इसके विपरीत, १६१८ से एक हजार वर्ष पहिले से ही स्लोवाकिया हगरी का एक भाग रह चुका था। स्लोवाक अशिक्षित किसानवर्ग के थे और उनकी (स्लोवाक) सस्कृति के प्रतिनिधि विदेशो में, मुख्यतः अमेरिका मे रहने वाले, मुट्ठीभर बुद्धिजीवी लोग थे। इन परिस्थितियो ने, नए चेकोस्लोवाक राज्य को, अपने सैनिक अधिकारी, असैनिक कर्मचारी (civil servants) और शिक्षक, मुख्यतः चेक लोगो मे से ही लेने के लिए बाध्य कर दिया। किन्तु स्लोवाक क्षेत्रो में इस असमानता का विरोध हुआ; और स्लोवाक जनता का सर्वाधिक प्रतिनिधित्व करने वाली स्लोवाक पार्टी लगातार यह माँग करती रही कि स्लोवाकिया मे "राष्ट्रीय स्वायत्त शासन" ("national autonomy") की स्थापना की जाये।

चेकोस्लोवाकिया की अधिकाश भूमि पर खेती होती थी। नए राज्य ने विस्तृत भूमि-सुधार कर अपनी स्थिति सुदृढ बनाली। इन सुधारो के समय बडे-बडे जमीदारो से भूमि छीन ली गई जो कि मुख्यतः जर्मनी या हगेरियन थे। उनकी यह भूमि छोटे-छोटे किसानो और खेतिहरो में जो कि चेक या स्लोवाक थे, बाँट दी गई। किन्तु चेकोस्लोवाकिया एक अत्यन्त विकसित औद्योगिक (industrial) राज्य भी था और वहाँ युद्ध सामग्री प्रचुर मात्रा में तैयार होती थी। उसके भूतपूर्व ऑस्ट्रियन प्रान्तो में लगभग ८० प्रतिशत कोयला और लोहा पैदा होता था तथा युद्ध-पूर्व के ऑस्ट्रियन साम्राज्य के बडे बडे उद्योग भी वहाँ थे। उसकी कमजोर भौगोलिक स्थिति और जनसख्या के मिश्रित स्वरूप ने इन सुविधाओ को कुछ अशो में अनुपयोगी बना दिया। उसकी एक करोड चालीस लाख से अधिक की आबादी मे चेक लोगो, जो कि शासक वर्ग के थे, की सख्या ६५ लाख थी और स्लोवाकियन की सख्या इनसे २० लाख अधिक थी। शेष आबादी सुसगठित और परिश्रमी जर्मन अल्पसख्यको, जो कि सख्या में ३० लाख थे, और बोहेमिया के किनारे रहते थे, हंगेरियन, रूथेनी और पोलिश अल्पसख्यकों की थी। सकटकाल के समय स्लोवाक साथ देंगे या नही यह सदिग्ध था तथा अल्पसख्यक ऐसे किसी भी युद्ध के समय विरोधी हो सकते थे जिसमें चेकोस्लो-

वाकिया घसीटा जाये। इसके अतिरिक्त चेकोस्लोवाकिया की राजधानी प्रेग (Prague) सीमान्त के इतने निकट बसी हुई थी कि जर्मनी से युद्ध छिड जाने पर जर्मन सैनिक उस पर कुछ ही दिनो मे या कुछ ही घन्टो मे अधिकार कर सकते थे। इसी तरह यदि हंगरी आक्रमण करता तो स्लोवाकिया के लम्बे और संकरे भू भाग की प्रतिरक्षा (defence) करना कठिन हो जाता। मध्य योरोप के सभी राज्यो मे, चेकोस्लोवाकिया सबसे अधिक बहुजातिपूर्ण (heterogenous) और सैनिक दृष्टि से, सर्वाधिक सुगमतापूर्वक जेय राज्य था।[1]

युद्धकाल के अपने अनुभावो की अपेक्षा शांति समझौते पर रूमानिया अधिक गर्व कर सकता था। युद्धकाल में, उसने दो बार पक्ष बदले और युद्ध समाप्त होने पर उसे हंगरी से ट्रांसिलवानिया (Transylvania) का अधिकांश भाग और सोवियत सरकार के विरोध के बावजूद भी, रूस से बेसारेबिया (Bessarabia) मिला। इस कारण उसकी भूमि तो दुगनी हो गई उसकी जनसंख्या भी ७० लाख से १७० लाख हो गई। चेकोस्लोवाकिया की भाँति रूमानिया ने भी विस्तृत भूमि सुधार किए और छोटे छोटे किसानो में भूमि का पुनर्वितरण किया। *उसके अल्पसंख्यक—हंगेरियन, रूसी और यहूदी—इतने अधिक महत्त्व*-पूर्ण नही थे कि उसकी राष्ट्रीय सुरक्षा को उनसे किसी प्रकार का खतरा हो। किन्तु रूमानिया का शासन भ्रष्टाचार के लिए बदनाम हो चुका था। रूमानियन सेना की क्षमता भी बालकन सेना की तुलना मे कम थी। सोवियत यूनियन के बाद योरोप में सबसे अधिक तेल रूमानिया में ही उत्पन्न होता था, और तेल तथा गेहूँ ही उसकी सम्पत्ति के प्रमुख साधन थे।

घरेलू मामलो में, युगोस्लाविया को भी चेकोस्लोवाकिया जैसी ही समस्या का सामना करना पड़ा। यह समस्या सजातीय जातियो (cognate races) को एकता के सूत्र में पिरोने की थी। युगोस्लाव राज्य की जनसंख्या मे शामिल तीन जातियो में से, सर्ब (Serbs) जाति १८६७ में तुर्की नगर-रक्षक सेनाओ (garrisons) को अंतिम रूप से हटा लिए जाने के बाद से, स्वतन्त्रता का

[1]. "Of all the states of Central Europe, Czechoslovakia was the most heterogeneous and, from the military standpoint, the most vulnerable."

उपभोग करती आ रही थी। सन् १६१८ तक क्रोटस (Croats) हगरी के और स्लोवेन्स (Slovenes) ऑस्ट्रिया के अधीन रहे थे। सर्ब लोग, जो कि आरभ से ही सघ के सबसे प्रमुख अग थे और जिनमे सहज ही सगठित हो सकने की प्रवृत्ति थी, अच्छे योद्धा थे, किन्तु राजनैतिक और सास्कृतिक दृष्टि से वे क्रोटस और स्लोवेन्स लोगो की तुलना में नही ठहरते थे। वे दोनो जातियाँ उन्हे आधे जगली (semi-barbarians) मानती थी। इन जातियो का सघर्ष नए राज्य की प्रगति में बहुत अधिक हो गया तथा उसके साथ ही साथ स्वय सर्ब लोगो की राजनैतिक अपरिपक्वता (political immaturity) ने उस देश में किसी भी प्रकार की ससदीय शासनव्यवस्था (parliamentary system) चल सकना कठिन बना दिया। क्रोट् नेता स्वायत्त शासन (autonomy) की माँग करते ही रहे; इस माँग के परिणामस्वरूप उनमे से कई ने वर्षों तक जेल भुगती या देश निकाला सहा। इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति का दोष दोनों पक्षो के मत्थे है। इस देश की समृद्धि, बलिष्ठ और परिश्रमी कृषको पर मुख्यतः निर्भर थी यद्यपि उसके खनिज साधन भी प्रचुर थे।

जहा तक विदेशी मामलो का सबध है, यूगोस्लाविया लघु मैत्रीसघ का एक ऐसा सदस्य था जिसके हित सर्वाधिक विविधतापूर्ण और विस्तृत थे। चेकोस्लोवाकिया प्रधानतः मध्य योरोप का देश था और रूमानिया बालकन देशो मे से था, किन्तु यूगोस्लाविया दोनो ही मे समान रूप से शामिल था। उत्तर मे, उसका सीमात विएना के एक सौ मील के भीतर था और दक्षिण पूर्व मे एजियन (Aegean) के पचास मील के भीतर। हितो की, इस विविधता (multiplicity) के कारण सघ में उसका एक विशिष्ट स्थान बन गया। हगरी से सामूहिक रक्षा के लिए लघु मैत्रीसघ की स्थापना की गई थी और केवल हगरी ही एक ऐसा देश था जिसके नाम का स्पष्ट उल्लेख गुट की स्थापना सबंधी सधियो में किया गया था। किन्तु यूगोस्लाविया को हगरी से सबसे अधिक भय कभी भी नही रहा। उसके हिस्से मे हगरी का जो भू-भाग आया था, वह चेकोस्लोवाकिया और रूमानिया के हिस्सो से छोटा था। उसे हगरी के अनुप्राप्तिवादियो (irredentism) से भी भय कम ही था। इसके विपरीत एड्रियाटिक (Adriatic) में इटली की प्रमुख स्थिति से उसे अत्यन्त ईर्ष्या थी। यूगोस्लाविया यह मानता था कि इटली ने अपने उचित हिस्से से भी अधिक स्लाव (Slav) क्षेत्र

हड़प लिया था और यह एक कुख्यात तथ्य था कि इटली यूगोस्लाव राज्य को ही छिन्न-भिन्न करने के स्वप्न देख रहा था और शायद, उसके लिए षड्यन्त्र भी रच रहा था। यूगोस्लाविया के लोग तीव्र घृणा करते थे। दोनो युद्धो के बीच की अवधि मे योरोप मे जितने भी आपसी झगडे (feuds) हुए उनमें यूगोस्लाविया और इटली का आपसी द्वेष सबसे पुराना कारण था।

लघु मैत्रीसघ के हर दो सदस्यो ने १६२० और १६२१ मे गुटबदी की आपस में जो सन्धियाँ की थी, उनके परिणामस्वरूप लघु मैत्रीसघ अस्तित्व मे आया था। उसके काफी समय बाद फ्रास ने लघु मैत्रीसघ के राज्यो से राजनैतिक सधियाँ की। किन्तु प्रारभ से ही, औपचारिक रूप से या अनौपचारिक रूप से, यह सैनिक समझौते हो चुके थे जिसमें व्यवस्था थी कि (जैसा कि पोलैंड के साथ हुई सन्धि में) फ्रासीसी सैनिक मिशनो की नियुक्ति की जाएगी और लघु मैत्रीसघ की सेनाओ के लिए फ्रास युद्ध-सामग्री देगा। चाहे जेनेवा हो या और कोई स्थान, चेकोस्लोवाकिया, रूमानिया और यूगोस्लाविया विदेशी मामलो में फ्रास के विश्वासपात्र पिछलग्गू (Satellites) राज्य हो गये। लघु मैत्रीसघ के साथ फ्रास के सम्बन्धो का आधार पोलैंड के साथ सम्बन्धो से भिन्न था। पोलैंड के साथ उसकी गुटबदी का आधार जर्मनी को आगे न बढने देने के सम्बन्धो से स्पष्ट एव सामान्य हित था। इसके विपरीत, लघु मैत्रीसघ के देशो के साथ उसका समझौता एक गुप्त सौदा था जिसके अनुसार वर्सैलीज की सन्धि को कार्यान्वित करने मे फ्रास की सहायता करना लघु मैत्रीसघ के तीनों राष्ट्रो का कर्त्तव्य था जबकि इस सन्धि में स्वय उनका अपना हित नगण्य ही था। फ्रास ने यह वचन दिया था कि वह लघु मैत्रीसघ के सभी देशो की हगरी से रक्षा करेगा तथा यूगोस्लाविया को इटली से विशेष रूप से बचाएगा। इस सारे प्रयत्न की सार्थकता इसी बात मे थी कि फ्रास की सुरक्षा सीमा में वृद्धि हो गई। अब वह न केवल वर्सैलीज की सधि का पालन करने के लिए ही निश्चित रूप से वचनबद्ध था अपितु सारे योरोपीय शाति समझौते के पालन के लिए भी। अब उसका सम्बन्ध केवल इसी बात से नही रह गया था कि वह जर्मनी को राइन तक ही सीमित रखे और पूर्व में उसे अपनी स्थिति सुदृढ नही बनाने दे। यह बात सर्वमान्य हो चुकी थी कि लिथुआनिया से पोलैंड को, हगरी से चेकोस्लोवाकिया को, बलगेरिया से यूगोस्लाविया तथा रूमानिया की रक्षा करने, एव अपने मित्र राष्ट्रो को उनके

अल्पसंख्यकों के प्रति कर्त्तव्यों के जबरन तोड़ मरोड़ कर निकाले गए अर्थों की असुविधाओं से बचाने में भी फ्रांस का हित था। इन सभी प्रश्नों पर उसके सुदृढ़ प्रभाव (powerful influence) को देखते हुए फ्रांस का आश्रय लेने में ही सार था।[1]

सन् १९२०-२४ की अवधि में फ्रांस, जिसके पास विशाल, सुसज्जित और जयी (victorious) सेना थी तथा प्रचुर मात्रा में गोला बारूद का संग्रह था, योरोप में शक्ति और गौरव की चरम सीमा पर पहुँच गया।[2] वह पूर्व-स्थिति (status quo) बनाए रखने का प्रबल पक्षधर (champion) और संशोधनवाद (revisionism) कट्टर विरोधी था। उसकी स्थिति की तुलना सन् १८१५ के शांति समझौते के बाद मैटरनिच (Metternich) की स्थिति से की जा सकती है। पोलैंड और लघु मैत्रीसंघ के देशों के साथ समझौते कर उसने "ईसाई देश गुटबंदी" ("Holy Alliance") का आधुनिक प्रतिरूप ही तैयार कर लिया था।

---

1. "The importance of this move was that it enlarged France's conception of her own security She was now definitely committed to the maintenance not only of the Versailles Treaty, but of the whole European peace settlement It was no longer her concern merely to keep Germany at bay on the Rhine and prevent her from strengthening her position in the east It became a recognised French interest to support Poland against Lithuania, Czechoslovakia against Hungary, and even to save her friends from the inconvenience of a too rigorous interpretation of their obligations towards their minorities In view of the powerful influence which she could exercise in all these questions, France was a patron well worth having"

2. "During the period 1920 24 France, the possessor of a large, well equipped and victorious army and of enorm ous stocks of ammunitions, reached the summit of her prestige and power in Europe"

२. पराजित जर्मनी
(Germany in Defeat)

जिन दिनो फ्रास की तूती बज रही थी उन्ही दिनो जर्मनी को सबसे अधिक अपमान सहना पड रहा था।[1] उसकी घरेलू राजनीति इस पुस्तक का विषय नहीं है। किन्तु दोनो ही विश्वयुद्धो के बीच की अवधि में जर्मनी के आन्तरिक घटना चक्र का अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति पर इतना सीधा प्रभाव पडा था कि उसके बारे मे दो शब्द यहाँ कहना आवश्यक है। सन् १९१४ से पहिले जर्मनी में ससदीय प्रजातन्त्र (parliamentary democracy) और सैनिक निरंकुशता (military autocracy) दोनों ही के लक्षणो वाली शासन प्रणाली थी। *सभवत• यह प्रणाली जर्मन जनता के राजनैतिक विकास के अधिक अनुकूल* थी। युद्ध के बाद, प्रजातन्त्र प्रेम की विश्वव्यापी लहर जर्मनी मे भी फैल गई, और नवम्बर १९१८ की अशाति के बाद वहाँ जो सरकार बनी उसका स्वरूप गणतन्त्रीय था। सोशल डेमोक्रेटस सत्तारूढ हुए और इबर्ट (Ebert) नामक एक भूतपूर्व चमकार को राष्ट्रपति बनाया गया।

"वीमर गणतन्त्र" ("Weimar Republic") (उसका यह नाम इसलिए पडा कि वीमर नामक स्थान पर राष्ट्रीय सभा ने १९१९ में उसका सविधान स्वीकार किया था) का प्रारम्भ बहुत ही निराशाजनक परिस्थितियों मे हुआ। उसे चारो ओर अव्यवस्था, असगठन और अकिंचनता (disorder, disorganisation and destitution) का सामना करना पडा। उसका पहला काय वर्सेलीज की सन्धि का अनुसमर्थन (ratification) करना था। इस कारण जर्मन जनता के मन मे *उनका नाम राष्ट्रीय अपमान के साथ जुड* गया। सन् १८१५ मे नेपोलियन का तख्ता उलट देने वाले राष्ट्रो ने यह उचित समझा था कि यदि वे फ्रास मे पुनर्स्थापित राजतन्त्र (restored monarchy) को बनाए रखना चाहते हैं तो उन्हे उसके प्रति सम्मान और

---

[1] "The years of French supremacy were also the years of Germany's deepest humiliation."

औदार्य दिखाना चाहिये, किन्तु १६१८ के विजेताओं ने इस प्रकार की बुद्धिमानी नही दिखलाई। यह उनके हित मे ही था कि शातिप्रिय वीमर प्रजातन्त्र को जर्मनी मे अपने पैर जमा लेने में वे उसकी सहायता करते। किन्तु उसकी प्रतिष्ठा बढाने का हर सभव प्रयत्न करने के बदले, वे उसे हमेशा ही इस प्रकार नीचा दिखाते रहे कि वह जर्मन जनता का प्रेम और उसकी निष्ठा (loyalty) सम्पादित करने की कभी आशा भी नही कर सकता था। वर्सेलीज की सन्धि के क्षेत्रिक उपबन्धो की चर्चा विषय प्रवेश वाले अध्याय मे की जा चुकी है। इस अध्याय का विषय सन्धि के वे अन्य उपबन्ध हैं जिन्होने १६२०-२४ तक जर्मनी के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो को सबसे अधिक प्रभावित किया।

युद्ध-अपराध और युद्ध-अपराधी
(War Guilt and War Criminals)

"युद्ध अपराध" और "युद्ध-अपराधियो" सम्बन्धी सन्धि की धाराओं का फ्रास की अपेक्षा ग्रेट ब्रिटेन में अधिक उत्साहपूर्वक अनुमोदन किया गया। पिछले युद्धो के विजेता अपने पराजित शत्रु के साथ कितना ही निर्दयतापूर्ण व्यवहार क्यो न करते रहे हो, किन्तु वे यह अनावश्यक समझते थे कि अपने शत्रु की सार्वजनिक रूप से नैतिक निन्दा की जाये। परन्तु ग्रेट ब्रिटेन और फ्रान्स दोनों ही देशो में युद्ध प्रचार के समय जर्मनी की नैतिक पथ भ्रष्टता (delinquencies) (विशेषकर बेल्जियम की तटस्थता भग करने, अपने अधिकार के क्षेत्रो का अनावश्यक रूप से मटियामेट करने, बमवर्षा कर नागरिको की हत्या करने और व्यापारिक जहाजो से पनडुब्बी द्वारा अबाधित (unrestricted) युद्ध करने) की निरन्तर इतनी निन्दा की गई थी कि लोकमत जर्मनी के कृत्यो की औपचारिक रूप से निन्दा करना चाहता था। जर्मनी के अपराधो पर जोर दिए जाने के कारण ही शान्ति की शर्तों की कठोरता को उचित ठहराया जा सकता था। ब्रिटिश और अमरीकी दोनो ही क्षेत्र इस प्रकार के औचित्य की आवश्यकता अनुभव भी करते थे। क्षतिपूर्ति सम्बन्धी अध्याय के आरम्भ में ही लिखे गए एक अनुच्छेद के अनुसार, जर्मनी को, 'जर्मनी और उसके साथी राष्ट्रो के आक्रमण के कारण विवशतापूर्वक युद्ध में सम्मिलित होने के परिणामस्वरूप मित्र और साथी राष्ट्रो की सरकारो तथा जनता को जो भी हानि और क्षति उठानी पड़ी, उसकी (जर्मनी और उसके साथी राष्ट्रो की) जिम्मेदारी को स्वीकार करने" के

लिए बाध्य किया गया। इस अनुच्छेद की स्थिति महत्त्व से खाली नहीं थी। इस संधि के क्षतिपूर्ति सम्बन्धी उपबन्धों ने अमरीको और कुछ ब्रिटिश क्षेत्र में सबसे अधिक भ्रान्त धारणाएँ फैलाई।

प्रथम विश्वयुद्ध की उत्पत्ति पर इतिहासकार सम्भवतः शताब्दियों तक बहस करते रहेंगे। इतिहास का निर्णय शायद यह हो सकता है कि युद्धरत सभी राष्ट्रों में (all belligerent Powers) जर्मनी और उसके साथी राष्ट्रों पर ही युद्ध की सबसे अधिक जिम्मेदारी थी। किन्तु ऐतिहासिक सत्य की स्थापना किसी अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि से नहीं की जा सकती—जो संधि विजेताओं द्वारा विजितों पर लादी गई हो उससे तो कदापि नहीं। उत्तेजना के उन क्षणों में मित्र-राष्ट्रों की सरकारों ने यह नहीं सोचा कि जबरदस्ती अपराध स्वीकार कराने से कुछ काम नहीं चल सकता और उसके परिणामस्वरूप जर्मन जनता में तीव्र रोष की भावना फैले बिना नहीं रहेगी। *जर्मनी का विद्वत् समाज यह सिद्ध करने में लग गया कि* उनका देश निर्दोष था। इस समाज का यह स्वप्न था कि यदि यह बात सिद्ध कर दी गई तो सन्धि का सारा ढाँचा ही लड़खड़ा पड़ेगा। मित्र-राष्ट्रों में भी, युद्ध-अपराध सम्बन्धी धारा की व्यर्थता शीघ्र ही अनुभव कर ली गई। किन्तु उसे कभी भी विधिवत् रद्द नहीं किया गया तथा सन्धि के साथ ही नष्ट होने के लिए छोड़ दिया गया।

युद्ध-अपराधियों सम्बन्धी सन्धि के अनुच्छेद (तत्सम्बन्धी अध्याय को "शास्तियाँ" (penalties) नाम दिया गया है) तत्काल अपना प्रभाव दिखाने वाले थे। उनमें से पहले में मित्र-राष्ट्रों ने "भूतपूर्व जर्मन सम्राट्—होहेनजोर्लेन के विलियम द्वितीय (Hohenzollern) पर सार्वजनिक रूप से यह आरोप लगाया कि उसने अन्तर्राष्ट्रीय नैतिकता और सन्धियों के विरुद्ध गुरुतम अपराध किया है।"

भूतपूर्व कैसर पर पाँच सदस्यों वाले—अमरीकी, ब्रिटिश, फ्रांसीसी, इटालियन और जापानी—एक न्यायालय में मुकदमा चलाया जाना था। इन सदस्यों का काम 'दंड निश्चित करना'' था। सन्धि अमल में आने के तुरन्त बाद ही, मित्र-राष्ट्रों ने सरकारी तौर पर हॉलैंड (जहाँ कि नवम्बर १९१८ में भूतपूर्व कैसर ने शरण ली) सरकार से यह अनुरोध किया कि वह कैसर को उन्हें सौंप दे। पूर्वापेक्षानुसार हॉलैंड सरकार ने यह उत्तर दिया कि "राजनैतिक शरणार्थी

को वापस सौप देना अन्तर्राष्ट्रीय प्रथा (usage) के विरुद्ध है। इस प्रकार सन्धि के कुख्यात अनुच्छेदो मे से एक कुछ ही महीनो में अतीत की वस्तु बन गया। यह एक सौभाग्यपूर्ण अन्त था। यदि मित्र राष्ट्र भूतपूर्व कैसर पर खुले आम मुकद्दमा चलाते तो सम्भवतः कैसर की जमनी मे खोई हुई प्रतिष्ठा फिर से स्थापित हो जाती और वह जर्मनी के राष्ट्रीय नेता एव शहीद के रूप में सामने आ जाता।

उपरोक्त अनुच्छेद के बाद के अनुच्छेदो के अनुसार जर्मनी ने यह वचन दिया कि मित्र राष्ट्रो ने जिन व्यक्तियो पर "युद्ध के नियमो और प्रथाओ के उल्लघन मे कृत्य करने" का आरोप लगाया हो उन जर्मनी स्थित व्यक्तियो को वह मित्र-राष्ट्रो के सैनिक न्यायालयो को मुकद्दमा चलाने के लिए सौप देगा। इसमे सन्देह ही है कि यह व्यवस्था जिसका कितना ही युक्तिसगत अर्थ क्यो न लगाया जाए, जर्मनी में क्रान्ति किए बिना अमल मे लाई जा सकती थी। किन्तु जब इस बात का पता चला कि मित्र-राष्ट्रो द्वारा तैयार की गई सूची में हिन्डेनबर्ग, लुडेनडार्फ के युवराज और युद्ध के समय जर्मनी की ओर लडे से लगभग हर प्रमुख व्यक्ति का नाम सम्मिलित है, तब क्रोधाग्नि इतनी भडक उठी कि इस माँग को पूरा करना असम्भव हो गया। जमनी और मित्र-राष्ट्रो (Allies) की सरकारो के व च लम्बी कशमकश के बाद, एक समझौता हुआ जिसके अनुसार जर्मन सरकार न यह स्वीकार कर लिया कि वह कुल अपराधियो मे से बारह अपराधियो को (जिनके विरुद्ध निश्चित और निन्दाजनक रूप से युद्ध नियमो को भग करने का आरोप था) लिपज़िग (Leipzig) स्थित जर्मन सर्वोच्च न्यायालय (German Supreme Court) के सामने उपस्थित करेगी और इस न्यायालय में मित्र-राष्ट्रो की सरकारें अभियोक्ता (prosecutors) रहेंगी। मुकद्दमे १६२१ मे चले। छः अपराधियो का अपराध सिद्ध हुआ और उन्हे कारावास की सजा दी गई। उसके बाद सन्धि की इन धाराओ के विषय मे और कुछ कभी भी नही सुना गया। यदि उस समय के गरम वातावरण ने मित्र राष्ट्रो की सरकारो को यही व्यवस्था पारस्परिक आधार पर करने दी होती और यदि ये सरकारें भी जर्मन सरकार द्वारा इसी प्रकार के अपराध के लिए आरोपित अपने देशवासियो पर भी मुकद्दमा चलाने के लिए तैयार हो जाती तो इस सारी कार्यवाही से एक महत्त्वपूर्ण नई प्रथा का श्रीगणेश होता तथा अन्तर्राष्ट्रीय

कानून को यथार्थ में प्रभावकारक बनाने की मानवता की उत्सुकतापूर्ण इच्छा भी पूरी हो जाती ।[1]

निःशस्त्रीकरण और असेनीकरण
(Disarmament and Demilitarisation)

अपनी विजय के कारण मित्र-राष्ट्रों के मन में यह इच्छा उत्पन्न होना स्वाभाविक और आवश्यक थी कि वे अपने शत्रुओं को यथासंभव दीर्घकाल तक के लिए सैनिक दृष्टि से पंगु बना दें। विरामसन्धि के समय जर्मनी ने अपना अधिकांश बेडा (fleet) और भारी तोपखाना (artillery) समर्पित कर दिया था। सन्धि के द्वारा उसकी सैनिक शक्ति पर स्थायी प्रतिबंध लगा दिए गए थे। उसकी सेना की संख्या सीमित कर १००,००० कर दी गई थी जिसमें स्वेच्छा से ही किसी को भरती किया जा सकता था। अनिवार्य भरती (conscription) करने का निषेध किया गया था। उसकी नौसेना में केवल छः युद्धपोत (battleships) और इतने ही गश्तीजहाज (cruisers) तथा विध्वंसक (destroyers) रह सकते थे। वह पनडुब्बियाँ (submarines), सैनिक वायुयान और भारी तोपें नहीं रख सकता था तथा किलेबंदी नहीं कर सकता था। वह किस प्रकार की कितनी युद्ध सामग्री अपने पास रख सकेगा और युद्ध-सामग्री तैयार करने वाली कितनी फैक्टरियाँ उसके पास रह सकेंगी यह ठीक ठीक निश्चित कर दिया था। मित्र-राष्ट्रों के सैनिक, नौसैनिक और वायुसैनिक आयोग (Allied Naval, Military and Air Commissions) जिनके अधिकारियों की संख्या एक समय लगभग २,००० तक पहुँच गई थी जर्मनी में इन उपबंधों का पालन करवाने के लिए रखे गए और १९२७ तक उन्हें अन्तिम रूप से हटाया भी नहीं गया। इस कार्यवाही के दृढतापूर्ण प्रयोग

1. "Had the passions of the time permitted the Allied Government to make the arrangement reciprocal and had they themselves been willing to bring to trial any of their own nationals accused of similar offences by the German Government the whole procedure might have been a valuable innovation and an earnest of the desire of mankind to make international law an effective reality"

से बचने के लिए जर्मनी ने हर प्रयत्न किया। काफी युद्ध-सामग्री छिपाकर सभवतः नष्ट होने से बचा ली गई तथा ज्यो ही नियत्रण शिथिल किया गया त्योंही जर्मनी को सैनिक शक्ति को पुनः बढा लेने की सर्वत्र ही गुप्त तैयारियाँ की जाती रही। किन्तु इन सभी बातो पर विचार करने के बाद इतना अवश्य कहा जा सकता है कि १९२४ तक जर्मनी का जिस कठोरतापूर्वक और सपूर्णरूपेण नि.शस्त्रीकरण किया जा चुका था, उतना और किसी भी देश का कभी किया गया था—इसका उल्लेख लिखित रूप में प्राप्त आधुनिक इतिहास में नहीं मिलता।

यहां यह स्मरण रखने योग्य है कि वर्सेलीज की सन्धि के अनुसार, राइनभूमि (Rhineland) का न केवल स्थायी रूप से असैनीकरण कर दिया जाना था, अपितु पद्रह वर्षों तक उस पर मित्र-राष्टो की सेना का अधिकार भी रहना था। अधिकृत क्षेत्र का नागरिक प्रशासन जर्मन अधिकारियो के हाथो में रहा परन्तु मित्र-राष्ट्रो की सेना की 'सुरक्षा निर्वाह (maintenance) और आवश्यकताओ को पूर्ति के लिए आवश्यक होने पर" अन्तर मित्र राष्ट्रीय उच्च आयोग (Inter Allied High Commission) को जिसमें फ्रास, बेल्जियम, ब्रिटेन और अमेरिका के प्रतिनिधि रखे गए थे, अध्यादेश (ordinances) जारी करने की शक्ति (power) प्राप्त थी। ये अध्यादेश कानून क समान ही प्रभावशील होते थे। अमेरिका द्वारा सन्धि का अनुसमर्थन नहीं किए जाने क बावजूद भी, अमरीकी सैनाएँ राइनभूमि म १९२३ तक बनी रही और अमरीकी आयुक्त (Commissioner) उच्च आयोग की बैठको में बराबर भाग लेता रहा किन्तु उसे मत देने का अधिकार नहीं था।

जर्मनी के प्रति फ्रास और ब्रिटेन के दृष्टिकोणों की विभिन्नता—जो कि १९२० से ही योरोपीय राजनीति मे समाधानहीन घटक (unsettling factor) रही थी राइनभूमि पर सयुक्त अधिकार (joint occupation) के समय पहिली बार सामने आ गई। युद्ध समाप्ति क समय जमन विरोधी भावनाएँ लदन मे भी उतनी ही कटु थी जितनी कि पेरिस में। वर्सेलीज की सन्धि की कुछ अत्यन्त दुर्भावनाजनक (invidious) धाराएँ यदि ब्रिटिश सरकार की प्रेरणा से नही लिखी गई, तो कम से कम उनका हार्दिक अनुमोदन तो ब्रिटेन ने किया ही था। किन्तु ब्रिटेन में यह दुर्भावना तेजी से कम होती गई। फ्रास को जहाँ एक ओर पराजित जर्मनी से भी भय था, वहीं दूसरी ओर जर्मन बेड़े के

नष्ट हो जाने से ब्रिटिश साम्राज्य अपने को पूरी तरह सुरक्षित समझने लगा। ब्रिटेन इस बात के लिए कुख्यात है ही कि उसे योरोप महाद्वीप में किसी भी राष्ट्र का शक्तिशाली होना फूटी आँखों नहीं सुहाता, इस समय यदि ब्रिटेन फ्रांस को जर्मनी को धूल में मिलाने देता तो यह बात उसकी परंपरा के विरुद्ध होती। पराजित शत्रु के प्रति औदार्य दिखाने और न्याय करने की परंपरागत (time-honoured) ब्रिटिश मान्यताओं और फ्रांसीसियों की सूक्ष्म वैधिक (legal) मनोवृत्ति में जो कि बंधपत्र (bond) में निर्दिष्ट रक्त की अन्तिम बूँद भी निकाल लेने के लिए उत्सुक हो, संघर्ष हुआ। राइनभूमि के दक्षिणी भाग पर अधिकार करने वाली फ्रांसीसी सेना ने जहाँ एक ओर शत्रु-भूमि (hostile land) में विजेताओं का रौब दिखाया और अपनी शक्ति का बढ़ा चढ़ाकर परिचय दिया, वहीं दूसरी ओर ब्रिटिश सेना ने जिसका मुख्यालय (head quarter) कोलोन (Cologne) में था, जर्मन लोगों को शीघ्र ही अपना घनिष्ट मित्र बना लिया। ब्रिटिश सिपाही, यद्यपि सैद्धांतिक रूप से एक अनिच्छित अतिथि था तथापि वह जर्मनी में बहुत लोकप्रिय हो गया। यह बात अक्सर कही जाती थी कि ब्रिटिश सिपाही को अपने भूतपूर्व-मित्रों (ex-allies) की अपेक्षा अपने भूतपूर्व शत्रुओं (ex-enemies) की संगति अधिक अच्छी लगती थी। इस प्रकार ऐसी परिस्थितियों का निर्माण हो चुका था जिनके कारण जर्मनी सम्बन्धी कई घटनाओं को लेकर फ्रांस और ब्रिटेन में मतभेद की खाई बनी।

इस प्रकार की घटनाओं में पहिली घटना फ्रान्स की अधिकार सेना में अश्वेत (coloured) सैनिक टुकड़ी (detachment) को सम्मिलित किए जाने से सम्बन्धित थी। फ्रांस रंगभेद नहीं मानता और यह असम्भाव्य (unlikely) है कि जर्मन जनता का और भी अपमान करने के लिए फ्रांसीसी अधिकारियों ने अश्वेत सिपाहियों को जानबूझकर राइनभूमि में भेजा हो। जर्मन लोगों ने तो इसका यही अर्थ लगाया था। इसलिए उन्होंने यह सोचकर कि ब्रिटेन और अमेरिका रंगभेद की नीति में जर्मनी से भी अधिक विश्वास रखते हैं, अपनी इस शिकायत को उनके सामने रखने का अवसर हाथ से नहीं खोया। "अश्वेत अपमान" ("black shame") और अश्वेत सेना के तथाकथित कुकृत्यों (misdeeds) को जर्मन प्रचारकों ने अपने प्रचार का खूब साधन बनाया। इस प्रकार युद्ध के बाद पहिली बार, ब्रिटिश और अमरीकी लोकमत ने फ्रांस के विरुद्ध जर्मनी का दृढ़ समर्थन किया।

दूसरी घटना फ्रांस द्वारा राइनभूमि मे एक तथाकथित "पार्थक्यवादी" (separatist) आन्दोलन को प्रोत्साहन दिए जाने से सम्बन्धित थी। शांति चर्चाओ के समय जर्मनी से राइनभूमि को बलात् पृथक (forcible separation) करा लेने मे असफल हो जाने के बाद कुछ फ्रांसीसी सेनापति और अधिकारी, फ्रांसीसी सरकार के मौन (tacit) अनुमोदनपूर्वक, अब इसी उद्देश्य की पूर्ति स्थानीय जनता को बर्लिन की सत्ता को उलट फेंककर राइनभूमि एक स्वतन्त्र राज्य घोषित कर देने के लिए उभाडकर करना चाहते थे। यह आन्दोलन लगभग बिलकुल नकली था। सौ वर्षों से भी अधिक समय से राइनभूमि का अधिकांश भाग प्रशा मे शामिल चला आ रहा था और बहुत ही कम राइनवासी फ्रांस के सरंक्षण मे अवास्तविक स्वायत्त शासन चाहते थे। किन्तु फ्रांसीसियो को किराए के कुछ टट्टू मिल गए या फ्रांसीसी उन्हे बाहर से ले आए। ये लोग फ्रांस से काफी पैसा लेकर यह नाटक करने के लिए तैयार हो गए। इस प्रकार तीन वर्षो तक पार्थक्यवादी आन्दोलन का नाटक बनाए रखा गया किन्तु १९२३ के शरद् मे परिस्थिति बिगड गई। पेलेटिनेट (Palatinate) मे, जो कि बेवेरिया (Bavaria) का भाग था, न कि प्रशा का, उच्च आयोग के स्थानीय फ्रांसीसी प्रतिनिधि ने पार्थक्यवादियो को एक स्वतन्त्र सरकार के रूप मे मान्यता दे दी और पार्थक्यवादियो ने, जिन्हे फ्रांसीसी सैनिक अधिकारियो ने इसी उद्देश्य के लिए शस्त्रादि दिए थे, जर्मन अधिकारियो को निकाल बाहर किया तथा प्रशासन अपने हाथ में ले लिया। जनवरी १९२४ में उच्च आयोग ने बहुमत से (फ्रांस और बेल्जियम ने ब्रिटेन के विरुद्ध मत दिया था) पेलेटिनेट की "स्वायत्त शासी (autonomous) सरकार" को अधिकृत रूप से मान्यता दे दी। ब्रिटिश लोकमत और ब्रिटिश सरकार को यह बात बहुत बुरी लगी। जब फ्रांसीसी सरकार पर काफी दबाव डाला गया, तब उसने राइनभूमि स्थित अपने प्रतिनिधियो को आदेश दिए कि वे पार्थक्यवादियो का समर्थन करना बन्द करदे। इसका परिणाम विध्वसकारी हुआ। सारा आन्दोलन कुछ ही घटो में समाप्त हो गया। पेलेटिनेट के प्रमुख नगरो मे दंगे हुए, और सेना के हस्तक्षेप से पहिले ही जनता ने बीसेक (a score or more) पार्थक्यवादियो को मौत के घाट उतार दिया। फरवरी १९१४ के बाद राइनभूमि मे पार्थक्यवादी आन्दोलन का नामोनिशान भी नही रहा।

जर्मनी और मित्र राष्ट्रो तथा फ्रांस और ग्रेट ब्रिटेन के सम्बन्धो को इस

अवधि में प्रभावित करने वाली तीसरी और सबसे महत्त्वपूर्ण घटना क्षतिपूर्ति का पेचीदा प्रश्न था जिस पर हम अब विचार करेंगे।

क्षतिपूर्ति (Reparation)

युद्ध-काल में अनेक देशों की प्रजातन्त्रीय विचारधारा इस बात के विरोध मे थी कि शांति-सधियों में, पराजित देशों से दण्ड रूप मे, 'युद्ध क्षतिपूर्ति' (war indemnity) वसूल की जाय। मित्र-राष्ट्रों की सरकारों ने यह राय स्वीकार कर ली और वर्सेलीज की सधि मे अपनी मांग केवल इसी बात तक सीमित रखी कि जर्मनी, 'मित्र और साथी राष्ट्रों की नागरिक जनता की जन-धन की जो भी हानि हुई हो, उसकी क्षतिपूर्ति करे।" जो भी हो, यह कोई खास रियायत नही थी, क्योंकि यह शीघ्र ही स्पष्ट हो गया कि जर्मनी के वर्तमान साधनों से इस क्षतिपूर्ति का भुगतान नहीं हो सकेगा। जहाँ तक पराजित राष्ट्र द्वारा विजेताओं को भुगतान करने का प्रश्न है, वर्सेलीज की सन्धि और पिछली शांति सन्धियों मे केवल यही अन्तर था कि इस बार सधि में भुगतान की कोई रकम निश्चित नही की गई थी। यह बात मित्र-राष्ट्र आयोग (Allied Commission), जिसे "क्षतिपूर्ति आयोग" कहा गया था, पर छोड दी गई थी कि वह बिल तैयार करे और यह निश्चित करे कि इस बिल की रकम किस प्रकार चुकाई जाये। निर्धारण (assessment) पहली मई १९२१ तक किया जाना था। इस तारीख से पहिले जर्मनी को १,०००,०००,००० पौंड आंशिक भुगतान (on account) के रूप मे चुकाने थे। यह अनुमान लगाया गया था कि इसके बाद का भुगतान कम से कम तीस वर्षों मे जाकर पूरा हो सकेगा।

वर्सेलीज सधि पर हस्ताक्षर होने से पहिले मित्र राष्ट्रों और जर्मन प्रतिनिधि मंडल मे हुए पत्र व्यवहार में, मित्र-राष्ट्रों ने यह वचन दिया था कि "पूरे दायित्व (liability) के निबटारे में जर्मनी यदि कोई एकमुश्त रकम (lump sum) देना चाहे, तो मित्र राष्ट्र ऐसे प्रस्ताव पर विचार करेंगे।"—यह एक-मुश्त भुगतान क्षतिपूर्ति आयोग द्वारा किए जाने वाले प्रस्तावित निर्धारण के स्थान में किया जा सकता था। इस प्रकार १९२० की प्रमुखताएं ये थीं—उक्त प्रस्ताव की सम्भावित शर्तों और माल में भुगतान (deliveries in kind) (विशेषकर कोयले के रूप मे)" पर चर्चा, जिसके द्वारा जर्मनी १,०००,०००,०००

पौंड का प्रारंभिक भुगतान करना चाहता था। उसी वर्ष जुलाई में स्पा (Spa) में एक सम्मेलन हुआ जिसमें जर्मनी के प्रधानमंत्री (Chancellor) और विदेशमंत्री ने मित्र-राष्ट्रों के प्रमुख मंत्रियों से पहिली वार बराबरी की हैसियत से चर्चाएं की। किन्तु इन मंत्रियों मे केवल यही समझौता हो सका कि अगले छ महीनों में कितना कोयला दिया जाये, और क्षतिपूर्ति के प्रश्न पर स्पा सम्मेलन मे हुआ प्रमुख निर्णय इस समय तक अप्राप्त प्राप्तियों (आमद) (hitherto non-existent receipts) का मित्र राष्ट्रों में आपस में बँटवारे से सम्बन्धित था। इस प्राप्ति का ५२ प्रतिशत फ्रांस को, २२ प्रतिशत ब्रिटिश साम्राज्य को, १० प्रतिशत इटली को, और ८ प्रतिशत बेल्जियम को मिलना था, तथा शेष भाग छोटे छोटे मित्र-राष्ट्रों में आपसी बँटवारे के लिए छोड दिया गया। चूँकि बेल्जियम को बहुत अधिक हानि उठानी पड़ी थी, इसलिए उसे १००,०००,००० पौंड तक ग्रहण करने का प्राथम्य (priority) दिया गया था।

जर्मनी से "एकमुश्त" कितनी रकम की आशा करना युक्तिसगत है, इस बारे मे जर्मन सरकार और मित्र राष्ट्रों की सरकारों में इतना मतभेद था कि कोई समझौता हो सकना कठिन था। जर्मनी द्वारा क्षतिपूर्ति का प्रारंभिक भुगतान तथा नि.शस्त्रीकरण सम्बन्धी कुछ उपबंधों पर अमल करने में असफल होने के कारण मार्च १९२१ मे, मित्र-राष्ट्रों की सेना ने राइन के पूर्व में स्थित ड्यूसेलडोर्फ (Dusseldorf), ड्युइसबेर्ग (Duisberg) और रूहरोर्ट (Ruhrort) नामक तीन नगरों पर अधिकार कर लिया। संधि का अनुसरण करते हुए क्षतिपूर्ति आयोग ने अप्रैल २७, १९२१ को जर्मनी का कुल दायित्व ६,६००,०००,००० पौंड निश्चित किया। इस समय तक मित्र-राष्ट्रों के विचारशील व्यक्ति यह मान चुके थे कि जर्मनी इतने बड़े बिल की बहुत थोडी ही रकम चुका सकता है। मित्र राष्ट्रों की सरकारों में अभी इतना साहस नहीं था कि वे अपने दावों की कुछ रकम खुले आम छोड दें। जर्मनी के कर्ज (debt) को तीन प्रकार के ऋणपत्रों (bonds) के अनुसार तीन भागों मे बाँटा गया था। ये ऋणपत्र "क" ("A") "ख" ("B") और "ग" ("C") प्रकार के थे। "ग" ऋणपत्रों की रकम ४,०००,०००,००० पौंड थी और ये ऋणपत्र जर्मनी की भुगतान-क्षमता स्थिर हो जाने तक क्षतिपूर्ति आयोग के पास ही रहने थे। इस प्रकार पूरे कर्ज की दो तिहाई रकम की वसूली अनिश्चित समय के लिए खटाई मे डाल दी गई। शेष रकम की भुगतान के लिए मित्र-राष्ट्रों की सरकारों ने एक "भुगतान कार्यक्रम" ("schedule of pay-

ments") तैयार किया जिसके अनुसार जर्मनी १००,०००,००० पौंड और अपनी निर्यात-वस्तुओं के मूल्य का २५ प्रतिशत चुकाये, यह निश्चित किया गया था। यह कार्यक्रम जर्मन सरकार के पास इस अल्टीमेटम के साथ भेज दिया गया कि १२ मई तक यदि उसे स्वीकार नहीं किया गया, तो मित्र राष्ट्रों की सेनाएँ रूर (Ruhr) घाटी पर अधिकार कर लेंगी–रूर घाटी जर्मनी के धातु उद्योग (metallurgical industry) का केन्द्र थी तथा जर्मनी के कोयले, कच्चे लोहे, तथा इस्पात का ८० प्रतिशत से भी अधिक वहाँ उत्पन्न होता था। जर्मनी में मंत्रिमंडलीय संकट (Cabinet crisis) उत्पन्न हो गया, अन्त में, ११ मई को यह माँग स्वीकार कर ली गई।

कार्यक्रम के अनुसार अदायगी (due) के ५०,०००,००० पौंड की पहिली किश्त जर्मनी ने अगस्त में चुका दी और तीन वर्षों से भी अधिक समय तक यही उसका अन्तिम नकद भुगतान रहा। किन्तु जर्मनी शीघ्र ही मुद्रा-संकट(currency crisis) में फँस गया। संकट से पहिले २० मार्क (mark) का सामान्य मूल्य (normal value) एक स्टर्लिंग पौंड था किन्तु १९२० के मध्य तक लगभग २५० मार्कों का मूल्य एक पौंड तक हो चुका था। कुछ समय तक वह इस आँकड़े पर स्थिर रहा। इस स्थिरता के लिए कुछ विदेशी सट्टेबाज (speculators) अधिकांशतः जिम्मेदार थे जोकि जल्दबाजी में यह मान बैठे थे कि मार्क का अपने मूल मूल्य (original value) पर किसी न किसी दिन आना सुनिश्चित है। किन्तु १९२१ के ग्रीष्म में, जब यह स्पष्ट हो गया कि भुगतान कार्यक्रम के अन्तर्गत अपने दायित्वों के भुगतान के लिए जर्मनी को विदेशी मुद्रा की बहुत अधिक आवश्यकता पड़ेगी, तब मार्क के मूल्य का गिरना पुनः प्रारंभ हो गया। नवम्बर में तो १००० मार्क का एक पौंड तक मूल्य हो गया और १९२२ के ग्रीष्म में उसकी गिरावट (fall) त्वरित और अनिष्टकारक (rapid and catastrophic) हो गई।

इस समय तक विश्व के अर्थ विशेषज्ञ यह मान चुके थे कि क्षतिपूर्ति का नकद भुगतान करने की जर्मनी की हैसियत अब बिलकुल भी नहीं रही है। मित्र-राष्ट्रों के लिए मार्कों का कोई महत्त्व नहीं था। जर्मन सरकार यदि भुगतान करना चाहती भी तो उसके पास अन्य मुद्राएँ क्रय करने के साधन नहीं थे। ब्रिटिश सरकार इस बात पर जोर दे रही थी कि जर्मनी दो वर्ष के भुगतान-

विलम्बकाल (moratorium) के भीतर सभी नकद-भुगतान कर दे। फ्रांसीसी लोकमत यह स्वीकार करने के लिए तैयार नही था कि एक कर्जदार अपने न्याय दायित्वो (just obligations) से भी इस प्रकार बचने का प्रयत्न करे और विजयी मित्र राष्ट्र को युद्ध तथा पुनर्निर्माण (reconstruction) का भारी बोझ स्वय उठाना पडे। सन् १६२१ के अल्टीमेटम के कारण फ्रांसीसी सरकार की तृष्णा और भी बढ गई थी। यदि रूर पर मित्र राष्ट्रो का अधिकार हो जाये, तो न केवल फ्रास की सुरक्षा बढ सकती थी, अपितु जर्मन उद्योग का लाभ भी मित्र-राष्ट्रो के राजकोषो (exchequers) मे बलात् जमा कर लिया जा सकता था। यह योजना जो कि "उत्पादक गारन्टियो" ("productive guarantees") की नीति के रूप मे घोषित की गई थी, कुछ फ्रांसीसी राजनीतिज्ञो को अत्यन्त आकर्षक प्रतीत हुई। पोंकारे भी उनमे से एक था। दिसम्बर १६२२ मे जर्मनी माल-भुगतान के वचनबद्ध कार्यक्रम की कुछ मात्रा पूरी नही कर सका। इस पर क्षतिपूर्ति आयोग ने, ब्रिटिश प्रतिनिधि का मत विरोध में होते हुए भी, यह घोषित कर दिया कि जर्मनी ने "जानबूझकर भुगतान नही किया"। इस कदम की महत्ता सन्धि के उस अनुच्छेद में निहित थी जिसके अनुसार मित्र-राष्ट्रो को यह अधिकार था कि "यदि जर्मनी जानबूझकर भुगतान नही करे" तो "सबधित सरकारें आवश्यक कदम उठा सकती है।"

फ्रांसीसियो ने जिस प्रयोग को आजमाने पर अपनी दृष्टि लगा रखी थी, उस प्रयोग के लिए अब रास्ता साफ हो चुका था। जनवरी ११, १६२३ को ब्रिटिश सरकार का सहयोग प्राप्त करने या कम से कम उसका अनुमोदन प्राप्त कर लेने का निष्फल प्रयत्न कर लेने के बाद फ्रास व बेल्जियम की सेनाओ ने रूर में प्रवेश किया। जर्मन सरकार ने निष्क्रिय प्रतिरोध [(सत्याग्रह) (passive resistance)] की नीति अपनाने की घोषणा कर दी। आक्रमणकारियो के साथ किसी प्रकार का भुगतान सहयोग करने की जर्मन लोगो को मनाही कर दी गई। जिसके साथ ही स्वेच्छा से किए जाने वाले सभी क्षतिपूर्ति भुगतान तथा माल भुगतान बन्द कर दिए गये। फ्रांसीसियो ने भी इसका जबाब प्रत्युत्तर बहिष्कार (counter boycott) से दिया। उन्होने अधिकृत (occupied) और अनधिकृत (unoccupied) जर्मन क्षेत्र में भेद किया तथा अनधिकृत जर्मन

क्षेत्र में कोई भी वस्तु नहीं जाने दी। अधिकृत क्षेत्र के सहयोग विमुख अधिकारियों और उद्योगपतियों को या तो निकाल दिया गया या जेलों में ठूँस दिया गया तथा रूर उद्योग के उत्पादन से क्षतिपूर्ति की रकम वसूल करने के लिए एक पृथक् संगठन की स्थापना कर दी गई।

ब्रिटिश सरकार ने यह दृष्टिकोण अपनाया कि फ्रांस और बेल्जियम द्वारा एक अपर्याप्त कारण को लेकर और मित्र-राष्ट्रों की सहमति से बिना पृथक रूप से की गई यह कार्रवाई सन्धि का उल्लंघन (contravention) है। उसे यह विश्वास भी नहीं था कि इस प्रकार का मार्ग अपनाने से क्षतिपूर्ति की रकम वसूल हो सकेगी। फ्रांस और ब्रिटेन के सम्बन्धों में निश्चित रूप से तनाव आ गया। राइनभूमि में स्थिति सबसे कठिन हो गई। सन् १९२३ में उच्च आयोग ने लगभग सभी निर्णय बहुमत से किये किन्तु ब्रिटेन का मत उनके विरोध में रहा। यदि निर्णयों का सम्बन्ध रूर पर अधिकार से होता था, तो ब्रिटिश क्षेत्र के अधिकारी उन्हें अमल में लाने से इन्कार कर देते थे।

रूर पर अधिकार के कारण जर्मनी का सारा आर्थिक जीवन ही ठप्प हो गया। जहाँ तक फ्रांस का प्रश्न है, रूर के कोयले और लोहे से उसकी लागत ही नहीं निकलती थी। इधर जर्मनी पर इस अधिकार का तत्काल प्रभाव यह पड़ा कि उसका राजकोष (exchequer) बिलकुल ही खाली हो गया। अधिकार से कुछ समय पूर्व ही, मार्क का मूल्य गिरकर प्रति पौंड ३५,००० हो चुका था। सन् १९२३ में पूरे वर्ष यह ह्रास (decline) जारी रहा, यहाँ तक कि कभी-कभी तो उसका मूल्य दूसरे दिन ही आधा हो जाता था। जो विदेशी अपनी "खरी ("Good") मुद्राओं का इन अनापशनाप दरों (fantastic rates) पर विनिमय करता था, वह कुछ ही पैसे प्रतिदिन व्यय कर जर्मनी में ठाट बाट से रह सकता था या कुछ ही शिलिंगों में सारे जर्मनी की यात्रा कर सकता था। सन् १९२३ के समाप्त होते-होते, एक पौंड के ५०,००० अरब (Milliard= One thousand millions—Tr.) मार्क प्राप्त किये जा सकते थे।

इसमें सन्देह नहीं कि मार्क का मूल ह्रास (original decline) जिन कारणों—युद्ध काल की आर्थिक गड़बड़ी, प्रशासनतन्त्र (state machine) का अव्यवस्थित हो जाना और अन्ततः, मित्र-राष्ट्रों के दावे (claims)—से हुआ था, उन पर जर्मन सरकार का कोई प्रभाव नहीं था। किन्तु एक बार

जब यह प्रक्रिया (process) प्रारम्भ हो गई, तब जर्मन अधिकारियो ने उसे रोकने के सभी प्रयत्न भी शीघ्र ही छोड दिये। अत्यधिक और अनिश्चित क्षति पूर्ति कर्ज ने जर्मनी को न केवल अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने मे बिलकुल ही असमर्थ बना दिया अपितु इस दिशा मे कोई भी गभीर प्रयत्न करने की ,उसकी इच्छा को भी पगु कर दिया, क्योकि उसकी आर्थिक स्थिति जितनी ही अच्छी होती, उतना ही अधिक भुगतान उसे करना पडता। मार्क की क्षिप्र ह्रास (downward race) प्रवृत्ति को जर्मन अधिकारी प्रसन्नताहीन आत्म-सतुष्टिपूर्वक (with grim complacency) देखते रहे क्योकि उनका यह विचार था कि यह ह्रास क्षतिपूर्ति वसूल करने की मित्र राष्ट्रो की अन्तिम आशाओ पर भी पानी फेरे दे रहा था। इस प्रक्रिया की अन्तिम अवस्थाओ ने तो मुद्रास्फीति (inflation) के शाब्दिक अर्थ—अर्थात् राजकोष की तत्काल आवश्यकताओ को छोड और किसी भी बात का विचार किए बिना असीमित सख्या में पत्र-मुद्रा (paper money) छापते चले जाना—का शास्त्रीय (classic) उदाहरण ही प्रस्तुत कर दिया।

वर्सेलीज की सधि की अपेक्षा मुद्रास्फीति का जर्मनी पर बहुत भयकर प्रभाव पडा। हर बधक (mortgage), स्थिर ब्याज पर विनियोजित (invested) हर धन, मार्कों में रखा जाने वाला बैक का हर खाता मूल्यहीन हो गया। सारी बचत एक ही बार मे समाप्त हो गई। इस प्रहार का सबसे बुरा प्रभाव बहुसख्यी मध्यमवर्ग पर पडा। धनिक लोग भी यद्यपि बर्बाद हो चुके थे तदापि उनके पास भूमि, भवन और पशु शेष रह गए थे। मुट्ठी भर उद्योगपतियो और सट्टेबाजों ने मुद्रास्फीति से भी अपनी तिजोरियाँ भरीं, किन्तु सदा ही आर्थिक समस्याओ से जूझते रहने वाले श्रमिकवर्ग को किसी प्रकार की हानि नही उठानी पडी। क्लर्कों और अधिकारियो (clerks and officials) की अपेक्षा श्रमिक के वेतन का बढी हुई कीमतो के साथ समायोजन (adjustment) अधिक शीघ्रता से कर दिया गया था। अपनी बचत से वचित हो जाने पर मध्यमवग को सर्वहारावग (proleteriat) की कोटि में आना पडा और वर्गच्युत होने के सभी अपमान भी सहने पडे। उसे उस श्रमिक वर्ग से घृणा थी जिसके स्तर पर उसे उतर आना पडा था। इसके साथ ही यहूदियो से भी उसे नफरत थी क्योकि वह उन्हें मुद्रास्फीति से मुनाफाखोरी करने वाले (कई मामलो में तो गलती से)

मानता था। इसी हृतधन और अवनत (dispossessed and degraded) मध्यमवर्ग से राष्ट्रीय समाजवाद (national socialism) को किसी दिन सबसे अधिक अनुयायी मिलने थे।

जो भी हो, रूर पर अधिकार जिसने कि जर्मनी को बिलकुल मिटा दिया, योरोप के युद्धोत्तर इतिहास में एक नया मोड़ था। सितम्बर १९२३ तक, जर्मन विरोध की कमर टूट गई। इसी समय बर्लिन में एक नए मन्त्रिमंडल का निर्माण हुआ था। विदेशों में अभी तक अविख्यात गुस्टव स्ट्रेसमान (Gustav Stressmann) नामक एक राजनीतिज्ञ उसमें प्रधानमन्त्री (Chancellor) और विदेशमन्त्री बना। जर्मनी के "निष्क्रिय-प्रतिरोध" (सत्याग्रह) को समाप्त करने का भार स्ट्रेसमान पर ही आया। किन्तु प्रतिरोध वापस ले लेने से ही मित्र-राष्ट्र सरकारों की समस्यायें हल नहीं हो सकीं। किसी बड़े पैमाने पर क्षतिपूर्ति भुगतान पुनः प्रारम्भ करने से पहिले, जर्मनी की अर्थव्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन करना स्पष्ट रूप से आवश्यक था। इस वर्ष के अन्त में अमेरिका इस बात के लिए तैयार हो गया कि वह ब्रिटिश, फ्रान्सीसी, बेल्जियम और इटालियन सरकारों की सहायता "विशेषज्ञों" की एक समिति नियुक्त करने में करेगा जो कि केवल व्यावहारिक और अराजनैतिक दृष्टिकोण से, इस बात पर विचार करेगी कि जर्मनी की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए कौन से अर्थोपाय (ways and means) काम में लाए जायें। फ्रांस की भावनाओं को ठेस न पहुँचाने की दृष्टि से, समिति के निर्देश-शर्तों (terms of reference) में इसका कोई उल्लेख नहीं किया गया था कि समिति को इस बात पर भी विचार करने की आवश्यकता है कि जर्मनी क्षतिपूर्ति की रकम किस सीमा तक चुका सकता है। किन्तु यह सभी जानते थे कि असली उद्देश्य क्या था। अमरीकी 'विशेषज्ञ' डेविस (Dawes) इस समिति का अध्यक्ष था, इस कारण यह समिति "डेविस समिति" (Dawes Committee) के नाम से विख्यात हुई। समिति ने अपना काम जनवरी १९२४ से पेरिस में प्रारम्भ किया।

जर्मनी के विदेशमन्त्री पद पर स्ट्रेसमान (उसने शीघ्र ही प्रधानमन्त्री पद छोड़ दिया और अपना पूरा समय विदेशी मामलों में लगाया) की नियुक्ति और डेविस समिति का गठन उन तीन घटनाओं में से दो घटनाएं थीं जिन्होंने कि हृदय परिवर्तन (change of spririt) की पूर्व सूचना दी। तीसरी घटना

फ्रास मे घटी। वहाँ की जनता भी यह अनुभव कर चुकी थी कि रूर पर अधिकार एक खर्चीली भूल थी और जर्मनी का दिवाला निकलने का मतलब था "उत्पादक गारन्टियो" की नीति का भी बिलकुल असफल हो जाना। स्वय फ्रास मे भी आर्थिक सकट की आशका थी। इसलिए जर्मनी से क्षतिपूर्ति की पर्याप्त रकम की उसे इस समय सबसे अधिक आवश्यकता थी। अतः स्पष्ट था कि इस रकम को वसूल करने का और कोई तरीका अपनाया जाये। मई १९२४ में फ्रास मे जो चुनाव हुए, उनमे वामपक्षियो (leftists) की विजय हुई। पोंकारे मन्त्रीमडल गिर गया और उसका स्थान हैरियत (Harriot) के उग्र मन्त्रीमडल (radical ministery) ने लिया। इस घटना की तारीख—११ मई १९२४—को शक्ति द्वारा शाति स्थापित करने (establishing peace by force) के प्रयत्नो की प्रथम युद्धोत्तर अवधि भी समाप्त हो गई—ऐसा माना जा सकता है। कुछ फ्रासीसियो ने बाद मे इस बात पर दु ख भी प्रकट किया कि किसी भी कीमत पर सधि को लागू करने की पोंकारे की नीति को हमेशा के लिए तिलाजलि दे दी गई। किन्तु १९२४ मे यह सामान्य रूप से स्वीकार कर लिया गया था कि वह नीति असफल रही थी और यदि उसी का अनुसरण किया गया होता तो फ्रास और ग्रेट ब्रिटेन मे खुली टक्कर हो गई होती।

३. योरोप के अन्य विक्षोभ केन्द्र
(Other Storm-Centers in Europe)

योरोपीय रंगमंच के केन्द्रबिन्दु पर जिस समय फ्रांस और जर्मनी के बीच द्वन्द्व युद्ध चल रहा था, उस समय उसी के पार्श्व में अन्य संघर्ष भी चल रहे थे जिनका इस मुख्य विवाद से या तो संबंध ही नहीं था या था भी तो बहुत कम। इन्हें तीन शीर्षकों के अन्तर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है डेन्यूबीय राज्य, इटली, और सोवियत राज्य।

डेन्यूबीय राज्य (The Danubian States)

मध्य योरोप, जिसे मध्य डेन्यूब का नदी क्षेत्र (basin) कहना ही अधिक उपयुक्त होगा, में १९१४ से पहिले ५५,०००,००० जनसंख्या वाला एवं विविध जातियों से गठित ऑस्ट्रिया-हंगरी नामक राज्य था जिसे रूमानिया का छोटा-सा राज्य काले सागर (Black Sea) से पृथक् करता था। युद्ध के बाद डेन्यूब नदी क्षेत्र में पाँच राज्य हो गये—(जनसंख्या के क्रमानुसार) यूगोस्लाविया, रूमानिया, चेकोस्लोवाकिया, हंगरी, और ऑस्ट्रिया। इस क्रांतिकारी पुनर्व्यवस्था का परिणाम चुंगी नाकों (customs barriers) में वृद्धि और आर्थिक जीवन का अस्त-व्यस्त हो जाना (dislocation) हुआ जिससे डेन्यूबीय देश पूरी तरह कभी भी मुक्ति नहीं पा सके। सन् १९२० २४ की अवधि में, इस उथल-पुथल के भयंकरतम परिणामों से *यूगोस्लाविया*, *रूमानिया* और चेकोस्लावाकिया को फ्रांस के संरक्षण ने ही बचाया। यह फ्रांसीसी शस्त्रास्त्रों और फ्रांसीसी ऋण का ही परिणाम था कि वे इस काल में अपेक्षाकृत शक्तिशाली और समृद्धि रह सके। लघु मैत्रीसंघ (Little Entente) बनाने वाले इन राज्यों का वर्णन पहिले अध्याय में किया जा चुका है। यहाँ डेन्यूबीय नदी क्षेत्र के दो भूतपूर्व शत्रु राष्ट्रों—ऑस्ट्रिया और हंगरी—का ही कुछ वर्णन देना अपेक्षित है।

ऑस्ट्रिया गणतन्त्र का प्रारम्भ से ही इतना कृत्रिम स्वरूप था कि उसका स्थायी अस्तित्व ही संदेहास्पद था। उसमें न तो राष्ट्रीय एकता थी और न ही अस्तित्व में बने रहने की राष्ट्रीय आकांक्षा ही। उसकी आबादी प्राचीन ऑस्ट्रि-

यन साम्राज्य के जर्मन-भाषी लोगो की थी। किन्तु इन जर्मन लोगो को जो कि विएना के बहुभाषा भाषी (polygot) हेप्सबुर्ग (Hapsburg) साम्राज्य की राजधानी रहने तक हेप्सबर्गों की निष्ठावान प्रजा रह चुके थे, यह इच्छा कभी भी नही थी कि जर्मन-ऑस्ट्रिया एक छोटे-से स्वतन्त्र राज्य के रूप में गठित हो जाये। यह नया गणतन्त्र दो भागो में विभाजित था। एक तो उसकी अति-वर्द्धित (overgrown) राजधानी जिसमें इस गणतन्त्र की लगभग एक तिहाई जनसख्या, जो कि प्रमुखतया समाजवादी और धर्मविरोधी रहती थी। उसका दूसरा भाग कट्टर रोमन कैथोलिक ग्राम क्षेत्र था जिसमें कुछ प्रान्तीय नगर भी थे किन्तु *ये नगर विएना का अनुसरण ही अधिक करते थे।* *ऑस्ट्रिया की शक्ति* केवल इसी बात में थी कि उसके लगभग सभी निवासियो की यह आकाक्षा थी कि ऑस्ट्रिया जर्मनी में मिल जाये। उनकी यह आकाक्षा समय समय पर लिए गए अनधिकृत (unofficial) "जनमतो" (plebiscite) के परिणामो में भी व्यक्त हो जाती थी। किन्तु मित्र-राष्ट्रो के लिए यह बात एक मौन धमकी ही थी। चूंकि मित्र-राष्ट्र (विशेषकर फ्रास और इटली) इस बात के लिए कृतसकल्प थे कि ऑस्ट्रिया और जर्मनी को सघ नही बनाने दिया जाये, अतएव उनके लिए यह आवश्यक था कि वे स्वतन्त्र ऑस्ट्रिया को अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए पर्याप्त प्रलोभन दें।

इस प्रकार मित्र-राष्ट्रो की नीति के परिणामस्वरूप, न कि उनकी अनुकंपा के कारण, आस्ट्रिया मित्र-राष्ट्र सरकारो का निवृत्ति वेतन भोगी (pensioner)[1] हो गया। सर्वप्रथम, एक अन्तर्राष्ट्रीय राहत समिति (International Relief Committee) की स्थापना की गई जिसने तटस्थ देशो से सहयोग माँगा गया था; और ऑस्ट्रियन क्षतिपूर्ति आयोग ने सेन्ट जर्मन सधि द्वारा उसे प्रदत्त "ऑस्ट्रिया की सभी आस्तियो और राजस्व पर प्रथम ऋण-भार (first charge on all assets and revenues of Austria)" लेना त्याग दिया ताकि इन आस्तियो (security) पर "राहत ऋणपत्र" ("relief bonds)" जारी किए जा सकें। सन् १९१९ और १९२१ के बीच ऑस्ट्रियन सरकार को "राहत ऋण" (relief credit) के रूप में लगभग २५,०००,००० पौंड प्राप्त

1. "It was therefore, policy rather than pity which made Austria the pensioner of the Allied Governments."

हुए। तदनन्तर, मित्र-राष्ट्र सरकारें इस सारे मामले को राष्ट्रसंघ में भेजना चाहती थी। ऑस्ट्रिया को कुछ महीनों तक और कर्ज मुक्त (to keep afloat) रखने के लिए, ब्रिटेन, फ्रांस, इटली और चेकोस्लोवाकिया की सरकारों ने उसे काफी रकम और अग्रिम (advance) धन दिया। उसके बाद राष्ट्रसंघ की अर्थ-समिति ने ऑस्ट्रिया के आर्थिक पुनर्निर्माण, उसकी मुद्रा की स्थिरता और एक अन्तर्राष्ट्रीय ऋण जारी करने के लिए एक विस्तृत योजना तैयार की जिसे अक्टूबर १६२२ में ऑस्ट्रिया की सरकार ने भी स्वीकार कर लिया। ऋण पूर्वपत्र (protocol) में एक महत्त्वपूर्ण राजनैतिक शर्त का समावेश था। ऑस्ट्रिया ने सेन्ट जर्मेन सन्धि के अन्तर्गत अपनी इस बाध्यता (obligation) को न केवल दोहराया कि वह राष्ट्रसंघ-परिषद् की स्वीकृति के बिना "अपनी स्वतन्त्रता का परकीकरण (alienation)" नहीं करेगा अपितु यह वचन भी दिया कि उसकी स्वतन्त्रता का किसी भी प्रकार का सौदा करने वाले किसी भी अन्य राष्ट्र से वह आर्थिक समझौते नहीं करेगा। इस पूर्वपत्र के आधार पर १६२३ के बसंत में ऑस्ट्रिया ने दस राष्ट्रों की विनियोजक जनता (investing public) से केवल ३०,०००,००० पौंड ऋण मांगा। ब्रिटिश, फ्रांसीसी, इटालियन, चेकोस्लोवाक और कुछ तटस्थ सरकारों ने कुछ अनुपातों में इस ऋण की गारंटी दी थी और सर्वत्र ही उसमें बहुत अधिक रकम प्राप्त हुई। इस अपूर्व सफलता से न केवल ऑस्ट्रिया की ही समस्या अनेक वर्षों के लिए हल हो गई अपितु उन अन्य योरोपीय देशों को ऋण दिए जाने के लिए, उसने एक पूर्वोदाहरण (precedent) भी प्रस्तुत कर दिया जिन्होंने कि आगे चलकर राष्ट्रसंघ के तत्वाधान में ऋण लिये।

ऑस्ट्रिया की अपेक्षा हंगरी मजे में रहा। युद्ध-पूर्व की अपनी लगभग आधी आबादी और आधे से भी अधिक क्षेत्र से वह हाथ धो बैठा था। किन्तु एक प्रकार से यह बात उसकी शक्ति का स्रोत ही थी क्योंकि अब उसके क्षेत्र में अनिष्ठावान विजातीय लोग (disaffected subjects of alien race) नहीं रह गये थे। आर्थिक दृष्टि से हंगरी एक धनी कृषक देश था जिसकी शहरी आबादी अनुपात से अधिक नहीं थी। राजनैतिक दृष्टि से, वहाँ प्रजातन्त्र के कई स्वरूप अपनाये गए थे। किन्तु वास्तविक शक्ति छोटे और बड़े जमींदारों के एक शासक वर्ग के हाथों में थी, जिसने सेना और प्रशासन दोनों ही पर अपना

अधिकार जमा रखा था। किन्तु हगरी के किसान की स्थिति योरोप के किसी भी आधुनिक राज्य के किसान की अपेक्षा खराब थी, वह लगभग दासता का जीवन व्यतीत कर रहा था। शहरो के श्रमिक सख्या में कम और असगठित थे। सन् १९१९ में निष्फल (abortive) कम्युनिस्ट क्रांति के बाद, जब कि बुडापेस्ट लगभग पाँच महीनो तक बेला कुन (Bela Kun) के अधिकार मे रहा, हगरी मे किसी भी प्रकार के क्रांतिकारी प्रचार का कठोरतापूर्वक दमन किया जाता था।

अपने पर लादी गई सधि की शर्तों का विरोध करने और मौका मिलते ही उनसे विमुख हो जाने के लिए दृढसकल्प रहने मे, शाति समझौते के समय से ही जर्मनी के बाद हगरी का दूसरा स्थान रहा था। यह सकल्प चेकोस्लोवाकिया, रूमानिया और युगास्लाविया—जिन्हे कि ट्रिएनाँ की सधि के अनुसार हगरी का कुछ क्षेत्र प्राप्त हुआ था—के लिए भय का कारण बन गया और इसी कारण जैसाकि हम पहिले बता चुके है लघु मैत्रीसघ का निर्माण हुआ। किन्तु लघु मैत्रीसघ क राज्यो को एक और बात का भय लगा रहता था। नवम्बर १९१८ मे अन्तिम हप्सबर्ग राजा, कार्ल चतुर्थ (Karl IV), द्वारा सिंहासन त्याग कर दिए जाने के बाद भी, अपने राजा के प्रति हंगेरियन जनता की परपरागत निष्ठा नष्ट नही हुई था। हगरी के नए सविधान का स्वरूप राजतत्रीय था और राज्य क प्रमुख को राजप्रशासक (Regent) कहा गया था जिसका गर्भितार्थ यह था कि भविष्य में राजतत्र के पुन स्थापित हो सकने की सभावना थी। इसके विपरीत, यह भी विश्वास किया जाता था कि स्लोवाकिया, ट्रासिलवानिया और क्रोएशिया के समर्पित क्षेत्रो (ceded territories) की जनता अपने भूत-पूव हगेरियन शासको से चाहे असतुष्ट क्यो न रही हो किन्तु हेप्सबग राजवश के प्रति उसके मन मे कुछ निष्ठा अवश्य शप बची है। इसीलिए लघु मैत्रीसघ की सरकारो को यह भय था कि हगरी में हेप्सबर्ग राजवश यदि पुन सिंहासना रूढ हो गया, तो यह बात उनकी नई प्रजा मे अशाति उत्पन्न करने का एक सभाव्य कारण बन जाएगी।

लघु मैत्रीसघ देशो का भ्रोत्साहित होना बिलकुल निराधार भी नही था। हगरी के अपने सिंहासन पर पुन. अधिकार करने के लिए भावुक और बहकाए गए कार्ल ने १९२१ में दो बार प्रयत्न किए। स्विट्जरलैंड स्थित अपने निवास-स्थान से वह हर बार बिना किसी घोषणा के यह सोचकर हगरी चला आता

कि सारा हगरी उसका साथ देगा। वास्तव में हगरी की सरकार लघु मैत्रीसघ के देशो से युद्ध मोल लेने की स्थिति में नहीं थी। क्योंकि हेप्सबग राजा के पुनः सिंहासनारूढ होने से युद्ध होकर ही रहता। इसलिए हगरी म कार्ल की उपस्थिति से वह बडी मुसीबत में पड गई। पहिली बार तो उसने कार्ल को इस बात के लिए राजी कर लिया कि वह हगरी छोडकर चुपचाप चला जाएगा। किन्तु दूसरी बार उसने उसे गिरफ्तार कर मित्र-राष्ट्रो को सौंप दिया। कार्ल को मेदारा (Madeira) भेज दिया गया जहाँकि उसने अपना शेष जीवन बिताया। मित्र-राष्ट्रो के दबाव के कारण, हगरी सरकार को बाध्य होकर एक कानून बनाना पडा जिसके अनुसार हेप्सबग राजवंश के लोग हगरी के सिंहासन से सदा के लिए वचित कर दिए गये। कार्ल की सनको का केवल यही परिणाम हुआ कि लघु मैत्रीसघ के देशो ने अपनी शक्ति और सगठन का आश्चर्यजनक प्रदर्शन कर दिखाया। छ माह के बाद मेदीरा में ही कार्ल की मृत्यु हो गई और आर्कड्यूक आटो (Archduke Otto) नामक एक नौ वर्षीय उत्तराधिकारी वह अपने पीछे छोड गया। अब यह स्पष्ट हो चुका था कि हेप्सबग राजवश सबधी प्रश्न अनेक वर्षों तक मध्य योरोप को परेशान नहीं करेगा।

आर्थिक पुनर्गठन के लिए अब रास्ता साफ हो चुका था। आस्ट्रिया को राष्टसघ ऋण की सफलता से यह विचार उत्पन्न हुआ कि इसी प्रकार की सहायता हगरी को भी दी जाये। हगरी की आर्थिक स्थिति यद्यपि ऑस्ट्रिया के समान भयकर नहीं थी, तदपि, युद्ध और क्राति के कारण, अस्तव्यस्त अवश्य हो गई थी। राष्ट्रसघ की अर्थ समिति (The Financial Committee) ने १९२३ म पुनर्निर्माण की एक योजना तैयार की, और आगामी वर्ष के बसत मे आठ देशो की जनता से १२,०००,००० पौंड ऋण प्राप्त कर लेने में हगरी को सफलता भी मिल गई। ऑस्ट्रियन ऋण और इस ऋण मे एक महत्त्वपूर्ण अन्तर था। हगेरियन ऋण की कोई अन्तर्राष्ट्रीय गारटी नहीं थी बल्कि हगरी सरकार की साख (credit) ही उसकी एकमात्र प्रतिभूति (security) थी।

इटली (Italy)

इटली उन पाँच "प्रमुख मित्र और साथी राष्ट्रो" में से एक था जिन्होंने सन्धि की शर्तें निर्धारित की थी। किन्तु जापान की तरह युद्ध के परिणामो से उसकी तृष्णा बुझी नहीं, बल्कि बढ गई। युद्ध के बाद की पूरी अवधि मे इटली
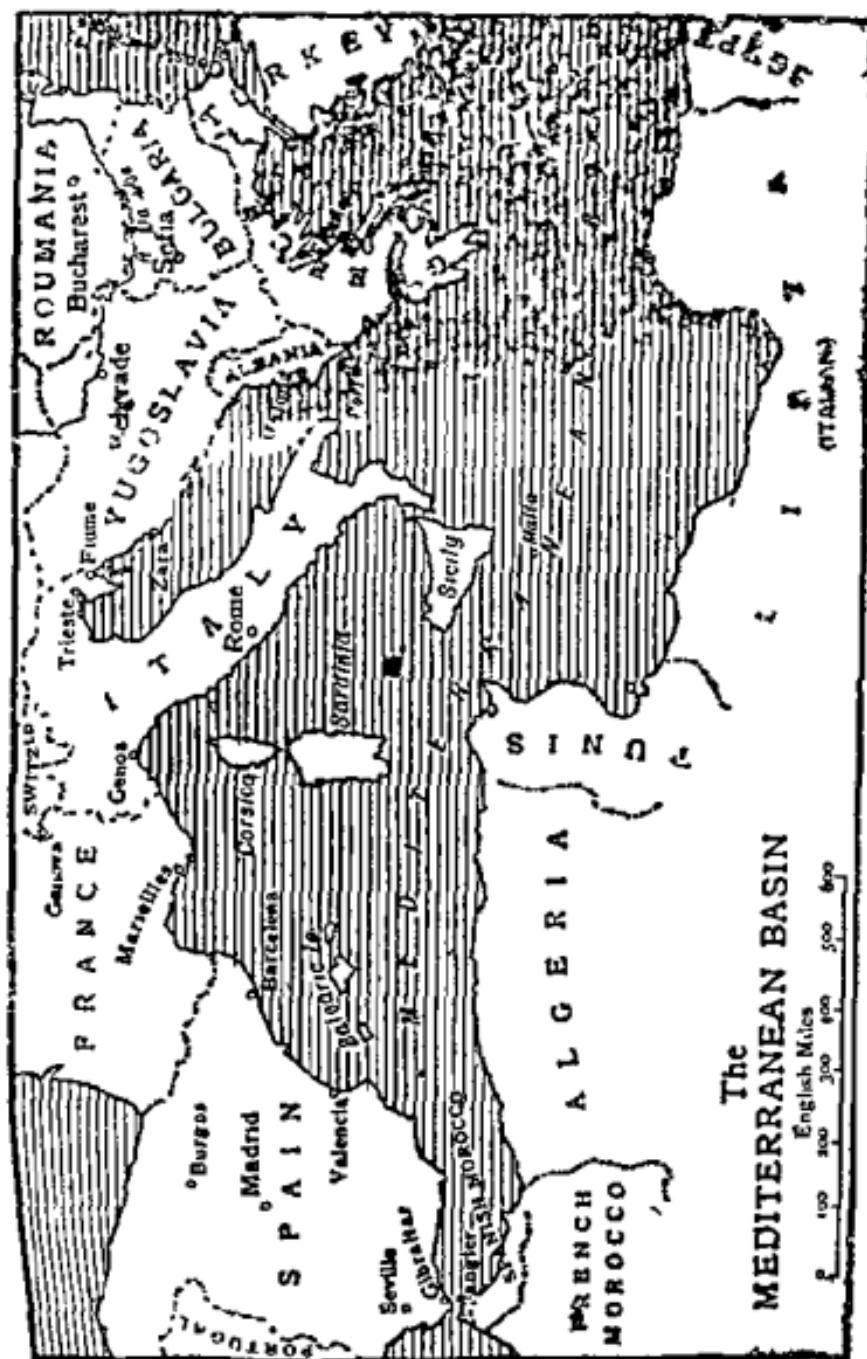
की गणना जापान और भूतपूर्व शत्रु देशों की भांति "असन्तुष्ट" और "कष्ट-दायी" राज्यों ("discontented and troublesome states") में की जानी चाहिये। अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में यह असन्तोष इतना अशांतिकारक हो गया कि उसके कारणों पर यहां कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है।

प्रथमत, जर्मनी के समान इटली का वर्तमान राजनैतिक स्वरूप १८७० में स्थिर हुआ था। सन् १८४८ में, इटली प्रायद्वीप आठ विभिन्न राज्यों में बँटा हुआ था और इटली की एकता कुछ उत्साही लोगों का स्वप्नमात्र थी। यहाँ तक कि १६२०-२६ में भी, वह अपनी उपद्रव और साहसपूर्ण युवावस्था को पार ही कर रहा था। इसलिए पुराने राष्ट्रों की सम्माननीय और शान्तिप्रिय परम्पराएं उसमें अभी तक नहीं आ पाई थी। उसे यह स्मरण था कि उसने अपनी एकता लड़कर प्राप्त की है, इसलिए अपनी शक्ति और क्षेत्र का विस्तार करने के लिए वह अब भी युद्ध का आश्रय लेना ही उचित समझता था। यदि यह पूछा जाए कि अन्य बड़े राष्ट्रों की अपेक्षा इटली की निष्ठा राष्ट्रसघ में क्यों कम थी तो उसका एक उत्तर यह होगा कि यदि राष्ट्रसघ उन्नीसवीं शताब्दी में ही अस्तित्व में आ गया होता और यदि उस समय उसके अनुबन्धन पत्र का पालन किया गया होता, तो इटली कभी भी एक राष्ट्र (nation) नहीं हो सकता था।

द्वितीयत., इटली के असन्तोष के कुछ विशेष कारण भी थे। सन् १६१५ में जब इटली मित्र-राष्ट्रों में शामिल हुआ था, तब ही उसने अपना पुरस्कार ठहरा लिया था। गुप्त रूप से की गई लदन सन्धि (Treaty of London) के अनुसार यह समझौता किया गया था कि शान्ति समझौते के समय इटली को आस्ट्रिया से दक्षिण टायरोल (South Tyrol), जिसकी आबादी जर्मन थी, और ट्रीस्ट (Trieste), तथा उसकी पार्श्वभूमि एव डलमेशियन किनारा जिनके (ट्रीस्ट नगर को छोड़कर) निवासी मुख्यत स्लाव थे, मिलेंगे। यह सौदा (bargain) आत्म-निर्णय के उस सिद्धान्त को अमान्य करने का एक विवादास्पद प्रयास था जिसे अमरीकी राष्ट्रपति विलसन ने प्रतिपादित किया था और अन्य मित्र-राष्ट्रों ने १६१८ में शान्ति समझौते के आधार के रूप में स्वीकार कर लिया था। विलसन ने इस गुप्त लदन-सन्धि को मानने से इकार कर दिया। विलसन के सिद्धान्तों और अपने हस्ताक्षरों के प्रति निष्ठा के प्रश्न को लेकर फ्रान्स और

ग्रेट ब्रिटेन में मतभेद हो गया। इस प्रश्न को लेकर शान्ति सम्मेलन मे खूब झड़प (altercation) भी हुई। विलसन ने दक्षिणी टायरोल सम्बन्धी अपनी जिद छोड दी, क्योंकि उससे सम्बन्धित सौदा एक शत्रु की बलि चढाते हुए किया गया था। किन्तु जब नवगठित युगोस्लाव राज्य प्रतिद्वन्द्वी दावेदार (claimant) के रूप में सामने आया, तब विलसन टस से मस नही हुये। इटली ने फियूम (Fiume) को भी अपने दावे मे शामिल कर अपने पैरो पर कुल्हाडी मारली क्योंकि लदन-सधि के द्वारा उसे फियूम भी दिए जाने का वचन नही दिया गया था। सितम्बर १९१९ में इटली के इस दावे को जब पेरिस में अस्वीकार कर दिया गया, तब एक गैर-सरकारी इटालियन सेना ने कवि द अनुनजियो (D' Annunzio) के नेतृत्व में किन्तु इटालियन सरकार की मौन उपेक्षा (tacit connivance) से उत्साहित हो, फियूम पर अधिकार कर लिया। सन् १९२० के प्रारम्भ में, मित्र-राष्ट्रो ने सपूर्ण सीमान्त विवाद से अपने हाथ खीच लिये और युगोस्लाविया तथा इटली को आपस मे निपट लने के लिए छोड दिया। वार्ताएँ कई वर्षो तक चलती रही और उनमे कई दौर आये। युगोस्लाविया का समर्थन कर फ्रान्स ने इटली से तीव्र शत्रुता मोल ले ली। आखिर १९२४ मे जाकर वही अन्तिम समझौता हो सका। इटली ने जारा (Zara) बन्दरगाह को छोडकर सम्पूर्ण डलमेशियन किनारा युगोस्लाविया को दे दिया किन्तु और बाकी स्थानो मे, उसे लदन-सधि से भी अधिक अनुकूल शर्तें मिली जिनमें फियूम नगर पर अधिकार भी शामिल था।

इसी बीच, इटली और युगोस्लाविया, जिनके सम्बन्ध इस समय तक अत्यन्त कटु हो चुके थे, को अलबानिया के प्रश्न के रूप में झगडे की एक और जड मिल गई। सन् १९१३ मे, अलबानिया (Albania) को एक स्वतन्त्र राज्य मान लिया गया था। किन्तु युद्धकाल मे उसकी स्थिति बिलकुल अ-व्यवस्थित हो गई। लन्दन सन्धि के अनुसार यह निश्चित किया गया था कि इटली को वेलोना (Valona) बन्दरगाह मिलेगा तथा इटली ही अलबानिया के विदेश-सम्बन्धो का भार भी सम्भालेगा। युद्ध समाप्ति के वाद, लगभग सम्पूर्ण देश पर इटालियन सेना का अधिकार था। इटालियन सेना अपना अधिकार कायम नही रख सकी क्योंकि स्वय अलबानिया निवासियो ने और युगोस्लाविया वालो ने, जोकि एड्रियाटिक के पूर्वी किनारे पर इटालियन सेना को अपनी सुरक्षा के लिए खतरा मानते थे, इसका विरोध किया। सन् १९२० में, इटालियन सेना हटा ली गई

और अलबानिया को एक स्वतन्त्र राज्य की हैसियत से राष्ट्रसंघ का सदस्य बना लिया गया।

फिर भी, एक नाजुक प्रश्न का निबटारा बाकी रह गया था। इटली ने यह दावा किया कि लंदन-सन्धि के अन्तर्गत अपने अधिकारो का परित्याग (abandonment) करने के बदले मे, मित्र-राष्ट्र अलबानिया के मामलो मे इटली की "विशेष स्थिति" ("special status") को मान्य करें। नवम्बर १६२१ मे पेरिस राजदूत सम्मेलन (Ambassadors' Conference), जिसने कि मित्र-राष्ट्र सरकारो के प्रमुख अग के रूप मे सर्वोच्च परिषद् का स्थान ले लिया था, ने एक प्रस्ताव स्वीकार कर यह घोषणा की कि यदि अलबानिया की स्वतन्त्रता को किसी प्रकार का खतरा उपस्थित हुआ तो ब्रिटेन, फ्रान्स और जापान की सरकारें राष्ट्रसंघ परिषद् में अपने प्रतिनिधियो को यह हिदायत देंगी कि वे इस आशय का एक प्रस्ताव परिषद् मे पेश करें कि अलबानिया की स्वतन्त्रता की रक्षा करने का काम इटली को सौंपा जाये। व्यवहार रूप मे इस प्रस्ताव का कोई भी तात्कालिक उपयोग नही हो सकता था; और यदि सच पूछा जाए तो इस तरह का प्रस्ताव कुछ बेतुकी बात (absurdity) थी क्योंकि अलबानिया की स्वतन्त्रता को यदि किसी राष्ट्र से खतरा था भी, तो केवल इटली से ही। किन्तु इटली ने इसका यह अर्थ लगाया कि अलबानिया के मामलो में हस्तक्षेप कर सकने का उसका अधिकार मान लिया गया है और यह अधिकार उसके सिवाय अन्य किसी भी राष्ट्र को नही है। इटली का यह दावा यूगोस्लाविया के लिए सतत आशंका और चिढ का कारण बन गया।

लंदन सन्धि के एक तीसरे अनुच्छेद ने इटली के असन्तोष को और भी बढा दिया तथा उसमें इस भावना को घर करने दिया कि मित्र-राष्ट्र उसके साथ न्यायोचित व्यवहार नही कर रहे हैं। इस अनुच्छेद में यह उपबन्धित किया गया था कि यदि जर्मनी को हानि में डालते हुए ग्रेट ब्रिटेन और फ्रान्स अफ्रीका अपना औपनिवेशिक क्षेत्र बढावें तो इटली की "न्याय्य क्षतिपूर्ति" ("equita compensation") की जाएगी जो कि इटली के वर्तमान अफ्रीकी उप के सीमातो और उनसे लगे हुए ग्रेट ब्रिटेन और फ्रान्स के उपनिवेशो के का उपयुक्त समायोजन कर देने के रूप में होगी। यह वचन इतना

था कि उसके कई अर्थ निकाले जा सकते थे। सन् १९२४ में जाकर कहीं इटली और ग्रेट ब्रिटेन मे समझौता हो सका। इस वचन को पूरा करने के लिए ब्रिटिश उपनिवेश केनिया का जुबालैंड (Jubaland) क्षेत्र इटली के सोमालिलैंड (Somaliland) क्षेत्र मे मिला दिया गया। इटली और फ्रान्स मे समझौता हो सकना और भी कठिन सिद्ध हुआ। सन् १९१९ में उत्तरी अफ्रीका ने सीमान्त-परिवर्तन किए जाने के बाद भी, इस अनुच्छेद के अन्तर्गत इटली के लम्बे-चौड़े दावो को पूरा नहीं किया जा सका। इटली की यह शिकायत १९३५ तक बनी रही और उसके कारण फ्रान्स तथा इटली के सम्बन्ध और भी कटुतापूर्ण हो गये।

अक्टूबर १९२२ मे, जब कि इटली और यूगोस्लाविया का सीमान्त निश्चित भी नहीं हो पाया था, इटली की शासन प्रणाली मे एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। वहाँ की प्रजातन्त्र सरकार को, जो कि आन्तरिक व्यवस्था बनाए रखने में निर्बल होने के कारण अपनी प्रतिष्ठा खो चुकी थी, फासिस्ट पार्टी ने उलट दिया और इटली में २० से अधिक वर्षों के लिए बेनिटो मुसोलिनी (Benito Mussolini) नामक फासिस्ट नेता की व्यक्तिगत तानाशाही स्थापित हो गई। इस घटना के दो प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिप्रभाव (repercussions) हुये। एक तो योरोप के अन्य कई राज्यो में भी शीघ्र ही प्रजातन्त्र के स्थान में तानाशाही की स्थापना की गई। इस प्रकार के राज्यो मे स्पेन सर्वप्रथम था। दूसरे, मुसोलिनी के सत्तारूढ होने से, इटली की विदेश नीति और भी आक्रमणात्मक होगी—इसका आभास मिल गया। युद्धोत्तर प्रजातन्त्र काल में, इटली की नीति में अशान्तिपूर्ण असतोष स्पष्ट परिलक्षित होता था। मुसोलिनी के हाथो में सत्ता आने पर, यह असंतोष अधिक महत्त्वाकाक्षी, अधिक अहंकारी तथा अन्य राष्ट्र की विवशताओ और कठिनाइयो से लाभ उठाकर इटली का हितसाधन करने के लिए अधिक दृढसकल्प हो गया।

मुसोलिनी ने योरोप को शीघ्र ही अपनी शक्ति का परिचय दे दिया। अलबानिया और यूनान का सीमात निश्चित करने मे व्यस्त आयोग के इटालियन प्रतिनिधि और उसके तीन सहायको को अगस्त १९२३ में यूनानी डाकुओ ने गोली से उड़ा दिया। इस पर इटली के बेड़े ने तुरन्त ही कोर्फु (Corfu) पर बम वर्षा कर दी, कई नागरिको के प्राण ले लिये और द्वीप पर अधिकार कर

क्षतिपूर्ति की माँग की—इस माँग का पेरिस राजदूत सम्मेलन ने भी समर्थन किया था। वेनिजेलॉस के पतन के बाद से, योरोप मे मित्रहीन यूनान ने एकदम भयभीत होकर राष्ट्रसघ और राजदूत सम्मेलन दोनो ही से अपील की। प्राधिकार (authority) के इस विभाजन से लाभ उठाकर मुसोलिनी ने यह घोषणा कर दी कि वह राष्ट्रसघ के क्षेत्राधिकार (jurisdiction) को नही मानेगा। अन्त में, निजी वार्त्ताओ के परिणामस्वरूप, एक समझौता हुआ जिसके अनुसार यूनान ने यह स्वीकार कर लिया कि इटली के दावे की वैधता (validity) का निर्णय होने तक वह हेग (Hague) स्थित अन्तर्राष्ट्रीय स्थायी न्यायालय (Permanent Court of International Justice) में ५०,०००,००० लायर (lire) जमा रखेगा। किन्तु ऐन मौके पर, इटली ने इस समाधान को भी अस्वीकार कर दिया। अन्त में राजदूत सम्मेलन के दबाव के कारण, यूनान को क्षतिपूर्ति की रकम सीधी ही इटली को दे देनी पडी।

सोवियत सघ

(The Soviet Union)

सन् १९१८ के बाद के वर्षों में, सोवियत समाजवादी गणतन्त्र सघ (Union of Soviet Socialist Republics)—पहिले रूस के नाम से ज्ञात इस देश का यह नाम सरकारी तौर पर १९२३ मे रखा गया था—की गणना योरोपीय राजनीति मे विक्षोभकारी शक्तियो (disturbing forces) मे की जानी चाहिये यद्यपि इसके कारण एकदम भिन्न हैं। रूस के उस गृहयुद्ध (civil war) का अन्त १९२० से पहिले नहीं हो सका था जिसमे कि सोवियत विरोधी ताकतो को ब्रिटेन, फ्रास, जापान और (कुछ समय तक) अमरिका की सरकारो से सक्रिय सहायता मिली थी। सोवियत सरकार और मित्र-राष्ट्रो के सम्बन्ध उसके बाद भी कई वर्षों तक आपसी अविश्वास और शत्रुतापूर्ण ही बने रहे। यह शत्रुता स्वाभाविक और अवश्यम्भावी थी। धर्मसुधार के बाद से, योरोप के राज्य स्वय अपने को और अन्य राज्यो को अखड और स्वतन्त्र राष्ट्र मानते थे। दूसरे राज्य की जनता मे असतोष फैलाकर किसी राज्य की सुरक्षा खतरे में डालना युद्ध-काल में इष्टकर (expedient) हो सकता था, किन्तु सामान्य सम्बन्धो के समय ऐसा करना एकदम गलत बात थी। सोवियत सिद्धान्त ने इन मूलभूत धारणाओ को साहसपूर्वक एक ओर रख दिया। उसने इस बात से

भी इन्कार किया कि सोवियत सघ एक राष्ट्रीय इकाई (national unit) है। राज्य को वह राजनैतिक सगठन का एक अस्थायी रूप मानता था जिसका मेल कम्युनिस्ट आदर्श की प्राप्ति के साथ नही बैठता था। उसके अनुसार हर सच्चे कम्युनिस्ट का यह कर्त्तव्य था कि वह सारे विश्व मे उस क्राति का प्रचार करे जो कि रूस मे सफल हो चुकी थी और, चूँकि सोवियत सघ के आरम्भिक दिनो के नेताओं का यह विश्वास था कि शेप ससार मे भी पूँजीवाद की समाप्ति हुए बिना रूस की क्रातिकारी सरकार टिक नही सकेगी, इसलिए उनके प्रचार-कोचित उत्साह (missionary zeal) में स्वार्थ की भी कुछ बू आती थी।

जो भी हो, जब तक पूँजीवादी राज्य अस्तित्व में बने रहें, तब तक व्यावहारिक प्रयोजनो के लिए यह आवश्यक तो था ही कि सोवियत संघ और इन देशो मे किसी न किसी प्रकार के सम्बन्ध स्थापित हो। एक ओर जहाँ अन्तर्राष्ट्रिक कम्युनिस्ट सस्था (Communist International) [सक्षिप्त नाम "कॉमिन्टन" (Comintern)] जिसका मुख्यालय (head quarters) मास्को में था, अपनी स्थानीय शाखाओ की सहायता से अन्य देशो की पूँजीवादी सरकारो को उलट देने का प्रयत्न कर रही थी, वही दूसरी ओर सोवियत सरकार, जिसके सचालनकर्त्ता ही कॉमिन्टर्न का भी सचालन करते थे, उन्ही देशो की सरकारो से सामान्य कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा कर रही थी। इस दोहरी नीति के कारण इस सपूर्ण अवधि में सोवियत सरकार को विदेशी राष्ट्रो के साथ अपने व्यवहार में बडी उलझन का सामना करना पडा।

आरम्भ मे, सोवियत सघ अपने छोटे छोटे पडौसी देशो से ही कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित कर सका। राष्ट्रीय महत्त्वाकाक्षाओ को महत्त्व नही देने सबधी *सोवियत सरकार की नेकनीयती* (sincerity) *का पता इसी बात से लग सकता* था कि वह उन नवनिर्मित राज्यो को मान्यता देने के लिए तैयार थी जो रूसी साम्राज्य से अलग हो गये थे। सन् १९२० में उसने फिनलैंड (जो रूसी *साम्राज्य के अतर्गत अर्ध-स्वतत्र ग्रैंड डची रह चुका था*) और इस्टोनिया(Estonia), लेटविया (Latvia) तथा लिथुआनिया (Lithuania) (जिसकी भूमि रूस का अखड अग रह चुकी थी) से शाति सन्धियाँ की। इन सन्धियो के बाद ही अगले वर्ष पोलेड (देखिए पृष्ठ २५) के साथ सन्धि हुई। किन्तु तीनो कॉकेशियन

(Caucasian) राज्य—जॉर्जिया (Georgia), अजरबैजान (Azerbaijan) और आर्मीनिया (Armenia)—घाटे में रहे। शायद जॉर्जिया को छोड़कर इनमें से कोई भी स्वतन्त्रता के लक्षणों से युक्त नहीं था। मित्र-राष्ट्रों की सेना, जिसके संरक्षण में ये राज्य युद्ध के अन्तिम वर्ष अस्तित्व में आये थे, हटा लेने से उनके भाग्य का सितारा ही अस्त हो गया। उनकी भूमि सोवियत संघ तथा टर्की को वापस मिल गई। सन् १६२१ के आरम्भ में, सोवियत संघ ने टर्की, फारस और अफगानिस्तान से मित्रता की संधियां कीं; और कुछ समय तक तो ऐसा प्रतीत होने लगा कि ग्रेट ब्रिटेन और रूस के बीच उन्नीसवीं शताब्दी में एशिया में हुई प्रतिद्वन्द्विता पुन: प्रारम्भ होने ही वाली है।

बड़े राष्ट्र सोवियत सरकार से कूटनीतिक संबंध स्थापित करने से इस समय भी बचना चाहते थे। किन्तु सोवियत संघ (जिसने कि जारकालीन रूस (Tsarist Russia) का कर्ज चुकाने से इंकार कर दिया था) से व्यापार की संभावनाओं की उपेक्षा तो नहीं की जा सकती थी। सन् १६२१ में ग्रेट ब्रिटेन ने सोवियत सरकार के साथ एक व्यापारिक समझौता किया तथा एक "व्यापारिक शिष्टमण्डल" ("trade mission") मास्को भेजा। इटली ने ग्रेट ब्रिटेन का अनुकरण किया, और अगले वर्ष सोवियत संघ को इतनी मान्यता मिल चुकी थी कि उसे भी राष्ट्र कुटुम्ब का एक सदस्य मान लिया गया था तथा जेनोआ (Genoa) में अप्रैल १६२२ में हुए सभी योरोपीय देशों के एक आर्थिक सम्मेलन में भाग लेने के लिए उसे आमन्त्रित किया गया। इस सम्मेलन में जर्मनी को भी शामिल किया गया था। लॉयड जॉर्ज (Lloyd George) का यह आशा थी कि इस सम्मेलन का उपयोग सोवियत संघ और अन्य राष्ट्रों में समझौता करने में किया जा सकेगा। किन्तु फ्रांसीसी और बेल्जियन प्रतिनिधिमण्डलों के दुराग्रह के कारण इस आशा पर भी पानी फिर गया। उनकी यह माँग थी कि सोवियत सरकार से किसी भी प्रकार की वार्ता इस शर्त पर चलाई जानी चाहिए कि सोवियत सरकार रूस के युद्ध-पूर्व कर्ज को चुकाना स्वीकार करे। आखिर, इस सम्मेलन का परिणाम कुछ ऐसा हुआ जिसकी उसके संयोजकों ने न तो आशा की थी और न इच्छा ही थी। सम्मेलन के एक सप्ताह बाद, सोवियत और जर्मन प्रतिनिधिमण्डल जेनोआ (Genoa) से कुछ ही मीलों की दूरी पर स्थित रेपैलो (Rapallo) नामक एक समुद्रतटीय आमोद स्थान (seaside resort) पर

गुप्त रूप से मिले और उन्होंने दोनों देशों के बीच मित्रता की सन्धि करली। सन्धि की शर्तों का इतना महत्त्व नहीं था जितना कि सन्धि होने का। उसके द्वारा सोवियत संघ को एक बड़े राष्ट्र से पहिली बार कूटनीतिक मान्यता प्राप्त हो गई। इसके साथ ही जर्मनी ने भी वर्सेलीज की सन्धि द्वारा अपने चारों ओर डाले गये घेरे को तोड़ने का प्रथम खुला प्रयास किया। इस सन्धि पर मित्र राष्ट्र देशों ने जो नाराजी प्रकट की थी वह समझ में आ सकती थी। किन्तु यह संधि तो जर्मनी और सोवियत संघ को महत्त्वहीन देश मानने संबंधी मित्र राष्ट्र देशों की अपनी नीति का ही सीधा परिणाम थी। स्वाभाविक ही था कि दोनों बहिष्कृत राष्ट्र आपस में गठबन्धन कर लें। रेपैलो सन्धि के कारण इन दोनों देशों के सम्बन्ध दस वर्षों से भी अधिक समय तक मित्रतापूर्ण बने रहे।[1]

सोवियत संघ सम्बन्धी ग्रेट ब्रिटन की नीति इस समय दुर्भाग्य से दलगत राजनीति की चौपड़ का मोहरा हो गई। जनोआ सम्मेलन के कुछ समय बाद ही, लॉयड जार्ज का पतन हुआ जिसका एक कारण यह बताया गया था कि "बोलशेविकों को रिझाने" ("coquetting the Bolsheviks") की उसकी नीति के कारण ही उसका पतन हुआ। लॉयड जॉर्ज की सरकार के बाद अनुदार सरकार (Conservative Government) बनी जिसने यह आवश्यक समझा कि इस मामले में और भी कड़ी नीति अपनाई जाये। अनुदार दल की इस नीति की प्रतिक्रियास्वरूप मजदूरदलीय सरकार (Labour Government)

---

1 "The terms of the treaty were unimportant But its signature was a significant event It secured for the Soviet Union its first official recognition by a Great Power, and it was the first overt attempt by Germany to break the ring which the Versailles Powers had drawn round her The indignation with which this treaty was greeted by the Allied Powers was understandable But it was the direct cousequence of their own policy of treating Germany and the Soviet Union as inferior countries The two outcasts naturally joined hands, and the Rapallo Treaty established friendly relations between them for more than ten years"

ने, जो कि फरवरी १६२४ में सत्तारूढ हुई, तुरन्त ही सोवियत सरकार को मान्यता दे दी। पूरे ग्रीष्म काल में, लन्दन मे वार्ताएँ चलती रही और अगस्त मे ब्रिटिश तथा सोवियन प्रतिनिधियो में एक समझौता होगया जिसके अनुसार एक दूसरे के बकाया दावो (outstanding claims) को रद्द कर देने, तथा सोवियत सरकार को एक गारटी देने की व्यवस्था की गई।

इसी बीच, सोवियत सघ के प्रति मजदूरदलीय सरकार की नीति की आलोचना को अनुदारदल ने अपने कार्यक्रम का एक प्रमुख अग बना लिया। सन् १६२१ के व्यापारिक समझौते की एक धारा के अनुसार सोवियत सरकार ने यह वचन दिया था कि ब्रिटिश साम्राज्य मे किसी भी प्रकार का क्रातिकारी प्रचार नही किया जाएगा। न तो अनुदारदलीय और न मजदूरदलीय सरकार ने ही सोवियत सरकार का यह तर्क स्वीकार किया था कि सोवियत सरकार और कॉमिन्टर्न दो अलग-अलग चीजें हैं तथा कॉमिन्टर्न की गतिविधि को इस वचन का भग नही माना जा सकता। सन् १६२४ के ग्रीष्मकाल में अनुदारदल के लोग ब्रिटिश साम्राज्य में कॉमिन्टर्न द्वारा किए जा रहे प्रचार की ओर मजदूरदलीय सरकार का ध्यान बारबार आकर्षित कर उसकी स्थिति खराब करते रहे। अक्टूबर १६२४ मे, आम चुनावो के समय एक अनुदार समाचार पत्र ने, कॉमिन्टर्न के अध्यक्ष जिनोविव (Zinoview) द्वारा सभवत लिखा गया एक पत्र[1] प्रकाशित किया जिसमें ब्रिटिश कम्युनिस्टों को यह बताया गया था कि वे ग्रेट ब्रिटेन मे किस प्रकार कम्युनिस्ट प्रचार-कार्य करें। सोवियत सरकार ने पत्र की प्रामाणिकता (authenticity) का दृढ विरोध किया। किन्तु यह सामान्यत विश्वास किया जाता था कि इस पत्र के प्रकाशन के कारण ही अनुदार दल को अधिक बहुमत प्राप्त हुआ। इस घटना और अनुदारदलीय सरकार के पुन. सत्तारूढ हो जाने के कारण, ग्रीष्मकाल मे हुए समझौते का अनुसमर्थन किए जाने की आशाओ पर पानी फिर गया। सोवियत सघ और ग्रेट ब्रिटेन के सम्बन्धो में एक बार पुन तनाव आ गया, यद्यपि वे टूटे नही।

जो भी हो, यह तनाव सन् १६२४ के अन्त में सोवियत सघ की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति से भिन्न नही था। ग्रेट ब्रिटेन द्वारा कूटनीतिक मान्यता दिये जाने के

---

1 What Purported to be a letter from Zinoview.

बाद, सोवियत सघ को इटली, फ्रास और जापान तथा योरोप के अधिकाश राज्यो ने मान्यता दे दी थी। किन्तु इस समय अमेरिका ही एक ऐसा राष्ट्र रह गया था जो सोवियत सरकार से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नही रखना चाहता था। इधर सोवियत सघ में, जनवरी १६२४ में लेनिन की मृत्यु के बाद से, विश्वक्राति को पार्टी कार्यक्रम में गौण स्थान देने की प्रवृत्ति स्पष्ट परिलक्षित हो रही थी। "जिनोविव पत्र" ("Zinoview letter") प्रकरण का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पहलू यह था कि सोवियत सघ में हर कोई इस पत्र की प्रामाणिकता को अस्वीकार करना चाहता था। पत्र प्रामाणिक हो या न हो, किन्तु उसमें ऐसी कोई बात नही थी जो कि सोवियत नेताओ की अब तक की घोषित नीति (hitherto declared policy) के विरुद्ध हो। ट्रॉट्स्की (Trotsky) और स्टालिन में १६२४ से नेतृत्व के लिए जो सघर्ष प्रारम्भ हुआ, उसका भी विषय यही था। ट्रॉटस्की इस परम्परागत सिद्धान्त का समथन करता था कि पूँजीवादी दुनिया के रहते हुए, सोवियत सरकार अनिश्चित काल तक टिका नही रह सकती। इसलिए क्राति का विस्तार (spread) ही सोवियत गतिविधि का प्रथम उद्देश्य होना चाहिये। किन्तु स्टालिन नई नीति का समर्थक था जो कि "एक ही राज्य मे समाजवाद की नीव पक्की करने" ("building up socialism in a single state") की नीति के नाम से विख्यात हुई। सन् १६२७ में ट्रॉट्स्की को कम्युनिस्ट पार्टी से निकाल देने का अर्थ ससार मे यह घोषणा कर देना था कि नई नीति की विजय हुई है और विश्वक्राति की आकाक्षाओ, यद्यपि विधिवत् उनका परित्याग नही कर दिया गया था, को सोवियत सरकार और पूँजीवादी राज्यो मे सामान्य सम्बन्ध स्थापित होने में भविष्य मे बाधक नही होने दिया जायगा। इस प्रकार सोवियत सघ ने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो के मूलभूत आधार को आखिर स्वीकार कर लिया तथा अन्तर्राष्ट्रीय राज्य समाज (international community of states) में उसका पूरी तरह पुनः सम्मिलित होना केवल समय का ही प्रश्न रह गया।

———

द्वितीय भाग

शांतिकरण-काल (The Period of Pacification)

राष्ट्रसंघ (The League of Nations)

(१६२४—१६३०)

४. शांति की नींव

(The Foundations of Peace)

विश्वयुद्धों के बीच के योरोपीय इतिहास के द्वितीय काल—शान्तिकरण-काल (period of pacification)—का प्रारम्भ उन दो समस्याओं के समाधान से हुआ जिन्होंने कि प्रथम काल में सबसे अधिक बखेडे खडे किये थे। ये समस्याएँ क्षतिपूर्ति और फ्रांस को सुरक्षा से सम्बन्धित थीं। सन् १९२४ और १९२५ में इन समस्याओं के जो समाधान—डेविस योजना (Dawes plan) और लोकार्नो (Locarno) संधि—निकाले गये वे अधूरे, और, जैसा कि हमें विदित ही है, अल्पकालिक थे। किन्तु आधी दशाब्दी (decade) तक उन्हें ही अंतिम माना जाता रहा; और ये वर्ष, अनिश्चितताओं और अपूर्णताओं के होते हुए भी, युद्धोत्तर योरोप के स्वर्णिम वर्ष (golden years) थे।

डेविस योजना (The Dawes Plan)

मई ११, १९२४ को फ्रांस में आम चुनाव हुए जिनके परिणामस्वरूप हेरियत (Harriot) फ्रांस का प्रधान मंत्री बना। इन चुनावों से कुछ ही समय पूर्व डेविस समिति ने अपना प्रतिवेदन क्षतिपूर्ति आयोग को प्रस्तुत किया था। जर्मनी में, इस समय तक, वहां का विदेश मंत्री स्ट्रेसमान राजनैतिक जगत का सर्वाधिक प्रभावशाली व्यक्ति हो चुका था। ग्रेट ब्रिटेन में, रमजे मैक्डॉनल्ड की मजदूरदलीय सरकार सत्तारूढ थी। अब ये तीनों राजनीतिज्ञ डेविस प्रतिवेदन के आधार पर क्षतिपूर्ति समस्या का हल निकालने में जुट गये।

डेविस समिति के सामने मुख्य समस्या जर्मन मुद्रा को पुनः स्थिर करने की थी, क्योंकि उसके बिना विदेशों का भुगतान कर सकना जर्मनी के लिए असम्भव था। सन् १९२३ की समाप्ति तक, जर्मनी मार्क (सिक्के) का वास्तव में कोई मूल्य ही नहीं रह गया था। जर्मन सरकार ने अस्थायी रूप से एक नई मुद्रा का प्रचलन किया था जो कि रेन्टेनमार्क (Rentenmark) कहलाती थी (तथा जिसकी दर पुराने सिक्के की दर के ही समान प्रति पौंड २० थी।) किन्तु जब तक इस मुद्रा के पीछे स्वर्ण या विदेशी आस्तियों (foreign assets) की कोई

ठोस कोष (solid reserve) न हो, तब तक रेन्टेनमार्क की स्थिति भी सकट-पूर्ण ही थी । डेविस समिति ने उक्त दर पर ही—रीशमार्क (Reichsmark) नामक एक नई मुद्रा जारी करने की सिफारिश की थी जिसका नियत्रण एक प्रचलन बैंक (Bank of Issue)—यह बैंक जर्मन सरकार के नियत्रण से स्वतत्र होनी थी—द्वारा किया जाना था ।

यह मानकर कि मुद्रा स्थिर हो जायगी, समिति ने यह मत प्रकट किया था कि क्षतिपूर्ति के आशिक भुगतानो के रूप मे, जर्मनी मित्र-राष्ट्रो को ५०,०००,००० पौंड से प्रारम्भ होने वाली वार्षिकियाँ (annuities) चुका सकेगा जोकि पाँचवें वर्ष के बाद से १२५,०००,००० पौंड के प्रामाणिक अधिकतम (standard maximum) तक पहुँच जाएँगी । इन भुगतानो की प्रतिभूति (security) तीन प्रकार की रखी गई थी : सरकारी रेलों के ऋणपत्र (bonds), जर्मन औद्योगिक प्रतिष्ठानो के ऋणपत्र तथा मद्यसार (alcohol), शक्कर और तम्बाकू पर करो तथा चुगी से राजस्व आय (revenue receipts) । कहीं ये भुगतान विनिमय (exchange) को पुनः अव्यवस्थित न कर दें, इसलिए यह सुझाव रखा गया था कि जर्मनी द्वारा ये भुगतान मार्कों मे किए जाँय तथा विदेशी मुद्राओ मे इन रकमो का विनिमय कराने का उत्तरदायित्व मित्र-राष्ट्रो की सरकारो का रहे । लेनदारो (creditors) के हित में यह प्रबध उचित रूप से चलता रहे, इसके लिए क्षतिपूर्ति आयोग को यह अधिकार दिया गया था कि वह प्रचलन-बैंक के बोर्ड, रेलो और "नियत्रित राजस्व" ("controlled revenue") [अर्थात् विशेषाकित कर आय (earmarked tax receipts)] के प्रबन्धक मडल मे मित्र-राष्ट्रीय आयुक्त (Allied Commissioners) नियुक्त कर सकेगा । इसके साथ ही सपूर्ण योजना का भार एक "क्षतिपूर्ति भुगतान अभिकर्ता (Agent)" को सौंपे जाने का भी सुझाव था । अन्ततः, इस योजना की सफलता के लिए दो बातों का पूरा होना आवश्यक था । एक तो रूर पर अधिकार की समाप्ति और जर्मनी का अपने सपूर्ण क्षेत्र में पुनः आर्थिक नियतन्त्रण । दूसरे, जर्मनी को विदेशो से ४०,०००,००० पौंड ऋण मिले ताकि उसके दो प्रयोजन—मुद्रा सचय (currency reserve) की व्यवस्था करना तथा उस प्रथम वार्षिकी के भुगतान में उसकी सहायता करना जो कि योजना के लाभ सामने आने से पहिले ही देय (due) हो जायेगी—पूरे हो सकें ।

मेकडॉनल्ड और हेरियत में प्रारम्भिक चर्चाओं के बाद, "डेविस योजना" लंदन में जुलाई और अगस्त में हुए एक सम्मेलन में प्रस्तुत की गई। इस सम्मेलन में स्ट्रेसमान भी शामिल हुये थे। समझौते के इस नए वातावरण में, यह योजना बिना अधिक कठिनाई के स्वीकार कर ली गई यद्यपि कई जटिल बारीकियों पर समझौता होना आवश्यक था। रूर से शिक्षा लेते हुए, जर्मनी ने यह वचन लेने का प्रयत्न किया, और उसमें उन्हें सफलता भी मिली कि जानबूझकर *बड़ी रकम बकाया रखने के अतिरिक्त और किसी भी समय उस पर शान्ति* नहीं लगाई जाएगी। अक्टूबर में, जर्मन ऋण जारी किया गया और (फ्रांस को छोड़कर जहाँ कि स्वयं बैंकों ने यह ऋण दिया था) सर्वत्र ही उसमें अपेक्षा से अधिक रकम प्राप्त हुई। ऋण की आधी से भी अधिक रकम अमेरिका से मिली और एक चौथाई से भी अधिक ग्रेट ब्रिटेन से। शेष रकम फ्रांस, बेल्जियम, इटली, स्विट्जरलैंड, और स्वीडन से प्राप्त हुई। यद्यपि डेविस ऋण राष्ट्रसंघ के तत्वावधान में जारी नहीं किया था, तदपि इसमें संदेह की गुंजायश कम ही है कि ऑस्ट्रिया और हंगरी को राष्ट्रसंघ द्वारा दिलाए गए ऋण के पूर्वोदाहरण ने इस ऋण की सफलता में बहुत योग दिया। नवम्बर के मध्य में, फ्रांस और बेल्जियम की अन्तिम सेनाएं रूर से हटा ली गई।

डेविस योजना में कई अच्छाइयाँ थीं। उसमें माँगों को केवल उतनी ही रकम तक सीमित रखा गया था जितनी कि जर्मनी, परिस्थिति अनुकूल होने पर, चुका सकता था, यद्यपि फ्रांस की आशाओं को पूरी करने की आवश्यकता के कारण विशेषज्ञ लोग सम्भवतः आवश्यकता से अधिक आशावादी बन गए थे। इस योजना ने भुगतान और विनिमय के प्रश्न में अंतर किया तथा विनिमय का उत्तरदायित्व लेनदारों पर ही छोड़ दिया। डेविस योजना ने कुछ निश्चित राजस्व (आय) की प्रतिभूति लेनदारों को दी—न कि जर्मनी के साधनों पर व्यापक ऋणभार डाला। सबसे अच्छी बात तो उसके द्वारा यह हुई कि उसने क्षतिपूर्ति के प्रश्न को राजनैतिक विवाद क्षेत्र से हटा लिया और उसका समाधान किसी साधारण व्यापारिक कर्ज की भाँति ही सुलझाया। उसने क्षतिपूर्ति आयोग के हाथों से यह सारा मामला ले लिया क्योंकि उसका कार्य असंतोषजनक था तथा यह सुनिश्चित बना दिया कि उसका निबटारा निष्पक्ष, अ-राजनैतिक दृष्टिकोण से किया जाएगा। यह बात विशेषकर इसलिए सभव थी कि "क्षतिपूर्ति भुगतान अभिकर्त्ता" एक अमरीकी नागरिक को बनाया जाना था।

इन सभी बातो में डेविस योजना ने उसके पूर्व उठाए गये किन्ही भी कदमो से इतनी अधिक प्रगति की थी कि उसका उत्साहपूर्ण स्वागत आसानी से समझा जा सकता है। किन्तु उसमें गंभीर दोष भी थे। उसके द्वारा वार्षिक भुगतान तो निश्चित किए गये थे किन्तु वे कब तक किए जाएंगे या जर्मनी को कुल कितना कर्ज चुकाना है यह निश्चित नही किया गया था। क्योंकि कोई भी फ्रासीसी सरकार इस समय यह स्वीकार करने का साहस नही कर सकती थी कि ६,६००,०००,००० पौंड के संपूर्ण क्षतिपूर्ति दावे का कोई भाग उसने विधिवत् छोड दिया है। अतएव जर्मनी इस समय भी ऐसी निस्सहाय स्थिति मे था कि यदि उसकी आर्थिक स्थिति में कोई सुधार होता तो उसके दायित्व में भी वृद्धि हो जाती। इस प्रकार वह अपनी बचत जमा करने की इच्छा से भी वंचित कर दिया गया क्योंकि वह बचत मित्र-राष्ट्रो के राजकोषो मे ही चली जाती। इससे भी अधिक बुरी बात तो यह हुई कि डेविस योजना ने क्षतिपूर्ति भुगतान के लिए जर्मनी को आवश्यक धनराशि ऋणस्वरूप देने का घातक पूर्वोदाहरण (precedent) प्रस्तुत कर दिया। डेविस ऋण की सफलता के बाद जर्मनी ने खूब ऋण लिया। अगले पाच वर्षों मे जर्मनी की हर प्रमुख नगरपालिका (municipality) और लगभग हर प्रमुख व्यापारिक प्रतिष्ठान (business concern) ने या तो काफी ऋण लिये या अमेरिका में और कभी-कभी ब्रिटेन में भी उधारी-खाता खोला। लक्ष्मी का यह आगमन भाग्य खुल जाने के समान मालूम पडने लगा। उसके कारण समृद्धि की ऐसी लहर सी आगई कि अपने साधनो पर अनुचित भार डाल बिना जर्मनी डॉविस वार्षिकियाँ चुकाने मे समर्थ हो सका तथा प्रचुर विदेशी मुद्रा अपने हाथ में रख उसने अपनी विनिमय समस्या को भी हल कर लिया। इन वर्षों मे डेविस योजना एक जबरदस्त सफलता प्रतीत होने लगी। उस समय बहुत थोडे ही लोग यह अनुभव कर सकते थे कि जर्मनी अमेरिका से धन लेकर अपना कर्ज चुका रहा है और उसकी हैसियत (solvency) इस बात पर निर्भर करती है कि जर्मन ऋणो का वॉल स्ट्रीट (wall street) में सदैव ही स्वागत होता रहे।

मित्र-राष्ट्रो के आपसी कर्ज (Inter-Allied Debts)

यहा एक और प्रकार के दावो, यद्यपि वे उत्पत्ति में भिन्न थे, की चर्चा के लिए सबसे उपयुक्त अवसर है जो कि क्षतिपूर्ति समस्या के साथ अविभिन्नता-

पूर्वक जुड़ गए थे तथा अन्त में जाकर जिनकी क्षतिपूर्ति के समान ही दशा हुई। युद्धकाल मे, ग्रेट ब्रिटेन ने अपने कुछ योरोपीय मित्र-देशो को काफी रकम ऋण मे दी थी जिनमें रूस भी शामिल था। किन्तु इस ऋण की आधी से भी अधिक रकम उसने अमेरिका जिससे कुछ मित्र राष्ट्रो ने सीधे भी ऋण लिए थे, से उधार ली थी। कर्जदारी के इस चक्र के क्षतिपूर्ति समस्या के समान शीघ्र ही असमाधेय और जटिल बन जाने की आशंका होने लगी। जहाँ तक मित्र-राष्ट्रो के युद्धकालीन आपसी कर्जो का प्रश्न है, केवल अमेरिका ही साहूकार (creditor) था, योरोपीय मित्र राष्ट्रो केवल कर्जदार ही थे (फ्रांस भी थोड़ी सी रकम का साहूकार था) और ग्रेट ब्रिटेन की बीच की स्थिति थी, वह आंशिक रूप से कर्जदार और आंशिक रूप में साहूकार (creditor) था।

सन् १९२२ मे जब अमरीकी सरकार अपना पैसा वापस चुकाने के लिए अधिक जोर देने लगी, तब फ्रांस ने यह घोषित किया कि वह अपना युद्धकालीन कर्ज केवल तब ही चुका सकता है जबकि जर्मनी क्षतिपूर्ति का भुगतान करे। क्योंकि यह तो एक असहनीय बात थी कि यदि पराजित जर्मनी उसका (फ्रांस का) पैसा नहीं चुका सके, तो विजयी फ्रांस अपने मित्र-राष्ट्रो का भुगतान करे। नाम और जमा (debit and credit) दोनो में ही बराबर होने के कारण ग्रेट ब्रिटेन यह स्वीकार कर लेता कि सभी युद्धकालीन कर्ज बिलकुल रद्द कर दिए जायें। अगस्त १९२२ मे, अपने योरोपीय साथी राष्ट्रो को, इसने एक पत्र लिखा (जो कि साधारण "बैलफोर-पत्र" (Balfour-note) के नाम से प्रसिद्ध है) जिसमें उसने उन्हें यह सूचित किया कि ब्रिटेन अपने कर्जदारों से कर्ज की केवल उतनी ही रकम वापस चाहता है जितनी कि उसे अमेरिका को अपना कर्ज चुका देने के लिए आवश्यक है। कर्ज वसूली की सारी बुराई (odium) अमेरिका के सिर लाद देने के इस अत्यन्त चालाकीपूर्ण प्रयत्न का अमेरिका में लगभग सर्वत्र ही विरोध हुआ और इस कारण ऋण रद्द कर देने के प्रस्ताव के प्रति अमेरिका की भावनाएं और भी कठोर हो गई।[1]

---

[1] "This over-clear attempt to place the whole odium of debt collection on the United States was widely resented in that country, and further hardened American opinion against cancellation"

अमेरिका के रुख को देखते हुए, ब्रिटिश सरकार ने यह सोचा कि उसे *अपना कर्ज चुकाने के अतिरिक्त और कोई चारा नही है।* दिसम्बर १६२२ मे एक समझौता हुआ जिसके अनुसार यह निश्चय किया गया कि ब्रिटेन अमेरिका का कर्ज उसके ब्याज सहित लगभग ३३,०००,००० पौंड की ६२ वार्षिक किस्तो मे चुकाएगा। सन् १६२६ तक ग्रेट ब्रिटेन को अपने योरोपीय मित्र-राष्ट्रो से एक भी पैसा नही मिला। तब डेविस समझोते के बाद, ब्रिटिश-अमरीकी समझौते के ही ढग के समझौते उस कर्ज को वार्षिक किस्तो मे चुकाने के लिए हुए जो कि फ्रास, इटली, रूमानिया, यूगोस्लाविया, यूनान और पुर्तगाल को ग्रेट ब्रिटेन एव अमेरिका को देना था। इन लेनदेनों (transaction) का विस्तृत विवरण यहाँ नही दिया जा सकता। किन्तु यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि जहाँ अमेरिका ने ब्रिटेन के मूल कर्ज (पाँच प्रतिशत मान्य दर ब्याज जोडते हुए) में ३० प्रतिशत से भी कम की कमी थी, वही ब्रिटेन ने इटली के कर्ज मे ८० *प्रतिशत से अधिक और अन्य मित्र-राष्ट्रो के कर्ज में ६० प्रतिशत से भी अधिक* की कमी की। इसके अतिरिक्त, ग्रेट ब्रिटेन को मित्र-राष्ट्रों के आपसी कर्ज और क्षतिपूर्ति से जो रकम मिली, वह मिलकर भी ब्रिटेन के कर्ज की उस रकम के बराबर कभी भी नहीं हुई जो कि उसे अमेरिका को चुकानी पडी। वास्तव मे, इस प्रकार कर्ज की सारी रकम, चाहे यह कहो भी चुकाई गई हो, अमरीकी राजकोष मे ही समा गई।

इन कर्ज-समझौतो मे निधियो (funds) के विस्तृत विनिमय की जो व्यवस्था की गई थी, वह डेविस योजना के अन्तर्गत विनिमय-व्यवस्था की भाँति, इसलिए संभव हो सकी कि अमेरिका ने कर्जदार-देशो को ऋण और उधारी दी। ऑस्ट्रिया और हगरी मे सफलतापूर्वक प्रारम्भ की गई नीति को राष्ट्रसघ ने जारी रखा। सन् १६२४ और १६२८ के बीच, राष्ट्र-सघ के तत्वावधान में यूनान, बलगेरिया, इस्टोनिया (Estonia) और स्वतन्त्र नगर डानजिग (Free City of Danzig) ने ऋण लिये और उनकी रकम मुख्यतः अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेन से प्राप्त हुई। अटलाटिक के इस पार से जर्मनी और अन्य योरोपीय देशो को काफी रकम उधार मिलने से न केवल क्षतिपूर्ति और युद्ध कालीन कर्जों के भुगतान सबधी सारी भारी भरकम गाडी ही चलती रही अपितु उसके कारण योरोप मे समृद्धि और कल्याण (well being) का एक सामान्य

वातावरण ही निर्मित हो गया और यह समृद्धि योरोप के प्रमुख राज्यो के सबधो मे सुधार—जो इस अवधि की सर्वाधिक महात्वपूर्ण विशेपता थी—होने के लिए अत्यन्त आवश्यक थी।

जेनेवा उपसधि (Geneva Protocol)

जर्मन क्षतिपूर्ति समस्या के समाधान के लिये डेविस योजना स्वीकार करने सबधी समझौता अगस्त १६२४ मे लन्दन मे कर चुकने के बाद, मेकडॉनल्ड तथा हेरियत अगले माह राष्ट्रसघ-सभा के जेनेवा अधिवेशन मे सम्मिलित हुये। उसमे उन्होंने दूसरी महत्त्वपूर्ण समस्या—फ्रास की सुरक्षा-माँग—का समाधान निकालने के लिए एक महत्त्वपूर्ण प्रयत्न किया।

सन् १६२२ में गारन्टी समझौता (guarantee pact) (देखिये पृष्ठ २१) सबधी एक ब्रिटिश प्रस्ताव फ्रास द्वारा अस्वीकार कर दिए जाने के बाद से फ्रासीसी सुरक्षा के लिए विभिन्न दिशाओ से प्रयत्न किए जाने लगे थे। सन् १६२१ में राष्ट्रसघ ने नि शस्त्रीकरण के कष्टकर प्रश्न को हल करने के प्रयत्न (जिनका वर्णन आगे किसी अध्याय में किया जाएगा) करना प्रारम्भ कर दिया था। और १६२८ में फ्रासीसी सरकार ने प्रथम बार यह युक्ति, जिस पर वह अत्यधिक अटल रही, पेश की कि फ्रास केवल उसी स्थिति में अपना नि शस्त्रीकरण कर सकता है जब उसे और अधिक सुरक्षा प्रदान की जाये। सन् १६१६ में जब फ्रास द्वारा सुरक्षा की माँग पहिली बार की गई थी, तब से अब तक फ्रासीसी सुरक्षा की कल्पना में वृद्धि हो गई थी। पूर्वी मध्य योरोप में फ्रास के अब ऐसे आसामी थे जिनकी सुरक्षा अब स्वयं उसकी सुरक्षा का अ ग हो चुकी थी। अब आवश्यकता इस बात की थी कि फ्रास और उसके साथियो को अतिरिक्त सुरक्षा की व्यापक गारन्टी दी जाये। इस प्रकार की गारन्टी की माँग करने का उत्तम अवसर नि शस्त्रीकरण सबधी जेनेवा चर्चाओ के समय ही था। यदि इस की गारन्टी प्राप्त हो जाती, तो फ्रास को अपनी नीति मे एक महत्वपूर्ण सफलता मिल जाती। यदि वह प्राप्त नही होती, तो फ्रास और उसके साथी नि शस्त्रीकरण सबधा कोई कर्त्तव्य स्वीकार ही नही करते।

जेनेवा में ब्रिटिश प्रतिनिधिमडल ने, सभवतः अपने कदम के सम्पूर्ण परिणामो का अनुभव किए बिना ही फ्रास की उक्त धारणा को चुपचाप स्वीकार कर

लिया। *अस्थायी मिश्र आयोग* (Temporary Mixed Commission) जिसे नि:शस्त्रीकरण प्रश्न पर विचार करने के लिए नियुक्त किया गया था, ने सन् १९२३ मे राष्ट्रसंघ की सभा के सामने "परस्पर सहायता संधि" ("Treaty of Mutual Assistance") का प्रारूप प्रस्तुत किया। इस प्रारूप-संधि में भावी निःशस्त्रीकरण संबंधी कुछ व्यवस्था की गई थी और वर्तमान सुरक्षा के लिए सुपरिभाषित गारन्टियाँ निश्चित की थी। किसी भी युद्ध के प्रारम्भ होने के चार दिनों के भीतर राष्ट्रसंघ-परिषद् को यह निर्णय करना था कि आक्रमणकारी (aggressor) पक्ष कौन सा है। और उसके बाद राष्ट्रसंघ के सदस्य स्वतः ही इस बात के लिए कर्त्तव्यबद्ध हो जाने थे कि वे आक्रमणकारी के विरुद्ध सैनिक सहायता दें। इसलिए इस व्यवस्था का उद्देश्य न केवल अनुबंध-पत्र के अनुच्छेद १६ की मिट्टी खराब होने से बचाना था, जैसा कि राष्ट्र-सभा के १९२१ के प्रस्तावों के समय उसकी हुई थी (देखिए पृष्ठ २२), अपितु सैनिक अनुशास्तियों को आप ही आप लागू होने योग्य और अनिवार्य बनाकर उस अनुच्छेद को दृढ बनाना भी था।

सन् १९२३ की राष्ट्रसंघ-सभा, जिसमें किसी भी बडे राष्ट्र के जिम्मेदार मंत्रियों ने भाग नहीं लिया था, इस प्रारूप को संबंधित सरकारों के विचारार्थ भेजने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं कर सकी। फ्रांस, उसके अधिकांश साथियों और पूर्वी योरोप के छोटे छोटे राज्यों ने उसका उत्साहपूर्वक स्वागत किया किन्तु ग्रेट ब्रिटेन, ब्रिटिश अधिराज्यों, स्केन्डेनेवियन राज्यों और हॉलैंड—ये उन देशों में से थे जो अपनी सुरक्षा बढाने की अपेक्षा अपने वचनों मे वृद्धि करने से बचना चाहते थे—ने उसे निश्चित रूप से अस्वीकृत कर दिया। किन्तु अगले वर्ष जब मेकडॉनल्ड और हेरियत एक साथ सभा में उपस्थित हुए, तब वातावरण में इतना सर्वतोमुखी सुधार हो चुका था कि उक्त दोनों विरोधी दृष्टिकोणों मे समझौता संभव दिखाई देने लगा। सन् १९२४ में सभा ने "जेनेवा उपसंधि" (Geneva Protocol") नामक प्रसिद्ध समझौते का प्रारूप बनाया और संबंधित सरकारों से उसे स्वीकार कर लेने की निर्विरोध सिफारिश की। इस समझौते का पूरा नाम था, "अंतर्राष्ट्रीय विवादों के शांति-पूर्ण समाधान के लिये उपसंधि" ('Protocol for the Pacific Settlement of International Disputes").

उपसंधि की प्रमुख नवीनता यह थी कि उसके द्वारा राष्ट्रसंघ के अनुबंधपत्र में सुधार करने और पंचनिर्णय (arbitration) का आश्रय लेना अनिवार्य बना कर अतिरिक्त सुरक्षा की व्यवस्था करने का प्रयत्न किया गया था।[1] अनुबंधपत्र में की गई व्यवस्था के अनुसार युद्ध का आश्रय दो स्थितियों में लिया जा सकता था—एक तो, उस समय जबकि परिषद् जिसमें कि मतदान संबंधित पक्षों को शामिल किये बिना ही हो, किसी विवाद पर निर्विरोध निर्णय न दे सके और दूसरे, उस समय जबकि विवाद विषय को संबंधित पक्षों का घरेलू मामला करार दे दिया जाए। उपसंधि के द्वारा इन दोनों ही खामियों को दूर करने का प्रयत्न किया गया था। उसमें यह व्यवस्था की गई थी कि सभी प्रकार के कानूनी विवाद अंतर्राष्ट्रीय स्थायी न्यायालय में भेजे जाएँ और उसका निर्णय बंधनकारी (binding) हो। अन्य विवादों के संबंध में, अनुबंधपत्र में निश्चित किया गया तरीका ही अपनाने की व्यवस्था की गई थी। किन्तु परिषद् यदि किसी एकमत निर्णय (unanimous conclusion) पर नहीं पहुँच सके, तो विवादी पक्षों को युद्ध का आश्रय लेने की स्वतंत्रता नहीं दी गई थी जैसा कि अनुबंधपत्र में विहित किया गया था। यह उपबंधित किया गया था कि ऐसी स्थिति में परिषद् संबंधित विवाद को पंचों की एक समिति के पास भेजे और इस समिति का निर्णय बंधनकारी हो। जहाँ तक दूसरी खामी का संबंध है, उपसंधि में यह व्यवस्था की गई थी कि (इसका प्रस्ताव जापानी प्रतिनिधिमंडल ने रखा था) घरेलू क्षेत्राधिकार (domestic jurisdiction) सम्बन्धी विवादों—के सम्बन्ध में अनुच्छेद ११ में निहित समझौते की कार्रवाई की जाय—यद्यपि घरेलू क्षेत्राधिकार के मामलों पर अनुबन्धपत्र के अनुच्छेद १५ के अनुसार परिषद् नियमानुसार कोई निर्णय नहीं दे सकती थी—तथा उक्त अनुच्छेद के अधीन राष्ट्रसंघ के सामने मामला पेश करने वाले राष्ट्र को ऐसे विवाद में आक्रमणकर्त्ता नहीं माना जाये। अंत में, सुरक्षा और निःशस्त्रीकरण में संतुलन बनाए रखने के लिए, उपसंधि में यह सुझाव रखा गया था कि १५ जून १९२५ को निःशस्त्री-

---

1 "The principal novelty of the Protocol was its attempt to improve on the Covenant and to provide additional security through compulsory resort to arbitration"

करण सम्मेलन हो बशर्ते कि इस तारीख तक काफी राज्य उपसधि का अनु-समर्थन कर दें ।

अनुबन्धपत्र के अनुच्छेद १६ के अधीन परिषद् की शक्तियों में वृद्धि करने या सैनिक अनुशास्तियो (military sanctions) को अनिवार्य बनाने के लिए जेनेवा उपसधि में कोई व्यवस्था नही की गई थी । इस कारण पारस्परिक सहायता-सधि प्रारूप (Draft Treaty of Mutual Assistance) की अपेक्षा उससे फ्रास की माँग कम ही पूरी होती थी । सन् १६२४ की फासीसी सरकार ने उसे (जेनेवा उपसधि) पर्याप्त मानकर स्वीकार कर लिया था—यह बात ही इस बात का पुष्ट प्रमाण थी कि पौंकारे के पतन के बाद से फ्रासीसी नीति समझौते की ओर उन्मुख हो चली थी । जो भी हो, इस उपसधि से फ्रास और उसके साथियो का एक महत्त्वपूर्ण हित-साधन तो होता था—१६१६ के शाति समझौते और, विशेषतः, उसकी क्षेत्रिक व्यवस्थाओ को बनाए रखना । शाति उपसन्धि को सशोधित करने की माँग "विवाद" (dispute) नही कही जा सकती थी और न इस पर प्रारूप मे दी हुई व्यवस्था लागू की जा सकती थी । प्रारूप निर्माण समिति ने भी इस विषय पर कही कोई शका न रह जाय, अपनी रिपोर्ट मे इस मुद्दे पर विशेष बल दिया था । दूसरे शब्दो मे, प्रारूप मे दिया हुआ यह बल तत्पश्चात् अनुबन्धपत्र की अन्य कई खामियो में से एक कह कर पुकारा गया—और यह थी इसकी १६१६ के समझौते और सुरक्षा में साम्य स्थापित करने की प्रवृत्ति एव उस समझौते के सशोधन के लिये पर्याप्त सगठन (adequate machinery) करने की भूल । पर १६२४ मे यह समालोचना विलुप्त हो चुकी थी । जर्मनी अब तक भी राष्ट्रसघ का सदस्य नही था । भूतपूर्व अल्प महत्त्वपूर्ण शत्रु राज्य भी आक्रमण करने की अपेक्षा स्वय आक्रमित होने से भयातुर थे; अतएव उन्होने प्रारूप पर सहर्ष हस्ताक्षर कर दिये ।

राष्ट्रसघ-सभा समाप्त होने तक उपसन्धि के प्रति सामान्य उत्साह बना रहा । उसके बाद उसकी प्रतिक्रिया प्रारम्भ हुई । आपत्ति सबसे पहिले इस आशय की धाराओ के सम्बन्ध मे उठ खडी हुई कि अनुबधपत्र के अनुच्छेद ११ के अधीन घरेलू क्षेत्राधिकार के मामलो सबधी विवाद राष्ट्रसघ के सामने प्रस्तुत किये जा सकते हैं । इस प्रस्ताव को पेश करने में जापान की नीयत (motive) सर्वविदित थी । अपने क्षेत्रो में जापानी आप्रवासियो (immigrants) को

प्रवेश नहीं करने देने (देखिए अध्याय ८) संबंधी अमरीकी नीति का कनाडा, ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड ने हाल ही में अनुकरण किया था, इसलिए जापान इन बंदिशों के विरुद्ध जेनेवा में अपना विरोध प्रदर्शित करने का अधिकार प्राप्त करना चाहता था। अनुच्छेद ११ इतना व्यापक प्रतीत होता था कि स्वयं उससे ही यह अधिकार प्रदत्त मालूम पड़ता था। किन्तु ब्रिटिश अधिराज्य यह शर्त मानने के लिए सर्वाधिक अनिच्छुक थे कि आप्रवासन (immigration) के प्रश्नों से संबंधित उनके कानूनों पर किसी भी स्थिति में राष्ट्रसंघ में चर्चा हो या उन्हें चुनौती दी जाये, और यह बात शीघ्र ही स्पष्ट हो गई कि यदि और किसी कारण से नहीं तो केवल इसी आधार पर वे उपसंधि का अनुसमर्थन करने से इन्कार कर देंगे।

उपसंधि के अन्य उपबन्धों के अध्ययन ने, न केवल अधिराज्यों में, अपितु ग्रेट ब्रिटेन में भी विचारोत्तेजना पैदा की। अनिवार्य पंच निर्णय एक ऐसी नई बात थी जिसे ब्रिटिश लोकमत ने सहज ही स्वीकार नहीं किया। यद्यपि उत्तर-कालीन ब्रिटिश सरकारें अनुबंधपत्र के प्रति अपनी अटल निष्ठा की घोषणा करती रहीं, तदपि ब्रिटिश साम्राज्य के किसी भी भाग में अनुशास्तियों को कभी भी हार्दिक समर्थन नहीं मिला। यह अवश्य सत्य था कि उपसंधि ने अनुच्छेद १६ में कोई संशोधन नहीं किया था। किन्तु इस तर्क से बचने की तो कोई गुंजाइश ही नहीं थी कि जितने ही अधिक विवादों में परिषद् आक्रमणकारी का निर्णय करेगी उतने ही अधिक विवादों में उसे अनुशास्तियाँ भी लगानी पड़ेंगी।

इन परिस्थितियों में, अधिराज्यों के विरोध और उसके साथ ही अनुबंध-पत्र के अधीन ग्रेट ब्रिटेन के कर्त्तव्यों में किसी भी प्रकार की वृद्धि करने में कामन सभा (House of Commons) की सुपरिचित अनिच्छा के कारण उपसंधि का स्वीकार किया जाना शायद संभव ही नहीं होता, चाहे उस पर हस्ताक्षर करने वाली सरकार सत्तारूढ़ ही क्यों न रहती। किन्तु नवम्बर में, "जिनोविव पत्र" चुनाव के बाद, मेकडॉनल्ड की मजदूरदलीय सरकार के स्थान में बाल्डविन की अनुदारदलीय सरकार सत्तारूढ़ हुई। इस घटना ने उपसंधि के भाग्य का फैसला ही कर दिया। मार्च १९२५ में, नए विदेश मन्त्री ऑस्टिन चेम्बरलेन (Austen Chamberlain) ने राष्ट्रसंघ की परिषद् के

सामने यह विधिवत घोषणा कर दी कि ग्रेट ब्रिटेन ने उपसंधि को स्वीकार नही करने का निश्चय किया है।

लोकार्नो संधि (Treaty of Locarno)

जेनेवा उपसंधि समाप्त हो गई। इस प्रकार फ्रांस का सुरक्षा-प्रयत्न एक बार फिर *व्यर्थ चला गया, और फ्रांस इस बार भी यही सोचता था कि यह* सब कुछ ग्रेट ब्रिटेन के दोष के कारण हुआ। अब केवल यही रास्ता रह गया था कि फ्रांस के राइनभूमि सीमान्त (Rhineland frontier) की ग्रेट ब्रिटेन द्वारा स्पष्ट गारन्टी सबंधी मूल योजना का पुनः आश्रय लिया जाये। किन्तु यह गारन्टी अब एक नए रूप मे दी जानी थी। बड़े आश्चर्य की बात है कि इसका समाधान एक ऐसे प्रस्ताव से प्राप्त हुआ जिसे दो वर्षों पूर्व सबसे पहले जर्मन सरकार ने रखा था।

सन् १६२२ के अन्त में, जर्मन सरकार ने फ्रांसीसी सरकार के सामने यह प्रस्ताव रखा था कि वे परस्पर यह वचन, जिसमें ग्रेट ब्रिटेन और बेल्जियम को *भी सम्मिलित किया जाएगा, दें कि एक पीढी तक वे एक-दूसरे के विरुद्ध युद्ध* का आश्रय नही लेंगे। यह प्रस्ताव अमरीकी सरकार के जरिए किया गया था, जिससे कि इस समझौते के "न्यासी" (trustee) के रूप मे कार्य करने का अनुरोध किया गया था। रूर अधिकार के समय यह योजना फ्रांस (क्योंकि फ्रांस द्वारा ही जर्मनी पर आक्रमण किए जाने की अधिक आशंका थी, न कि जर्मनी द्वारा फ्रांस पर) की अपेक्षा जर्मनी के ही हित में अधिक थी, इसलिए पोंकारे ने उसे रद्दी की टोकरी में पटक दिया। किन्तु फिर भी, जर्मन सरकार आगामी दो वर्षों में इसके लिए लगातार प्रयत्न करती रही परन्तु उसे सफलता नही मिली। उसके बाद जेनेवा उपसंधि के अस्वीकृत हो जाने और इस भावना ने कि *अब जर्मनी के साथ राजनैतिक और आर्थिक समझौता किया जाना आवश्यक है*, इस योजना मे नया आकर्षण उत्पन्न कर दिया। योरोप से सम्बन्धित राजनैतिक प्रश्न में अमरीकी सहयोग की तो अब कल्पना ही नही की जा सकती थी। किन्तु ग्रेट ब्रिटेन, जिसे जर्मनी और फ्रांस के बीच एक मध्यस्थ (mediator) के रूप में, रूर-अधिकार (Ruhr Occupation) के समय उसके स्वतन्त्र रुख के कारण स्पष्ट रूप से स्वीकार कर लिया गया था, इस समय आगे आने एवं कमी की पूर्ति करने को तैयार था। वह अकेला ही (क्योंकि अधिराज्य

इस मामले में उसका साथ नहीं देते) फ्रांसीसी-जर्मन सीमांत पर जर्मन आक्रमण के विरुद्ध गारन्टी (इसी बात की तो फ्रांस हमेशा माँग करता आया था) देने के लिए तैयार था। सतुलन बराबर बनाए रखने की दृष्टि से वह इस बात के लिए भी तैयार था कि फ्रांसीसी आक्रमण के विरुद्ध उपरोक्त सीमान्त सबंधी गारन्टी भी वह दे सकेगा।

तो, सुविख्यात लोकार्नो सधि का आधार उपरोक्त प्रकार का था। सन् १६२५ के पूरे ग्रीष्मकाल मे, कूटनीतिक मार्गों द्वारा वार्ताएँ चलती रहीं और इस योजना का विवरण धीरे धीरे निश्चित होने लगा। जर्मनी और बेल्जियम के सीमांत का भी यही आधार रखा गया और उसके लिए भी वे ही गारंटियाँ दी गई जो कि जर्मनी और फ्रांस के बीच के सीमांत के लिए दी गई थी। यह गारंटी न केवल सीमांतो पर लागू होती थी, अपितु उस असेनीकृत क्षेत्र पर भी, जिसमे सेना रखने या किले बनाने की जर्मनी को मनाही कर दी गई थी। इटली अतिरिक्त गारन्टीदाता (guarantor) के रूप में सामने आया। यह ठहराव किया गया था (stipulated) कि सधि पर हस्ताक्षर हो जाने के बाद, जर्मनी राष्ट्रसघ मे सम्मिलित हो जाए और उसे परिषद् मे स्थायी स्थान (permanent seat) मिले।

इसमें दो मुख्य कठिनाइयाँ थीं। उनमें से पहिली चेकोस्लोवाकिया और पोलैंड से लगे जर्मनी के सीमांत को लेकर उठ खड़ी हुई। जर्मनी यह बात पुन स्वीकार करने के लिए तो तैयार था कि वर्सेलीज सधि द्वारा निश्चित किया गया पश्चिमी सीमांत उसे स्वीकार है किन्तु अन्य वर्सेलीज सीमांतो के लिए वह ऐसा करने को राजी नही था। उसने स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया कि वह अपने पूर्वी सीमान्त को अन्तिम नहीं मानता यद्यपि उसने इस बात से भी इन्कार किया कि बल प्रयोग कर उसे बदलने का उसका कोई विचार नहीं है। केवल इस बात में जर्मनी का रुख ग्रेट ब्रिटेन के रुख से मिलता था जोकि जर्मनी के पश्चिमी सीमांत को छोड़ अन्य किसी भी सीमांत की गारन्टी देने के लिए तैयार नहीं था। इस कठिनाई का यथासभव समाधान जर्मनी और पोलैंड तथा जर्मनी और चेकोस्लोवाकिया में पचनिर्णय सधियाँ (arbitration treaties) तथा फ्रांस और इन दोनों देशो मे गारन्टी सधियाँ, करके निकाला गया।

दूसरी कठिनाई सोवियत सघ से जर्मनी की मित्रता के कारण उत्पन्न हुई

जो कि रेपोलो सधि (देखिए पृष्ठ ५७) के समय से ही चली आ रही थी। जर्मनी को यह भय था कि अनुबधपत्र के अनुच्छेद १६ के अधीन पश्चिमी राष्ट्र सोवियत सघ के विरुद्ध किसी भी दिन सैनिक कार्यवाही कर सकते है तथा इस प्रकार की कार्यवाही मे शामिल होने के लिए उसे भी आमन्त्रित किया जा सकता है। यह भय एक पत्र द्वारा दूर किया गया जिसमें अन्य लोकार्नो राष्ट्रो ने जर्मनी को यह सूचित किया था कि, उनकी व्याख्या (interpretation) के अनुसार, राष्ट्रसघ के किसी भी सदस्य के लिए अनुबधपत्र के समर्थन मे केवल "उसी सीमा तक" सहयोग करना आवश्यक है जिस सीमा तक ऐसा सहयोग "उसकी सैनिक स्थिति से सगत हो और उसकी भौगोलिक स्थिति का भी उसमे ध्यान रखा गया हो," उसका यह अर्थ निकाला गया कि नि शस्त्र हो जाने पर जमनी से यह अपेक्षा नही की जाएगी कि वह सोवियत सघ के विरुद्ध सैनिक अनुशास्तियो मे कोई भाग ले।

अक्टूबर मे, इन सभी राज्यो के मन्त्री स्विट्जरलैड मे झील के किनारे बसे लोकार्नो नामक नगर मे एकत्रित हुए जहाँ १६ अक्टूबर को उन्होने निम्नलिखित करारो के प्रारूप बनाए और उन पर अपने हस्ताक्षर किए —

(१) फ्रास-जमनी तथा बेल्जियम जर्मनी के सीमातो की गारन्टी सबधी सधि ("लोकार्नो सधि" जो कि उसका उचित नाम है)।

(२) एक ओर जर्मनी और दूसरी ओर फ्रास, बेल्जियम, चेकोस्लोवाकिया तथा पोलैड में पचनिर्णय सधियाँ।

(३) एक ओर फ्रास मे तथा दूसरी ओर चेकोस्लोवाकिया तथा पोलैड में पारस्परिक गारन्टी सधियाँ।

इन सभी सधियो पर लदन मे १ दिसम्बर, १९२५ को विधिवत् हस्ताक्षर हुये।

इस प्रकार की गई सधियो मे कुछ महत्वपूर्ण आशय छिपा हुआ था जिसे कोई भी हस्ताक्षरकर्त्ता प्रकट रूप से स्वीकार करने का साहस नही कर सकता था, किन्तु जैसे-जैसे समय बीतता गया, वैसे वैसे वह स्पष्ट होता गया। सबसे पहिले तो, यह मौन रूप से स्वीकार कर लिया गया था कि जर्मनी द्वारा अपना पश्चिमी सीमात स्वेच्छा से स्वीकार कर लिए जाने के कारण, उसमें पहिले की अपेक्षा या उसके अन्य वर्तमान सीमातो की अपेक्षा अधिक पवित्रता आ गई थी।

और उसका यह गर्भितार्थ था कि वर्सेलीज-संधि द्वारा लादे गए दायित्व यदि कानूनी दृष्टि से नहीं तो नैतिक दृष्टि से उतने बंधनकारी नहीं थे जितने कि स्वेच्छा से स्वीकार किए गए दायित्व। दूसरे, ग्रेट ब्रिटेन द्वारा कुछ ही सीमांतों पर गारंटी देने के लिए तैयार होने और अन्य सीमांतों की गारन्टी देने से इन्कार करने का व्यावहारिक परिणाम, सुरक्षा की दृष्टि से, प्रथम और द्वितीय वर्ग में सीमांतों को श्रेणीबद्ध कर देना ही हुआ। यद्यपि ग्रेट ब्रिटेन ने जोर देकर यह कहा कि अनुबंधपत्र के अधीन अपने सभी कर्त्तव्यों को वह निभाएगा, तदपि लोकार्नो संधि से यह धारणा बन गई कि पूर्वी योरोप के सीमांतों की रक्षा के लिए ग्रेट ब्रिटेन सैनिक कार्रवाई नहीं करना चाहता था। अन्ततोगत्वा, लोकार्नो संधि से वर्सेलीज-संधि और अनुबंधपत्र दोनों ही को हानि पहुँची। उससे इस विचार को प्रोत्साहन मिला कि स्वेच्छिक स्वरूप के अन्य करारों द्वारा पुष्टि हुए बिना वर्सेलीज संधि बंधनकारी नहीं है तथा ऐसे सीमांत की प्रतिरक्षा के लिए सैनिक कार्रवाई करने की सरकारों से आशा नहीं की जा सकती जिनमें उनका सीधा हित न हो। दस वर्षों बाद, लगभग सभी सरकारें इन्हीं धारणाओं के अनुसार कार्य करती हुई प्रतीत हुईं।[1]

सन् १६२५ में जब सभी ओर सद्भावना और आशावादिता फैली हुई थी, इन आशयों की उपेक्षा की जा सकती थी। इससे अधिक अत्युक्ति करना कठिन होगा कि लोकार्नो संधि ने योरोप के शांतिकरण में योगदान किया है। युद्ध के बाद पहिली बार, उसने फ्रांस और जर्मनी की आवश्यकताओं के बीच न्यायोचित और निष्पक्ष संतुलन स्थापित किया। जो कार्य डेविस योजना ने प्रारम्भ किया था, वही कार्य इस संधि ने जर्मनी को बड़े राष्ट्रों में पुनः स्थान दिलाकर पूरा किया।

1 "In the long run, the Locarno Treaty was destructive both of the Versailles Treaty and of the Covenant It encouraged both the view that the Versailles Treaty, unless confirmed by other engagements of a voluntary character, lacked binding force, and the view that governments could not be expected to take military action in defence of frontiers in which they themselves were not directly *interested. Ten years later, nearly all governments appea*red to be acting on these assumptions"

यद्यपि जर्मनी को यह स्थान पूर्ण समानता (क्योकि नि.शस्त्रीकरण और असेनी-करण सबधी बदिशें अब भी लगी हुई थी) के आधार पर तो नही, किन्तु पूर्ण और सम्मानित सदस्य के रूप मे मिला था। अपनी सफलता पर क्षमायोग्य गौरव के साथ ऑस्टिन चेम्बरलेन ने इस सधि को, "युद्ध और शाति के वर्षो के बीच वास्तविक विभाजन रेखा" बतलाया था।[1]

---

1 "The real dividing line between the years of war and the years of peace"

५. राष्ट्रसंघ उन्नति के चरम शिखर पर
(The League At Its Zenith)

सन् १६२४ से १६३० तक की अवधि में राष्ट्रसंघ को सर्वाधिक प्रतिष्ठा और अधिकार प्राप्त रहे।[1] सन् १६२४ से पहिले, जेनेवा में राष्ट्रसंघ के सदस्यों का प्रतिनिधित्व सामान्यतः ऐसे प्रतिनिधि करते थे, वे कितने ही विख्यात क्यों न हों, जो कि अपने देश की विदेशी नीति के लिए उत्तरदायी मन्त्री नहीं होते थे। किन्तु मेकडॉनल्ड और हेरियत जब सन् १६२४ में सभा (Assembly) की कार्रवाई में भाग लेने के लिए स्वयं जेनेवा आए, तब उन्होंने एक दूरगामी महत्त्व का पूर्वोदहरण उपस्थित किया। उसके बाद से ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस और (उसकी सदस्यता-अवधि में) जर्मनी के विदेश-मन्त्री सभा के प्रत्येक अधिवेशन की कुछ कार्रवाई में सामान्यतः तथा परिषद् (Council) के लगभग हर अधिवेशन में भाग लेते रहे। योरोप के कई अन्य राष्ट्रों के विदेश-मंत्रियों ने भी इस उदाहरण का शीघ्र ही अनुकरण किया। इस कारण सितम्बर तक यह माना जाने लगा कि जेनेवा योरोप के राजनीतिज्ञों का सम्मिलन-स्थान है। एक वर्ष (१६२६) तो सभा में योरोप के सभी विदेश-मन्त्री सम्मिलित हुये थे। गैर-योरोपीय देशों का प्रतिनिधित्व विवशतापूर्वक ही योरोपीय राजधानियों में स्थित उनके राजदूत अथवा जेनेवा स्थित उनके व्यावसायिक (professional) प्रतिनिधि अधिकांश अवसरों पर करते थे।

राष्ट्रसंघ पूर्ण शक्ति के समय (The League At Full Strength)

लोकार्नो सधियों पर हस्ताक्षर के समय राष्ट्रसंघ-सभा का एक विशेष अधिवेशन मार्च १६२६ में, जबकि उसी समय परिषद् का नियमित अधिवेशन होना था, बुलाया गया था ताकि जर्मनी को राष्ट्रसंघ और परिषद् का स्थायी सदस्य विधिवत् बनाया जा सके। राष्ट्रसंघ के इतिहास में इस अवसर का एक

---

[1] "The years 1924 to 1930 were the period of the League's greatest prestige and authority"

नया मोड माना गया था। इस अवधि तक, राष्ट्रसघ के तटस्थ (neutral) सदस्यों तथा भूतपूर्व अल्प शत्रु-राज्यो, जिन्हे कि शाति के आरम्भिक वर्षों मे राष्ट्रसघ का सदस्य बनाया गया था, का प्रभाव इतना अधिक नहीं बढ पाया था कि इस आरोप का खडन हो सके कि राष्ट्रसघ विजेता राष्ट्रो का ही एक सगठन है जिसके निर्माण का प्रथम उद्देश्य १६१६ के समझौते के निबन्धनो (terms) का समर्थन करना है। राष्ट्रसघ मे जर्मनी को शामिल किया जाना तथा परिषद् में उसे स्थायी स्थान दिया जाना इस आरोप का खडन कर देते तथा उसमे नया जीवन लाकर उसे निष्पक्ष आधार पर प्रतिष्ठित कर देते।

इस महत्त्वपूर्ण अवसर पर एक गभीर न्यायिक भूल के कारण, एक बन्धन ने बनी बनाई बात बिगाड दी। मूल अनुबन्धपत्र के अनुसार, परिषद् के सदस्य इस प्रकार होने थे :—पाँचो विजेता बडे राष्ट्र—ग्रेट ब्रिटेन, फ्रास, इटली, अमेरिका और जापान—स्थायी सदस्यो के रूप मे और सभा द्वारा निर्वाचित अन्य चार अस्थायी सदस्य। परिषद् के स्थायी सदस्यो मे वृद्धि परिषद् के निर्विरोध निर्णय से की जा सकती थी किन्तु सभा के बहुमत द्वारा उसका अनुमोदन किया जाना आवश्यक था। अमेरिका की कर्त्तव्यविमुखता के कारण स्थायी सदस्यो की सख्या चार ही रह गई। सन् १६२२ में, छोटे राष्ट्रो (Lesser Powers) द्वारा जोर दिए जाने के कारण, अस्थायी सदस्यो की संख्या बढा कर छः कर दी गई। मार्च १६२६ में, जिस समय स्थायी सदस्यता के लिए जर्मनी के आवेदनपत्र पर विचार करने के लिए परिषद् का अधिवेशन हुआ तब स्थिति उपरोक्त प्रकार की थी।

परिषद् के स्थायी सदस्यो की सख्या मे आगे जाकर वृद्धि करने सम्बन्धी अनुबन्धपत्र का उपबन्ध स्पष्ट ही इसी उद्देश्य से रखा गया था कि परिषद् से अनुपस्थित बडे राष्ट्रो—जर्मनी और रूस—को उसका लाभ मिल सके। लोकार्नो-सधि-चर्चाओ के समय, एक और राष्ट्र को स्थायी सदस्य बनाने की सभावना पर बिलकुल भी विचार नहीं किया गया था किन्तु जब यह ज्ञात हुआ कि जर्मनी का आवेदन-पत्र विचाराधीन (pending) है; तो पोलैंड, स्पेन, और ब्राजिल सभी ने परिषद् की स्थायी सदस्यता के लिए अपने-अपने दावे प्रस्तुत किए। विशेषकर, पोलैंड की माँग सत्याभ आधार (plausible foundation) से खाली नहीं थी। यद्यपि पोलैंड बडे राष्ट्रो के प्रभाव वृत्त मे नहीं था, तदपि योरोपीय राजनीति में उसका प्रमुख स्थान था। जनसख्या या सपत्ति में वह

इटली से बहुत अधिक हीन नही था। लोकार्नो सधियों से यह स्पष्ट हो चुका था कि मौका आने पर फ्रास पोलेंड के हितों की अपेक्षा अपने हितो को प्राथमिकता दे सकता था। इधर पोलैंड यह अनुभव करता था कि यदि उसे स्थायी सदस्यता मिल जाए, तो उसे हानि में डालते हुए यदि फ्रास और ब्रिटेन जर्मनी से कोई समझौता करना चाहें तो वह उसका प्रतिकार कर सकेगा। इसके विपरीत जर्मनी यह तर्क कर सकता था कि लोकार्नो सौदे के अन्तगत केवल उसे ही स्थायी सदस्यता दिलाने का आश्वासन दिया गया था और यदि इस समय ऐसे किसी राष्ट्र को यह सदस्यता दिलाकर उस स्थान का ही मूल्य घटाया जाना है जिसका सभी महत्वपूर्ण मामलो पर दिया गया मत उसके मत को ही व्यर्थ बना देगा, तो लोकार्नो सौदे पर उसी भावनापूर्वक अटल नही रहा गया है जिस भावना म कि वह किया गया था।

इसमे सदेह नही कि ग्रेट ब्रिटेन का लोकमत और जेनेवा स्थित प्रतिनिधियो मे से अधिकाश यह मानते थे कि जर्मनी के दावे का आधार ठोस है और वे इस बात के विरुद्ध थे कि परिषद् का स्थायी सदस्य और किसी को बनाया जाये। दुर्भाग्यवश, ऑस्टिन चेम्बरलेन ने यह वचन दे दिया था कि वह स्पेन के दावे का समर्थन करेगा, और इसमे उत्साहित हो, फ्रास के नए विदेश मन्त्री-ब्रियाँद न पोलैंड का पक्ष लिया। स्पेन और ब्राजिल (पोलैंड नही था) दोनों ही परिषद् के अस्थायी सदस्य थे और जर्मनी को स्थायी सदस्य बनाने के लिए उनका भी मत प्राप्त होना आवश्यक था। उन्होने अपना मत तब तक देने से इन्कार कर दिया जब तक स्वय उनका दावा स्वीकार न कर लिया जाये। पूरी तरह घापलो मच गई। परिषद् कोई निएय नही कर सकी और सभा कुछ किए बिना ही विसर्जित (dispersed) हो गई। इस प्रकार लोकार्नो सधि के बावजूद भी, जर्मनी राष्ट्रसघ में प्रवेश नही पा सका।

सन् १९२६ के ग्रीष्मकाल में परिषद् की एक समिति ने इस स्थिति को सुलझाने के लिए भरसक प्रयत्न किए। अत. यह समाधान निकाला गया कि अस्थायी सदस्यों की सख्या बढाकर छ से नौ कर दो जाय और सभा का दो तिहाई मत प्राप्त होने पर अस्थायी सदस्यो में से तीन को उनकी त्रिवर्षीय (triennial) अवधि समाप्त होने पर पुन. निर्वाचन योग्य करार दिया जाये। इस प्रकार छोटे और बडे राज्यों के बीच की स्थिति वाले राज्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति के

लिए परिषद् में अर्ध स्थायी (semi-permanent) सदस्यो की एक नई श्रेणी ही कायम की गई। पोलैंड और जर्मनी दोनो ने ही इस समझौते को स्वीकार कर लिया। पोलैंड ने उसे इस आश्वासन पर स्वीकार किया कि उसे नई अर्ध-स्थायी सदस्यता दी जायेगी। स्पेन और ब्राजिल ने उसे अस्वीकार कर दिया किन्तु अपने मतो का उपयोग कर जर्मनी को सदस्य बनने से रोकने की बदनामी से बचने के लिए वे राष्ट्रसघ से ही हट गये। सितम्बर १६२६ की राष्ट्रसघ-सभा के समय उत्साह के वातावरण में, जर्मनी ने राष्ट्रसघ मे सम्मिलित होकर परिषद् की स्थायी सदस्यता प्राप्त की। फिर भी, जर्मन लोगो के दिमाग मे यह खेदपूर्ण भावना बनी ही रही कि जर्मनी जेनेवा में अपने साथ न्याय की आशा नही कर सकता। वैसे उस समय, स्ट्रेसमान का प्रभाव उन्हे सतोष दिलाने के लिए काफी था। किन्तु जमनी में एक ऐसी राष्ट्रसघ विरोधी पार्टी को प्रोत्साहन दिया गया था जो कि इस समय तक शक्तिशाली हो चुकी थी। यह बात महत्त्वपूर्ण है कि अप्रैल १६२६ मे जबकि स्थायी सदस्यता सम्बन्धी विवाद अपनी चरम सीमा पर था, जर्मनी ने सोवियत सघ से एक नई सधि की जिसम दोनो ही पक्षो ने रेपोलो सधि के प्रति अपनी निष्ठा को दोहराया और एक दूसरे को यह वचन दिया कि उनमे से किसी पर भी आक्रमण हुआ तो वे तटस्थ रहेगे।

जमनी के सदस्य बन जाने से राष्ट्रसघ की सदस्य सख्या अधिकतम की सीमा तक पहुँच गई और उसकी सदस्यता पर यहाँ सक्षेप मे विचार किया जा सकता है। उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका के तीन सबसे बडे देश—अमेरिका, अर्जेन्टीना, और ब्राजिल उससे अनुपस्थित थे। मध्य और दक्षिण अमेरिका के छोटे छोटे राज्यो के समूह से उसे आर्थिक लाभ बहुत ही कम होता था (क्योकि उन पर राष्ट्रसघ का चदा हमेशा ही बकाया रह जाता था) और नैतिक समर्थन तो उनसे मिलता ही नही था। सुदूर पूर्व मे, जापान, चीन और स्याम तथा भारत तथा मध्य पूर्व में फारस उसके सदस्य थे। किन्तु टर्की उससे अलग ही रहा। अफ्रीका में, दक्षिण अफ्रीका कुछ सक्रिय प्रतिनिधि राष्ट्रसघ-सभा मे सामान्यत भेजता रहता था। लिबेरिया (Liberia) और अबीसीनिया उसके सदस्य तो थे किन्तु उनकी पात्रता कुछ सदेहास्पद थी। आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड पाँचवे प्रायद्वीप का प्रतिनिधित्व करते थ। किन्तु योरोप ही राष्ट्रसघ का मुख्याधार था, और सन् १६२८ में स्पेन के पुन राष्ट्रसघ का सदस्य बन जाने के बाद, सोवियत

सघ को छोडकर योरोप के और सभी राज्य उसके सदस्य थे। इस समय सोवियत सघ ही एक ऐसा बडा राष्ट्र था जो कि अब भी खुले आम उसका विरोध करता था।

राष्ट्रसघ के प्रति सोवियत सघ का रुख उन पूँजीवादी राज्यों के प्रति उसके रुख की ही प्रतिछाया ही थी जो कि राष्ट्रसघ के सदस्य थे।[1] सन् १६२४ के बाद से, सोवियत सघ और ग्रेट ब्रिटेन के सबध बिगडते गये। सन् १६२६ में, जब सोवियत सघ ने ब्रिटेन की आम हडताल का समर्थन किया, तब तो क्रोध की लहर फैल गई। अगले वर्ष, ब्रिटिश सरकार ने मनमानी करते हुए अरकॉस (Arcos) के अहाते में छापा मारा, जोकि सोवियत सघ की सरकारी व्यापारिक सस्था थी। वहाँ उसे ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध सोवियत षडयत्र को सिद्ध करने वाले दस्तावेज मिले। इस पर ब्रिटेन ने १६२१ के व्यापारिक समझौते को रद्द कर दिया तथा सोवियत सरकार से अपने दौत्य सबध (diplomatic relations) तोड लिये। जो भी हो, इस अवधि में सोवियत सघ के सबध जिस प्रकार के रहे, उनमें यह विवाद एक अपवाद ही था। फ्रास और इटली के साथ उसके सबधो में धीरे-धीरे सुधार हो गया। जर्मनी के राष्ट्रसघ में शामिल हो जाने से जर्मनी के साथ उसके सबध बहुत अधिक नही बिगडे थे। यद्यपि सोवियत प्रवक्ता राष्ट्रसघ की मखौल उडाते रहे, तदपि सन् १६२७ मे सोवियत सरकार ने अमेरिका का उदाहरण अपने सामने रखते हुए, राष्ट्रसघ की आर्थिक, मानवतावादी (humanitarian) और नि शस्त्रीकरण गतिविधियो में सहयोग देना प्रारम्भ किया। इस वर्ष पहिली बार, सोवियत प्रतिनिधि एक सामान्य आर्थिक सम्मेलन (देखिए पृष्ठ ८४) और नि.शस्त्रीकरण सम्मेलन तैयारी आयोग (Preparatory Commission for the Disarmament Conference) (देखिए नौवाँ अध्याय) की बैठको में भाग लेने के लिए जेनेवा आये।

राष्ट्रसघ शातिस्थापक (The League As Peace-maker) के रूप मे

राष्ट्रसघ का प्रमुख कार्य—आगे भी उसका यही कार्य रहता था—विवादो

---

1 "The attitude of the Soviet Government to the League of Nations was a reflection of its attitude to the capitalist states which composed the League"

का शांतिपूर्ण समाधान निकालकर युद्ध को रोकना था किन्तु उसकी सर्वोच्च उन्नति के समय भी सभी राष्ट्र उसके क्षेत्राधिकार मे नही आये थे। सन् १९२६ मे जब निकारागुआ की (Nicaraguan) सरकार ने मेक्सिको, जहाँ की सरकार पर यह आरोप था कि वह निकारागुआ के राजनैतिक शत्रुओ की सहायता कर रही है, के विरुद्ध राष्ट्रसघ से अपील की, तब अमेरिका ने 'अमरीकी और विदेशी जन-धन की रक्षा के लिए" एक जहाजी बेडा शीघ्र ही भेज दिया, और राष्ट्रसघ ने यह सूचना स्वीकार कर ली कि मध्य अमेरिका मे शांति और व्यवस्था बनाए रखने में राष्ट्रसघ को कोई रुचि नही दिखानी चाहिए। ग्रेट ब्रिटेन और मिस्र (जिसे १९२२ में ही स्वतत्र राज्य मान लिया गया था) मे विशिष्ट सबधो के कारण मिस्र राष्ट्रसघ का सदस्य नही बन सका तथा इस कारण ग्रेट ब्रिटेन और मिस्र के मतभेदो को अन्तर्राष्ट्रीय विवाद नही माना जा सका। चीन में विदेशियो को विशेष अधिकार दिए जाने सबधी सधियो पर चीन और बडे राष्ट्रो के विवादो को राष्ट्रसघ के सामने प्रस्तुत किए जाने योग्य नही समझा गया। किन्तु इन अपवादो के होते हुए भी, राष्ट्रसघ का कार्यक्षेत्र दूरगामी था, और इस अवधि में विश्व के कई भागो से विवाद उसके सामने प्रस्तुत किए गये। उदाहरण के तौर पर, तीन ऐसे विवादो का यहाँ वर्णन किया जाएगा जिनमें युद्ध की सभावना थी।

पहला विवाद टर्की के साथ शांति-सधि के कारण उठ खडा हुआ। इस सधि में यह व्यवस्था की गई थी कि यदि ब्रिटिश और तुर्की सरकारो मे समझौता न हो सके तो टर्की तथा संरक्षित राज्य ईराक के बीच के सीमात का निर्धारण राष्ट्रसघ परिषद् द्वारा किया जाये। सन् १९२४ के शरद् में, परिषद् ने, जिसमे कि इस उद्देश्य के लिए, टर्की को भी शामिल किया गया था (यद्यपि अभी वह राष्ट्रसघ का सदस्य नही बना था), सीमान्त रेखा (frontier line) की सिफारिश करने के लिए एक तटस्थ सीमा आयोग नियुक्त किया। विवादग्रस्त क्षेत्र मोसूल (Mosul) का विलायत (vilayet) या जिला था और उसकी मिश्रित आबादी खुर्द, तुर्क और अरब थी तथा विराम सधि के बाद से वह ब्रिटेन के अधिकार मे ही था। जिस समय सीमा आयोग अपने कार्य में व्यस्त था, उस समय टर्की के खुर्दों (Kurds) ने जो कि एक परिश्रमी पहाडी जाति के हैं, तुर्की सरकार के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। विद्रोह का दमन परम्परानुकूल तुर्की क्रूरता से कर

दिया गया। अनेक कुर्द मोसूल क्षेत्र में भाग गए और वर्तमान अस्थायी सीमान्त पर गंभीर मुठभेड़ें हुईं। स्थिति इतनी भयकर प्रतीत होने लगी थी कि राष्ट्रसंघ परिषद् ने १९२५ के प्रारम्भ में ही, एक दूसरा आयोग इन उत्पातों सबंधी प्रतिवेदन देने के लिए भेजा। आयोग का प्रतिवेदन (report) तुर्की प्रशासन-रीति के अत्यधिक प्रतिकूल था और उससे परिषद् को एक ऐसा सीमांत निश्चित करने में सहायता मिल सकती थी जिसमें संरक्षित क्षेत्र में मोसूल के विलायत का लगभग सारा ही क्षेत्र सम्मिलित हो जाता। कार्रवाई की अंतिम स्थिति के समय, टर्की ने परिषद् से अपने प्रतिनिधि को वापस बुला लिया और वह अपने इस पुराने आश्वासन पर आ गया कि वह परिषद् के निर्णय को अंतिम मानेगा। अन्तर्राष्ट्रीय स्थायी न्यायालय ने, उनके पास यह मामला भेजे जाने पर, यह मत प्रकट किया कि लुसाने संधि के अनुसार, परिषद् के निर्णय को बधनकारी बनाने के लिए सबंधित पक्षों के मत आवश्यक नहीं हैं। कुछ हिचकिचाहट के बाद, टर्की ने दुर्योग का भी लाभ उठाया और नए सीमान्त को स्वीकार कर लिया, जिसकी पुष्टि जून १९२६ में ग्रेट ब्रिटेन, टर्की और ईराक में हुई एक संधि के द्वारा हो गई।

दूसरा विवाद बालकन देशों से संबंधित था। युद्ध के बाद कई वर्षों तक, यूनान और बलगेरिया के सीमान्त पर, छोटे-छोटे हमले और उत्पात होते रहते थे, जो कि मुख्यतः मेसिडोनियन लुटेरों का काम होता था। अक्टूबर १९२५ में, इनमें से एक घटना के परिणामस्वरूप एक यूनानी सीमान्त-चौकी (frontier post) के एक सेनापति और उसके एक सैनिक की मृत्यु हो गई। प्रतिशोधस्वरूप, एक यूनानी सेना ने बलगेरिया के क्षेत्र में कूच कर दिया। बलगेरिया की सरकार ने अनुबन्धपत्र के अनुच्छेद ११ के अधीन राष्ट्रसंघ से अपील की। इस पर परिषद् ने तुरन्त ही पेरिस में अपना अधिवेशन किया और यूनानी सरकार से अनुरोध किया था वह अपनी सेना हटा ले। इसके साथ ही उसने ब्रिटिश, फ्रांसीसी और इटालियन सरकारों से भी यह अनुरोध किया कि वे अपने अधिकारियों को घटनास्थल पर यह देखने के लिए भेजें कि वहाँ क्या-क्या घटनाएँ हो रही हैं ? इन कदमों ने यूनानी सरकार पर रोधक (deterrent) प्रभाव डाला। यूनानी सेना बलगेरिया की भूमि से हट गई और

यूनान को राष्ट्रसघ आयोग द्वारा निश्चित किए गए पैमाने पर बलगेरिया को उसकी भूमि के अतिक्रमण के लिए क्षतिपूर्ति की रकम चुकानी पडी। यूनान ने यह निर्णय मान लिया। किन्तु दो वर्ष पूर्व किए गए न्याय में, जबकि बिलकुल इसी प्रकार की परिस्थितियो में यूनान को इटली के आक्रमण का सामना करना पडा था (देखिए पृष्ठ ५५), और इस न्याय मे किए गए भेद की कुछ कटु आलोचना की गई।

तीसरे विवाद की जड पूर्वोक्त घटनाओ मे ही थी। लिथुआनी सरकार ने, जिसने कि मित्र-राष्ट्र सरकार का यह निर्णय मानने से इन्कार कर दिया था जिसके अनुसार विलना पोलैंड के ही अधिकार मे ही रहने दिया गया था, (देखिए पृष्ठ २८) पोलैंड की सरकार से अपने सबध तोड लिये और दोनो देशो के बीच "युद्धस्थिति" ("state of war") की घोषणा कर दी। इस घोषणा के समय से ही सीमात सडक, रेल या नदी द्वारा यातायात के लिए बद रहा था किन्तु यह अस्वाभाविक स्थिति दोनो ओर से यदा-कदा होने वाली सीमात घटनाओ और उत्तेजनापूर्ण वक्तव्यो से और भी बिगड गई। सन् १६२७ के शरद में, लिथुआनिया के जिद्दी तानाशाहा वोलडेमेरास (Voldemaras) ने विलना से कुछ लिथुआनियो को निकाल देने के अवसर का लाभ, अनुबधपत्र के अनुच्छेद ११ के अधीन सारा मामला राष्ट्रसघ में भेजने मे, उठाया। दिसम्बर १० को परिषद् की एक महत्त्वपूर्ण बैठक हुई जिसमे लिथुआनिया और पोलैंड (केवल इसी समय ही पिलसुदस्की जेनेवा आया था) के तानाशाह भी एक दूसरे के सामने उपस्थित हुए। इस उपस्थिति से जो सम्मत (agreed) प्रस्ताव स्वीकृत हुआ उसकी सबसे प्रमुख विशेषता यह घोषणा था कि "राष्ट्रसघ के दो सदस्यो के बीच युद्धस्थिति अनुबन्धपत्र के शब्दो और भावना से असगत (incompatible with the spirit and letter) है।" फलस्वरूप लिथुआनिया ने पोलैंड के साथ युद्धस्थिति समाप्त कर दी। प्रस्ताव का शेष भाग अधिक आशाजनक नही था। विलना सम्बन्धी "मतभेद" पर उसका कोई प्रभाव नही पडा था। यह सिफारिश कि अन्य प्रश्नों के लिए दोनो सरकारें "स्वय ही सीधी वार्ताएँ चलाये" अमल में नही लाई गई और न ही कूटनीतिक या व्यापारिक सम्बन्ध पुनः स्थापित किए गये। जो भी हो, लबे समय से चले आ रहे लिथुआनिया पोलैंड के इस विवाद के जेनेवा में प्रकाश में आजाने से, यदि दोनो देशो में पुनः मित्रता

स्थापित नही हो सकी, तो तनाव तो कम से कम स्थायी रूप से कम हो ही गया। और राष्ट्रसघ के लिए तो यह एक महत्त्वपूर्ण सफलता थी।

राष्ट्रसघ द्वारा इन तीन विवादो का जो समाधान निकाला गया उस पर कुछ सामान्य चर्चा करने की इच्छा होती है। मोसूल और पोलैंड लिथुआनिया दोनो ही विवाद बहुत असमान (unequal) शक्ति के राज्यो के विवाद थे। दोनो ही मामले ऐसे थे कि उनमे अधिक शक्तिशाली राज्य के पास न केवल विवादग्रस्त क्षेत्र ही था, अपितु किसी तरह, उस पर विधिवत् अधिकार भी उसी का था। इन दोनो ही मामलो में, राष्ट्रसघ ने कमजोर राज्य को आत्माभिमान (*amour-propre*) खोए बिना ही असमर्थनीय स्थिति (untenable position) से हट जाने में सहायता पहुँचाई। यूनान-बलगेरिया विवाद कमजोर और बराबरी के ऐसे राज्यो में था, जिनके परिषद् मे प्रभावशाली समर्थक नही थे। इस स्थिति ने राष्ट्रसघ की कार्रवाही को विशेष रूप से सभव बनाया। इससे परिषद् के लिए निष्पक्ष निर्णय लेना और उसे दोनो ही पक्षों से स्वीकृत करा लेना सरल हो गया। इसके बाद युद्ध का खतरा उपस्थित करने वाले अन्य किसी विवाद के समय परिस्थितियो का ऐसा सौभाग्यपूर्ण सामजस्य कभी नही आया; अतः युद्ध रोकने मे राष्ट्रसघ की सफलता का यह घटना चरमबिन्दु ही रही।

राष्ट्रसघ की इन सभी सफलताओ के बारे में सबसे प्रमुख बात यह थी कि ये सफलताएँ समझौते का मार्ग अपनाते हुए प्राप्त की गई थी। अन्तिम दो मामलो मे, अनुबन्धपत्र के चौथे और ग्यारहवें अनुच्छेद की प्रक्रिया अपनाई गई थी। चौथे अनुच्छेद मे उपबन्धित किए अनुसार, दोनो ही पक्ष परिषद् में आमने-सामने बैठे और उन्हे परिषद के सदस्यो को प्राप्त सभी अधिकार प्राप्त थे जिनमे मत देने का अधिकार भी शामिल था। निर्विरोध नियम (unanimity rule) के अनुसार इसका आशय यह था कि स्वयं पक्षो की ही स्वीकृति के बिना कोई भी निर्णय नही लिया जा सकता था। मोसूल विवाद की प्रारभिक अवस्था में, बिलकुल यही प्रक्रिया अपनाई गई थी यद्यपि टर्की राष्ट्रसघ का सदस्य नही था; और यद्यपि इस मामले की अन्तिम अवस्था मे लोकार्नो सधि की शर्तो के आधार पर स्थायी न्यायालय द्वारा दिए कुछ अप्रत्याशित (unexpected) निर्णय ने इस प्रक्रिया को उलट दिया था, निर्णय

को कार्यान्वित (enforce) करने का कभी कोई प्रश्न ही नही उठा। इन सभी मामलो में यह स्पष्ट हो चुका था कि परिषद् केवल अनुरोध रीति (method of persuasion) ही काम मे ला सकती थी। अपनी सर्वाधिक प्रतिष्ठा और शक्ति की इस अवधि में, राष्ट्रसघ का एकमात्र साधन उसका नैतिक अधिकार था, क्योकि अनुच्छेद ११ के अधीन उसे अन्य कोई शक्तियाँ दी ही नही गई थी। अनुच्छेद १५ और १६ मे उपबन्धित की गई निर्णय (judgment) और दण्डशक्ति (penalty) की प्रक्रिया का आश्रय लेने का सन् १६३२ से पहिले कोई प्रयत्न ही नही किया गया।

राष्ट्रसघ की अन्य गतिविधियाँ
(Other Activities of the League)

यद्यपि शाति बनाए रखना ही राष्ट्रसघ का सबसे महत्त्वपूर्ण और स्पष्ट कार्य था, तदपि उसकी नैत्यक गतिविधियो (routine activities) जिनमे से अनेक अन्तर्राष्ट्रीय जीवन का मान्य अग बन गई, की कुछ चर्चा किए बिना १६१६ से बाद के अन्तर्राष्ट्रीय सबधो का कोई भी इतिहास अपूर्ण ही रहेगा।

राष्ट्रसघ की कुछ गतिविधियाँ राजनैतिक थी। सरक्षण-आयोग (Mandates Commission) जिसमे कि ग्यारह उपनिवेश सरकार विशेषज्ञ (experts in colonial government) शामिल थे, की बैठकें वर्ष मे दो बार जेनेवा मे होती थी। इन बैठको मे आयोग सरक्षक राष्ट्रो से प्राप्त उनके प्रशासन-क्षेत्रो सबधी वार्षिक प्रतिवेदनो पर विचार करता था, तथा अपनी आलोचना और सिफारिशो के साथ उन्हे परिषद् के सम्मुख प्रस्तुत करता था। परिषद् उन पर विचार करती थी और आवश्यकता होने पर उनके सबध मे अपनी सिफारिश करती थी। इस प्रयोजन के लिए सरक्षक राष्ट्र (चाहे वह परिषद् का नियमित सदस्य हो अथवा न हो) को परिषद् में बुलाया जाता था। अल्पसख्यको सबधी सधियो (देखिए पृष्ठ ८) को पूरी करने के लिए एक दूसरे ही प्रकार की प्रक्रिया अपनाई गई थी। अल्पसख्यको की ओर से प्रार्थनापत्र (petitions) तथा जिस सरकार के विरुद्ध शिकायत की गई हो उसका उत्तर परिषद् के तीन सदस्यो की एक समिति को प्रस्तुत किए जाते थे। समिति सबधित सरकार से इन मामलो की चर्चा करती थी (न कि अल्पसख्यको से जिन्हे कि सुनवाई का अधिकार नही था) और सामान्यत. उसका निबटारा,

या तो सम्बन्धित सरकार को दोषमुक्तकर (exonerating) या उससे यह वचन प्राप्त करके कि शिकायत दूर कर दी जायगी, करती थी। यदि समिति सतोषजनक आश्वासन प्राप्त नही कर पाती तो मामला परिषद् में भेज दिया जाता था जिसमें कि प्रतिवादी (defendant) सरकार को भी, नियमानुसार प्रतिनिधित्व दिया जाता था। इस प्रकार सरक्षण और अल्पसख्यक दोनो ही से सम्बन्धित प्रक्रियाएं अनुबन्धपत्र के अनुच्छेद ११ के सिद्धान्त पर आधारित थी अर्थात् निर्णय अनुरोध रीति के आधार पर और सम्बन्धित सरकार की स्वीकृति से किये जाते थे।

राष्ट्र सघ को समय समय पर अन्य राजनैतिक कार्य भी करने पडते थे। सार (Saar) क्षेत्र पर उसने अपने शासी आयोग (Governing Commission) के जरिये सन् १९२० से १९३५ तक सफलतापूर्वक प्रशासन किया और १९३५ में वहाँ जनमत लिया। अन्य कोई भी क्षेत्र राष्ट्रसघ के सीधे प्रशासन मे नही रखा गया। किन्तु राष्ट्रसघ ने स्वतन्त्र नगर डानजिग के सविधान की गारन्टी दी थी और वहाँ उसका एक उच्च आयुक्त (High Commissioner) रहता था, जिसका काम इस स्वतत्र नगर और पोलैंड के विवादों मे पचनिर्णय करना था। उच्च आयुक्त के निर्णयो के विरुद्ध परिषद् मे अपील करने का अधिकार दोनो ही पक्षो को था। सन् १९२४ से पहिले, जबकि जर्मनी और पोलेंड के बीच समझौते ने स्थिति बदल दी (देखिए अध्याय १० का "पोलैंड और सोवियत सघ" भाग), पोलेंड और डानजिग के बीच जितने विवाद परिषद् के समक्ष आते थे, उतनी और कोई समस्या नही आती थी। इन विवादों को निबटाने मे राष्ट्रसघ-सगठन ने अत्यधिक कार्यकुशलता प्राप्त कर ली थी।

आर्थिक क्षेत्र मे, अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के लिये राष्ट्रसघ ने एक नया और विशाल सगठन तैयार कर लिया था। विभिन्न देशों के विशेषज्ञो की वित्त और अर्थ (financial and economic) समितियो की बैठकें प्रति वर्ष जेनेवा में होती थीं और राष्ट्रसघ सचिवालय (secretariat) के वित्तीय और आर्थिक भागो के कार्य का संचालन करती थी। वित्तीय समिति विभिन्न राष्ट्रसघ ऋणो को जारी करने और उनकी देखरेख के लिये उत्तरदायी थी। सन् १९२० मे ब्रुसेल्स में एक सामान्य वित्तीय सम्मेलन हुआ था जिसका उद्देश्य युद्धोत्तर आर्थिक पुनर्निर्माण पर विचार करना था। इसी प्रकार आयात निर्यात कर

(tariffs) और अन्य व्यापारिक बाधाओं को दूर करने के प्रश्न पर विचार करने के लिये जेनेवा में सन् १९२७ मे एक अर्थ-सम्मेलन भी हुआ था।

राष्ट्रसघ का सामाजिक और मानवतावादी कार्य किसी सीमा तक उसकी विस्तृत अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियों में साम्युक्त (co-ordination) था जोकि युद्ध से पूर्व ही प्रारम्भ हो चुका था और कुछ प्रश्नों तक नए सिरे से भी प्रारम्भ हुआ था। इन सभी गतिविधियों मे सबसे पुरानी गतिविधि दासता के विरुद्ध अभियान थी। सन् १९२५ में जेनेवा मे एक दासता समझौता (Slavery Convention) हुआ था। सन् १९३२ में राष्ट्रसघ ने एक स्थायी दासता-आयोग (Permanent Slavery Commission) स्थापित करने का निश्चय किया। राष्ट्रसघ के अन्य सगठनो के जिम्मे भयकर औषधियों का व्यापार, स्त्री-व्यापार (traffic in women), शिशु सरक्षण, शरणार्थियों को राहत और उन्हे बसाना, तथा स्वास्थ्य एव बीमारियों को, उनके अन्तर्राष्ट्रीय पहलू को दृष्टि में रखते हुए, उनका निबटारा करना था।

अन्त में, दो ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय सगठन भी थे, जो यद्यपि राष्ट्रसघ के आय-व्ययक (budget) में शामिल थे तदपि प्रशासनिक तौर पर उससे स्वतन्त्र थे। ये थे—अन्तर्राष्ट्रीय श्रमसघ (International Labour Orgnisation) सघ और *अन्तर्राष्ट्रीय स्थायी न्यायालय* (Permanent Court of International Justice)।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सघ, जिसका कार्यालय जेनेवा मे था, का निर्माण शाति संधियों के परिणामस्वरूप इस उद्देश्य से हुआ था कि अन्तर्राष्ट्रीय समझौते द्वारा श्रमिकों की स्थिति में सुधार किया जा सके। उसका विधान राष्ट्रसघ के विधान जैसा बनाया गया था। उसके वार्षिक सम्मेलन (Annual Conference), प्रबन्धकारिणी (Governing Body) और कार्यालय (Office) क्रमश राष्ट्र-सघ की सभा, परिषद् और सचिवालय के समान थे। इस अवधि में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सघ में राष्ट्रसघ के सभी सदस्य तथा अमेरिका, जापान और ब्राजिल शामिल थे। उसके वार्षिक सम्मेलन में हर राष्ट्र के चार प्रतिनिधि सम्मिलित होते थे जिनमें से दो सरकार द्वारा एक मालिकों के सगठनों द्वारा और एक श्रमिकों के सगठनों द्वारा नियुक्त किये जाते थे। श्रमिकों की स्थिति के विभिन्न पहलुओं मे सम्बन्धित अनेक अतर्राष्ट्रीय समझौते किये गये थे किंतु उनमे से सभी का अनुसमर्थन नहीं किया गया।

अंतर्राष्ट्रीय स्थायी न्यायालय की स्थापना राष्ट्रसंघ द्वारा अनुबन्धपत्र के अनुच्छेद १४ के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप के ऐसे किसी भी विवाद को निबटाने के उद्देश्य से की गई थी जोकि "सम्बन्धित पक्ष उसके सम्मुख प्रस्तुत करें" तथा परिषद् या सभा द्वारा उसके पास भेजे गये प्रश्नों पर "परामर्शपूर्ण राय" (advisory opinions) देने के लिये की गई थी। उसके पंद्रह न्यायाधीशों की एक क्रमसूची (panel) थी जिनकी नियुक्ति हर नौवें वर्ष परिषद् और सभा द्वारा की जाती थी। *यह न्यायालय हेग में लगता था। न्यायालय* के विधान (statute) में एक तथा-कथित "ऐच्छिक धारा" ("Optional Clause") भी थी जिस पर हस्ताक्षर करने वालों के लिये यह आवश्यक था कि वे उनके और राष्ट्रसंघ के अन्य सदस्यों के बीच वैधिक प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप के विवाद को उसके सामने निर्णय के लिये प्रस्तुत करें। लगभग पचास राज्यों ने, जिनमें बड़े राष्ट्र भी शामिल थे, इस धारा पर हस्ताक्षर किये थे यद्यपि उनमें से कुछ ने कुछ ही बातों के लिये उस पर हस्ताक्षर किये थे। अमरीकी सरकार ने दो बार स्थायी न्यायालय जिसमें कि हमेशा ही अमरीकी न्यायाधीश रहता था, के प्रति दृढ़ रहने का प्रयत्न किया किन्तु हर बार उसका यह प्रस्ताव गिर गया। सन् १९२२ और १९३९ के बीच, इस न्यायालय ने पचास से भी अधिक मामलों में अपने निर्णय और राय दी।

---

६. युद्ध-विरोधी अभियान
(The Compaign Against War)

लोकार्नो सधियो के कारण सुरक्षा-खोज (quest for security) समाप्त नहो हो सकी थी। फ्रास लोकार्नो पर इस सीमा तक विश्वास करने के लिए तैयार नही था कि वह (फ्रास) अपनी योरोपीय गुटबदियाँ समाप्त कर दे या अपना नि शस्त्रीकरण कर दे। उसके कार्यक्रम में सुरक्षा को प्रथम स्थान प्राप्त था। उसके साथियो को इस सुरक्षा की आवश्यकता थी क्योकि लोकार्नो सधि मे उसके लिए कुछ भी व्यवस्था नही की गई थी, और इस आवश्यकता का फ्रास ने निःशस्त्रीकरण के बढते हुए दबाव के विरुद्ध ढाल के रूप मे उपयोग किया था। जेनेवा मे १६२२ मे प्रथम बार फ्रासीसी मत्रिमडल ने जिस चाल से काम लिया था वही चाल अब फ्रासीसी नीति का एक अग बन चुकी थी। जब कभी भी ब्रिटिश (या १६२६ के बाद, जर्मन) प्रतिनिधिमडल राष्ट्रसघ या उसके अङ्गो को नि.शस्त्रीकरण की महत्ता का पुनर्स्मरण कराता था, तब फ्रासीसी, पोलिश और लघु मंत्रीसघ के प्रतिनिधिमडल यह राग जोरो से अलापते कि नि.शस्त्रीकरण से पहिले सुरक्षा आवश्यक है। राष्ट्रसघ के सदस्य दो खेमो मे प्रायः बँट जाते; कुछ का विचार यह होता कि निःशस्त्रीकरण से सुरक्षा बढ जाएगी, और कुछ यह सोचते कि सुरक्षा के पश्चात् ही नि शस्त्रीकरण होना चाहिए। किन्तु कोई भी इस सिद्धान्त मे सशय नही करता कि नि.शस्त्रीकरण और सुरक्षा में निकट अन्योन्याश्रय सबध (close interdependence) है। यह सिद्धान्त, जो कि परस्पर सहायता-सधि (Treaty of Mutual Assistance) और जेनेवा उपसधि का गर्भिताधार (implied basis) था, लोकार्नो-उत्तर काल (post-Locarno period) में राष्ट्रसंघ की कार्रवाही को प्रभावित करता रहा।

सन् १६२६ में गठित किए गए नि.शस्त्रीकरण सम्मेलन-तैयारी आयोग (Preparatory Commission for the Disarmament Conference) के बाद से प्रारम्भ हुई नि.शस्त्रीकरण वार्ताओ का विवेचन किसी

अगले अध्याय में किया जाएगा। किंतु इसके साथ ही साथ सुरक्षा-समस्या को सुलझाने के लिए किए गए राष्ट्रसघ के प्रयत्नो का विवेचन यहाँ करना आवश्यक है। क्योकि विवादो के समाधान और युद्ध को रोकने के लिए एक नया तरीका अपनाने के लिए किए गए ये सैद्धान्तिक प्रयत्न लोकार्नो के बाद के आशावाद-काल (period of optimism) की विशेषता थे और पिछले अध्याय में वर्णित राष्ट्रसघ की व्यावहारिक गतिविधियो के शृ गार थे।

राष्ट्र-सघ समझौते (Conventions)

सन् १६२६ से १६२६ तक की अवधि में युद्ध के विरुद्ध सुरक्षा को सुदृढ बनाने सबधी प्रस्तावो की भरमार रही, सभा के हर अधिवेशन मे कोई न कोई नया प्रस्ताव आता।

सन् १६२६ मे, फिनलैंड के प्रतिनिधि ने एक योजना प्रस्तुत की कि जिन राज्यो पर आक्रमण की सभावना हो, उन्हे राष्ट्रसघ के अन्य सदस्यो से अनुकूल शर्तों (favourable terms) पर आर्थिक सहायता किस प्रकार प्राप्त हो सकती है—स्पष्ट ही है कि यह योजना राष्ट्रसघ ऋणो की सफलता से प्रोत्साहित हो तैयार की गई थी। इस प्रकार की सहायता का वास्तविक अर्थ यह था कि अनुबधपत्र के सोलहवें अनुच्छेद मे विहित किए अनुसार आक्रमणकारी राज्य को आर्थिक सुविधाएं नही दी जाएं। अन्ततोगत्वा, यह प्रस्ताव "आर्थिक सहायता समझौता" ("Convention on Financial Assistance") के रूप में सामने आया जो कि १६३० में सभा द्वारा स्वीकार कर लिया गया। किंतु चूँकि उसका अमल में आना इस शर्त पर आधारित था (निःशस्त्रीकरण और सुरक्षा के अन्योन्याश्रय के सिद्धान्तानुसार) कि उससे पहिले एक निःशस्त्रीकरण समझौता किया जाए, यह समझौता एक योजना मात्र ही रह गया।

सन् १६२७ मे, जब राष्ट्रसघ सभा का अधिवेशन हुआ, तब निःशस्त्रीकरण सम्मेलन तैयारी आयोग को अपने मार्ग की चट्टानो का ज्ञान हो चुका था तथा ग्रीष्मकाल मे जेनेवा मे हुए एक सीमित नौसैनिक सम्मेलन (limited naval conference) की नौका डूब चुकी थी। इस प्रकार की दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं ने राष्ट्रसघ सभा को सुरक्षा-समस्या में फिर ला फँसाया। सन् १६२४ के बाद पहिली बार, यह बात फूसी सुनाई देने लगी कि जेनेवा उपसधि को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न किया जारहा है। नीदरलैंड के प्रतिनिधिमडल ने राष्ट्रसघ-सभा—

से अनुरोध किया कि, "अनुबंधपत्र मे अभिव्यक्त निःशस्त्रीकरण, सुरक्षा और पचनिर्णय के सिद्धान्तो का पुनः अध्ययन किया जाए।" तदनुसार सभा ने तैयारी-आयोग से अनुरोध किया कि वह पचनिर्णय और सुरक्षा के प्रश्न पर विचार के लिए एक समिति नियुक्त कर दे, "जिसका कर्त्तव्य इस बात पर विचार करना हो कि वे कौन से उपाय हो सकते हैं जिनका आश्रय लेकर सभी राज्यों को सुरक्षा की ऐसी गारटियाँ मिल जाए कि वे अतर्राष्ट्रीय निःशस्त्रीकरण सधि में अपने शस्त्रो की यथासभव न्यूनतम सख्या निर्धारित कर सकने मे समर्थ हो सकें।"

सन् १९२७ और १९२८ के राष्ट्रसघ-सभा के अधिवेशनो के अतकाल (interval) में, पचनिर्णय और सुरक्षा समिति ने अदम्य उत्साह से अपना कार्य किया। राष्ट्रसघ-सभा के अधिवेशन के समय, नॉर्वे के प्रतिनिधिमडल द्वारा रखे गए एक सुझाव से उसे प्रेरणा मिली। सन् १९२४ के अनुभव ने यह स्पष्ट कर दिया था कि पचनिर्णय के पथ पर राष्ट्रसघ के सभी सदस्य समान रूप से आगे बढने के लिए तैयार नही हैं। अब यह सुझाव रखा गया था कि जेनेवा उपसधि के समान राष्ट्रसघ के सभी सदस्यो द्वारा स्वीकार करने के लिए समझौता तैयार न कर यदि कुछ ऐसी "आदर्श सधियाँ" ("Model Treaties") तैयार की जा सकें जो कि दो-दो राज्यों या कुछ राज्यो के समूहो द्वारा स्वीकार करली जावें, तो इस दिशा में प्रगति की जा सकती है। इस प्रकार अत्यधिक समुन्नत राज्य अपने सभी विवादो के पचनिर्णय के लिए आपस में समझौते कर सकते थे। अल्प समुन्नत राज्य वैधिक विवादो को पचनिर्णय द्वारा तय कराने के लिए सहमत हो सकते थे। जो राज्य अनिवार्य पच निर्णय को स्वीकार करने के लिए अभी बिलकुल तैयार नही थे, वे समझौते का माग अपनाना या युद्ध का खतरा कम करने के अन्य तरीको को अपनाना सभवत. स्वीकार कर सकते थे। इस समिति ने सन् १९२४ की सभा मे विचारार्थ कम स कम दस ऐसी "आदर्श सधियाँ", तैयार की जो कि आशय-सकोच की विभिन्न मात्राओ से परिपूर्ण थे।

सामग्री की इस प्रचुरता को देख, सभा ने एक ऐसा मार्ग अपनाया जिसमे "आदर्श सधि" (model treaty) और "सामान्य समझौते" की अच्छाइयो का सभवत समावेश किया गया था। उसने तीन सर्वाधिक आशाप्रद प्रारूप लिए और उन्हे अन्तर्राष्ट्रीय विवादो के शातिपूर्ण समाधान के लिए सामान्य

अधिनियम (General Act for the Pacific Settlement of International Disputes) के प्रथम तीन अध्यायों का रूप दे दिया। प्रथम अध्याय में यह व्यवस्था की गई थी कि अधिनियम पर हस्ताक्षर करने वाले हर दो राज्य एक स्थायी समझौता आयोग (Permanent Conciliation Commission) की स्थापना करें जिसका कर्त्तव्य, उनके विवादों के मित्रतापूर्ण, न कि बंधनकारी, समाधान की सिफारिश करना हो। दूसरे अध्याय में यह विदित किया गया था कि सभी वैधिक विवाद अन्तर्राष्ट्रीय स्थायी न्यायालय में प्रस्तुत किए जाएँ और उसका निर्णय बंधनकारी हो। तीसरे अध्याय में भी इसी प्रकार यह निश्चित किया गया था कि अवैध (Illegal) विवाद एक पंच-समिति (committee of arbitrators) के सामने प्रस्तुत किए जाएँगे जिसके अध्यक्ष का चुनाव, यदि समझौता न हो सके तो, अन्तर्राष्ट्रीय स्थायी न्यायालय द्वारा किया जाएगा। चौथे अध्याय में यह उपबंधित किया गया था कि राष्ट्रसंघ के सदस्य एक या एक से अधिक अध्यायों को स्वीकार कर सकते हैं और यदि वे चाहें तो, विशिष्ट प्रकार के विवादों को इस अधिनियम के अधीन निबटाए जाने से मुक्त रख सकते हैं।

यह व्यवस्था सभी लोगों को अच्छी लगने योग्य प्रतीत हुई। किन्तु अधिनियम को अधिक सफलता नहीं मिली। यह अनुभव किया गया कि पहले अध्याय का अधिक महत्त्व नहीं है। समझौता आयोगों की व्यवस्था अमेरिका और अन्य देशों के बीच युद्ध से पूर्व हुई संधियों में तथा जर्मनी और उसके पड़ोसी राष्ट्रों में हुई लोकार्नो संधियों में की जा चुकी थी। किन्तु उनका कभी कोई उपयोग नहीं किया गया था। अध्याय दो का समावेश स्थायी न्यायालय के विधान की ऐच्छिक धारा को स्वीकार कर लेने में हो ही चुका था। अध्याय तीन में जेनेवा उपसंधि के एक प्रमुख रोड़े को पुनः ला खड़ा किया था किन्तु इस बार केवल यही आश्चर्यजनक था कि इस अध्याय ने राष्ट्रसंघ परिषद् को बिलकुल ही ताक में रख दिया था। यहाँ तक कि उसे पंच समिति नियुक्त करने का भी अधिकार नहीं दिया गया था (जेनेवा उपसंधि तक में उसे यह अधिकार दिया गया था)। सन् १६२८ की राष्ट्रसंघ-सभा द्वारा इस सामान्य-अधिनियम का अनुमोदन किए जाने के दो वर्षों के भीतर केवल बेल्जियम, नार्वे, डेनमार्क और फिनलैंड ने ही इस अधिनियम को आमूल स्वीकार किया था जबकि हॉलैंड और स्वीडन ने उसके प्रथम दो अध्यायों को ही स्वीकार किया था।

पेरिस समझौता (Pact of Paris)

इसी बीच, एक दूसरे ही क्षेत्र से इस दिशा मे नया प्रयत्न प्रारम्भ हुआ। सन् १९२८ में, राष्ट्रसघ-सभा के अधिवेशन से कुछ दिनो पूर्व ही, पेरिस मे एक प्रभावकारी और महत्त्वपूर्ण विधि सपन्न हुई— यह विधि युद्ध को त्याग देने सबधी समझौते पर हस्ताक्षर से सबधित थी जिसे कि साधारणतः पेरिस समझौता या ब्रायण्ड कीलग समझौता (Briand-Kellogg Pact) कहा जाता है। यह कुछ अन्यायपूर्ण बात ही है कि इस घटना का जनता द्वारा जितना स्वागत किया गया, उसका लेशमात्र भी राष्ट्रसघ का नही किया गया। क्योकि १९२७ की राष्ट्रसघ की सभा जिसने कि युद्ध को रोकने के प्रश्न पर इतना विचार किया था, के अधिवेशन मे पोलैंड के प्रतिनिधिमडल ने यह पवित्र घोषणा करने का प्रस्ताव रखा था कि "अकारण आक्रमण के सभी युद्ध निषिद्ध हैं और सदैव निषिद्ध रहगे"[1] और इस घोषणा को निर्विरोध स्वीकार लिया गया था। जो भी हो, ऐतिहासिक दृष्टि से, पेरिस समझौते का इतिहास ही भिन्न था। अप्रैल १९२७ मे, कुछ प्रभावशाली अमरीकियो की एक सस्था से प्रेरणा पाकर, ब्रायण्ड ने अमरीकी सरकार के सामने यह प्रस्ताव रखा था कि फ्रास और अमेरिका यह समझौता करें कि युद्ध दोनो देशो के बीच राष्ट्रीय नीति का साधन नहीं रहेगा। चूंकि फ्रास और अमेरिका के बीच ऐसे किसी राष्ट्रीय हित की कल्पना करना कठिन था जो कि उनमे युद्ध करा सके, अतएव इस प्रकार के समझौते का व्यावहारिक महत्त्व कम ही था। किन्तु इससे फ्रास को योरोप मे अमेरिका के विशिष्ट मित्र और सहकारी (associate) के रूप मे कुछ प्रतिष्ठा तो मिल ही सकती थी, और सभवत इसी कारणवश अमरीकी विदेश मन्त्री (Secretary of State) कीलग ने, काफी विलब के बाद, प्रस्ताव का उत्तर एक प्रत्युत्तर-प्रस्ताव (counter proposal) रखकर दिया जिसमे यह सुझाया गया था कि यह समझौता व्यापक रूप में लागू होना चाहिए। आगे चलकर यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। अगस्त २७, १९२८ को छः माने हुए बडे राष्ट्रो (अमेरिका, ग्रेट ब्रिटेन, फास, जर्मनी, इटली और जापान) तीन अन्य "लोकार्नो राष्ट्रो" (बेल्जियम, पोलैंड और चेकोस्लोवाकिया) ब्रिटिश अधिराज्यो और भारत के प्रतिनिधि पेरिस मे इस समझौते पर हस्ताक्षर करने के लिए

1. "All wars of aggression are, and shall always be, prohibited"

एकत्रित हुए। शेष संसार के हर स्वतन्त्र राज्य से इस समझौते में शामिल होने का अनुरोध किया गया था।

"आपसी सम्बन्धों में राष्ट्रीय नीति के साधन" ("as an instrument of national policy") के रूप में युद्ध को त्यागने सम्बन्धी वचन का जो अर्थ हस्ताक्षरकर्त्ताओं ने लगाया था, वह हस्ताक्षर से पहिले उनमें हुए पत्र व्यवहार से स्पष्ट है। समझौते के मूल लेखक तो पहिले ही यह घोषित कर चुके थे कि आत्मरक्षा के लिए युद्ध पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है किन्तु यह घोषणा शान्तिवादी सत्याग्रह सिद्धांत (pacifist doctrine of non-resistance) को अङ्गीकार करना नहीं था। ग्रेट ब्रिटेन ने यह और भी स्पष्ट कर दिया कि उसके मामले में, आत्म रक्षा के अधिकार में, "विश्व के कुछ ऐसे भागों" की रक्षा करने का अधिकार भी शामिल है, "जिनका कल्याण और अखंडता हमारी शांति और सुरक्षा के लिए विशेष तथा महत्त्वपूर्ण हित रखता है।" अमेरिका के लिए, आत्म रक्षा में ऐसी कोई भी कार्रवाही शामिल थी जो कि मुनरो सिद्धान्त का उल्लंघन (infringement of the Monroe Doctrine) रोकने के लिए आवश्यक हो। इन आपत्तियों ने (क्योंकि उन्हें औपचारिक निर्बंध (formal reservations) नहीं माना गया था) इस समझौते के सामान्य स्वरूप की सहायता ही की। कई लोग तो इसे करारिक उत्तरदायित्व (contractual obligation) की अपेक्षा सैद्धान्तिक घोषणा ही अधिक मानते थे। हर राज्य अपने कृत्यों का एकमात्र निर्णायक था। समझौते के निर्वचन या प्रवर्तन के लिए न तो किसी संगठन की स्थापना ही की गई थी और न ऐसा विचार ही था।

यद्यपि पेरिस-समझौता अपूर्ण था, तदपि वह एक पर्याप्त सीमा चिन्ह (land-mark) था। इतिहास में वह पहिला ही राजनैतिक समझौता था जिसका क्षेत्र लगभग सभी देश थे।[1] अर्जेन्टाइना, ब्राजिल, बोलिविया और सेलवेडोर (Salvador) जिन्हें कि मुनरो सिद्धान्त की पुनर्घोषणा से क्षति हुई थी, उससे दूर ही रहे। किन्तु कुछ अमहत्त्वपूर्ण अपवादों को छोड़, शेष अन्य

1 "Imperfect though it was, the Pact of Paris was a considerable land mark It was the first political agreement in history of almost universal scope "

सभी राज्य, शीघ्र ही उसमें शामिल हो गये। प्रारम्भ में कुछ हिचकिचाहट के बाद, सोवियत सघ का उत्साह इतना बढा-चढा था कि सामान्य अनुसमर्थन के पहिले ही उसने पेरिस-समझौते को परस्पर लागू करने के लिए अपने पडौसी देशों से विशेष समझौते सम्पन्न किये। कम से कम पैंसठ—यह सख्या राष्ट्रसघ की सदस्य सख्या स सात अधिक थी—राज्यो ने इस समझौते को स्वीकार कर लिया। यह सचमुच ही सम्भव मालूम पडता है कि कुछ राज्य तो मुँह बचाने की इच्छा से इस समझौते मे शामिल हुए थे, न कि उसकी उपयोगिता मे किसी विश्वास के कारण। जापान और इटली ने शीघ्र ही उसका निदास्पद उल्लघन किया। जापान ने उसे पुलिस कार्रवाही बताया था तो इटली ने उसमे भी आगे बढ उसे आत्म-रक्षात्मक युद्ध कहा। किन्तु इससे इस सत्य का महत्त्व नहीं घट जाता कि तत्कालीन राष्ट्र मिलकर युद्ध पर यह प्रतिबन्ध लगाने के लिए उद्यत थे कि अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के सुलझाने के लिए युद्ध एक सामान्य और वैध (legitimate) मार्ग नहीं है। समझौते के अमरीकी प्रेरणादाताओं द्वारा व्यवहृत "युद्ध की अवैधता (outlawry of war)" पद (*term*) का आशय ही यह था कि यह एक ऐसा सर्वमान्य, अलिखित कानून है जिसके विरुद्ध किया गया युद्ध, अपराध घोषित किया जाना था। इस कानून का उल्लघन करने पर दड देने के लिए या यह घोषित करने के लिए भी कि कानून का उल्लघन किया गया है, कोई अधिकार नही था। किन्तु विश्व के राजनैतिक विचार-जगत में इस सिद्धात ने अपनी जड जमा ली।

पेरिस समझौते का इतना उत्साहपूर्ण स्वागत स्वभवतः राष्ट्रसघ के लिए चुनौती प्रतीत होने लगा। राष्ट्रीय नीति के एक साधन के रूप में युद्ध का आश्रय लेने पर अनुबन्धपत्र में सम्पूर्णरूपेण प्रतिबन्ध नही था। राष्ट्रसघ का सदस्य किन परिस्थितियो मे न्याय्य रूप से युद्ध का आश्रय ले सकता था इसकी अति सक्षिप्त व्यवहार्य सीमाएँ अनुबन्धपत्र के लेखको ने बाँध दी थी। चूँकि राष्ट्रसघ के लगभग हर सदस्य ने यह उत्तरदायित्व स्वीकार कर लिया था वह कभी भी युद्ध (आत्म-रक्षा को छोड) का आश्रय नही लेगा, अत· सामान्य बुद्धि का यह तकाजा प्रतीत होता था कि इस नए उत्तरदायित्व का समावेश अनुबन्ध-पत्र मे कर उसे दृढ बनाया जाए इसीलिये सन् १९२९ की सभा में, ब्रिटिश प्रतिनिधिमडल ने इसी परिणाम की प्राप्ति के लिए जिस समय अनुबन्धपत्र मे

कई सशोधनो का प्रस्ताव रखा तो किसी को भी ग्राश्चर्य नही हुग्रा । ग्रेट ब्रिटेन मे हाल ही में सत्तारूढ हुई मजदूर दलीय सरकार ग्रपनी पुर्वगामी (predecessor) सरकार की नकारात्मक नीति (negative policy) को उलट देना चाहती थी।

जो भी हो, यह प्रक्रिया जितनी सहज दिखाती थी, उससे कम सहज ही साबित हुई। पेरिस-समभौता एक नैतिक घोषणा थी जिसका ग्राधार युद्ध-पाप (sinfulness of war) की सामान्य भावना थी। ग्रनुबन्धपत्र एक राजनैतिक सधि था जिसके प्रमुख उपबधो का ग्राधार वे बातें थीं जिन्हें १६१६ के राजनीतिज्ञ व्यवहार्य ग्रौर इष्टकर (expedient) मानते थे। पेरिस-समभौते के द्वारा सभी प्रकार के युद्धो की निन्दा की गई थी। किन्तु उनमें से किसी के लिए भी दड की उसमें व्यवस्था नही थी। ग्रनुबधपत्र में कुछ युद्धो का ग्राश्रय लेने की ग्रनुमति थी ग्रौर कुछ युद्धो का उसमें निषेध था। किन्तु निषिद्ध युद्धो के लिए दड की व्यवस्था भी उसमे थी। ग्राशय में इतने विभिन्न लेखो (instruments) को एकीकृत करना ग्रौर इस एकीकरण को ग्राकर्षक बनाना ग्रतिमानवीय कार्य ही था।[1] यदि समभौते की धाराग्रो को ग्रनुबन्धपत्र में ज्यों का त्यों शामिल कर दिया जाता तो ऐसा दस्तावेज तैयार हो जाता जिसके एक भाग में युद्ध का पूर्णतया निषेध होता ग्रौर दूसरे भाग मे किन्ही स्थितियो में युद्ध का ग्राश्रय लेने की ग्रनुमति होती—यह निंदास्पद विरोधाभास ही होता। ग्रगर ग्रावयविक एकीकरण (organic fusion) की दिशा मे ग्रौर ग्रागे बढा जाता तो, हमारे सामने एक सशोधित ग्रनुबन्धपत्र ग्राता जिसमें कि सभी

---

१ "The Pact of Paris was a moral declaration, based on a general sense of the sinfulness of war The Covenant was a political treaty, based in its essential provisions on what the statesmen of 1919 deemed practicable and expedient. The Pact condemned all wars, but punished none. The Covenant allowed some wars and prohibited others, but prohibited wars it punished. To fuse together instruments so different in spirit and to make a neat job of the fusion, was a superhuman task."

युद्धो का निषेध होता किन्तु कुछ ही युद्धो के आश्रय पर दन्ड की उसमे व्यवस्था होती—इस प्रकार अनमने भाव से हमे यह स्वीकार करना पडता कि अनुबंध-पत्र के कुछ भागो का उल्लघन अपनी हानि किए बिना ही किया जा सकता था।

ये दोनो ही मार्ग कायरतापूर्ण और राष्ट्रसघ को शोभा नही देने वाले प्रतीत हुए। अतएव यही मार्ग शेष रह गया था कि अनुच्छेद १६ की अनुशास्तियाँ न केवल वर्तमान अनुबंधपत्र द्वारा निषिद्ध युद्धो पर लगाई जाएँ अपितु पेरिस समझौते द्वारा निषिद्ध सभी युद्धो पर भी। इस प्रकार युद्ध को सर्वथा निषिद्ध कर इससे न केवल अनुबन्धपत्र का आधार दृढ हो जाता अपितु पेरिस-समझौते में भी एक नई शक्ति आजाती क्योकि राष्ट्रसघ के सदस्यो द्वारा उसका उल्लघन दडनीय हो जाता। तो, ब्रिटिश प्रतिनिधिमडल ने १६२६ मे इसी प्रकार का प्रस्ताव रखा था और फ्रासीसी प्रतिनिधिमडल ने उसका हार्दिक समर्थन किया था क्योकि फ्रास को उसमे अपनी सुरक्षा के शुभ चिन्ह दिखाई देते थे। इस प्रस्ताव के विरुद्ध सबसे बडी आपत्ति वह थी जो कि जेनेवा *उपसंधि के लिए घातक (fatal) सिद्ध हुई थी अपितु, यदि अनुच्छेद १६ का* विस्तार किया गया, तो अनुशास्तियाँ लागू करने से जिन राष्ट्रो का सम्बन्ध अबसे अधिक आएगा, उनके कर्त्तव्यो में स्वतः ही वृद्धि हो जायगी। किन्तु इस समय ब्रिटिश सरकार, जिसने कि १६२५ में मुख्य रूप से आपत्ति उठाई थी, इस भय से भयभीत नही हुई थी। इस कारण यह प्रतीत होता था कि प्रस्तावित सशोधन आसानी से स्वीकृत हो जाएंगे।

यदि १६२६ मे इन सशोधनो पर मत लिए जाते तो यह वास्तव में सभव है कि उन्हे सभी का अनुमोदन मिल जाता यद्यपि इस कारण से बाद में उनकी जेनेवा उपसधि जैसी दुर्गति होने से शायद ही बच सकती थी किन्तु १६३० की सभा तक उन पर विचार-विमर्श स्थगित कर दिया गया, और इस समय तक सशय की लहर भी फैल चुकी थी। ब्रिटिश और फासीसी प्रतिनिधिमडल तीर-कमान साथ लेकर आए। किन्तु स्केन्डेनेवियन देशो और जापान ने इसका तीव्र विरोध किया। सशोधन इस समय भी काफी बहुमत से स्वीकृत हो सकते थे किंतु इसमे बहुत अधिक सदेह था कि बहुमत द्वारा स्वीकृत सशोधनो का अनुसमर्थन भी किया जाएगा। इसलिए यह दूरदर्शितापूर्ण निश्चय किया गया कि इस प्रश्न को अगली सभा तक के लिए स्थगित कर दिया जाय। सितम्बर १६३१

तक ग्रेट ब्रिटेन आर्थिक सकट के चगुल में फँस चुका था और वहाँ की सरकार भी बदल चुकी थी। आशावाद-काल का अन्त हो गया, और प्रस्तावित सशोधनो का निबटारा बातचीत द्वारा ही कर दिया गया।

ब्रिटिश प्रतिनिधिमडल के नेतृत्व में पेरिस समझौते को अनुबन्धपत्र में शामिल करवाने के लिए किया गया साहसपूर्ण प्रयत्न, राष्ट्रसघ के जरिए वर्द्धित सुरक्षा-खोज की अन्तिम महत्त्वपूर्ण कहानी थी जो (सुरक्षा-खोज) १९२२ में आरम्भ हुई थी तथा, जेनेवा उपसधि की असफलता के बाद, १९२७ में पुनः प्रारम्भ की गई थी। सन् १९३० की सभा के बाद बादल शीघ्र ही घिरते चले आए। सन् १९३१ के ग्रीष्म मे, ब्रिटिश और फ्रासीसी सरकारों द्वारा सामान्य अधिनियम का अनुसमर्थन किया जाना तथा १९३१ की सभा मे युद्ध-निरोधक उपायो मे सुधार-समझौता (Convention to improve the Means of Preventing War) (जो कि पचनिर्णय और सुरक्षा समिति की एक "आदर्श सधि" के रूप मे आरम्भ हुआ था) पर हस्ताक्षर यदा-कदा चमकने वाली विद्युत् के समान घटनाएँ थी जो कि पहिले जैसा उत्साह पैदा नही करती थी। सन् १९३० की राष्ट्रसघ-सभा का अधिवेशन ही एक ऐसा अन्तिम अधिवेशन था जिसमें यह अनुभव किया जा सकता था (कई लोग तो लोकार्नो के समय से ही ऐसा अनुभव करने लगे थे) कि ससार प्रतिवर्ष सुरक्षित होता जारहा है। राष्ट्रसघ धीरे धीरे एक ऐसा सगठन बना लगा जो युद्ध को रोकने में समर्थ सिद्ध होगा।

यग योजना (The Young Plan)

अन्तर्युद्ध इतिहास काल, (inter-war history) जिसे हमने "शांतिकरण अवधि", कहा है, की शांति और आशावाद, जैसा कि हम पहिले देख चुके हैं, मुख्यतः फ्रास और जर्मनी के सम्बन्धों में सहसा सुधार—जो कि डेविस योजना और लोकार्नो सधि के कारण हुआ था—के परिणाम थे। लोकार्नो राजनीतिज्ञों का त्रिगुट (trio)—स्ट्रेसमान, ब्रायण्ड और ऑस्टिन चेम्बरलेन—अपने अपने देशों के विदेशी मामलो का सचालन १९२९ के ग्रीष्म काल तक करता रहा। इन तीनों व्यक्तियों में जो आपसी विश्वास और मित्रता उत्पन्न हो सकी, वह इन वर्षों मे योरोप मे स्थिरता बनाए रखने में एक महत्त्वपूर्ण कारण

थी। और इसका श्रेय राष्ट्रसघ को मिलना चाहिए क्योंकि परिषद् और सभा की नियमित बैठकों में ही इन व्यक्तिगत सबधो का बनना सभव हो सका था। फ्रास और जर्मनी की पुरानी शत्रुता टल गई और नि.शस्त्रीकरण संबंधी चर्चा के अतिरिक्त अन्य अवसरो पर उसका आभास जेनेवा मे मुश्किल से ही मिलता था।

यद्यपि फ्रास-जर्मनी समस्या अस्थायी रूप से दृष्टि से ओझल हो चुकी थी, तदपि वह कभी भी भुलाई नही जा सकी थी। सन् १६२६ की राष्ट्रसघ सभा के अधिवेशन के दौरान मे, जबकि जर्मनी को राष्ट्रसघ मे सम्मिलित किया गया था, ब्रायण्ड और स्ट्रेसमान ने जेनेवा के निकट थॉयरी (Thoiry) नामक ग्राम में लम्बे समय तक निजी चर्चाएँ कीं। उनके बाद प्रकाशित की गई एक विज्ञप्ति में कहा गया था कि दोनो ही मन्त्रियो ने दोनों देशो सबधी सामान्य हित के सभी मामलो पर विचार-विनिमय किया तथा "सामान्य समाधान (general solution) सम्बन्धी उनके दृष्टिकोण एक हो सके है" और अपनी-अपनी सरकारो के सामने यह दृष्टिकोण वे अनुमोदन के लिए रखेंगे। दृष्टिकोणो में किस प्रकार की अस्थायी एकता आगई थी यह सरकारी तौर पर प्रकट नही किया गया था। किन्तु यह स्पष्ट था कि स्ट्रेसमान ने राइनभूमि को तुरन्त खाली कर देने और सार (Saar) जर्मनी को लौटा देने का अनुरोध किया था और उनके बदले मे, उसने क्षतिपूर्ति भुगतान के रूप में सुविधाएँ देने का प्रस्ताव रखा था, तथा ब्रियण्ड व्यक्तिगत रूप से इस प्रस्ताव पर समझौता कर लेने के लिए तैयार था। किंतु फ्रांसीसी सरकार वर्सेलीज की सधि द्वारा राइनभूमि पर मित्र-राष्ट्रों के अधिकार और सार पर राष्ट्रसघ के नियन्त्रण सम्बधी समय-सीमाओ (time-limits) मे इतनी क्रांतिकारी कमी करने के लिए तैयार नही थी। इसके साथ ही स्ट्रेसमान का क्षतिपूर्ति (reparation) के रूप मे नकद भुगतान सम्बधी प्रस्ताव वित्तीय दृष्टि से अव्यवहार्य था। थॉयरी वार्ताओ का कोई परिणाम नही निकला। किंतु इस असफलता के कारण फ्रास और जर्मनी की मित्रता को कोई तत्काल-आघात नही पहुँचा। दिसम्बर में यह समझौता होगया कि जर्मनी मे मित्र-राष्ट्रों का सैनिक नियन्त्रण (military control) समाप्त कर दिया जाये, और ३१ जनवरी १६२७ को अन्तं मित्र राष्ट्रीय आयोग (Inter-Allied Commission) हटा लिया गया।

यॉयरी चर्चाओं के दो प्रमुख विषय—राइनभूमि और क्षतिपूर्ति—अगले दो वर्षों में फ्रांस और जर्मनी के सम्बन्धों को सबसे अधिक प्रभावित करते रहे। वर्सेलीज की संधि ने अधिकृत राइनभूमि को तीन भागों में विभाजित कर दिया था जो सन्धि अमल में आने के बाद क्रमशः पाँच, दस और पन्द्रह वर्षों के बाद खाली किए जाने थे। प्रथम भाग को, १६२५ के अन्त में कई महीनों के विलम्ब के पश्चात् खाली किया जा चुका था। दूसरे और तीसरे भाग १६३० और १६३५ से पहिले खाली नहीं किए जाने वाले थे। किंतु चूंकि अब सम्बन्धों में सुधार हो चुका था, पूरी राइनभूमि को मित्र-राष्ट्रों के अधिकार से तुरन्त मुक्त कराना जर्मनी का प्रमुख उद्देश्य होगया, और इसी कार्यक्रम में एक गह उपविषय (subsidiary point) भी था कि फ्रांसीसी सरकार से यह अनुरोध किया जाए कि वह १६३५ में जनमत लेने की प्रतीक्षा किए बिना ही सार (Saar) जर्मनी को वापस सौंप दे। एक नया क्षतिपूर्ति समझौता कर स्ट्रेसमान ये सुविधाएँ अब भी प्राप्त कर लेने की आशा करता था। डेविस योजना स्पष्ट ही अस्थायी थी। इसमें दोनों ही पक्षों का हित था कि जर्मनी के दायित्वों, जिसका योग अभी भी अनिश्चित था, का अन्तिम निर्धारण हो जाता। और चूंकि इस समय भुगतान नियमित रूप से और सरलतापूर्वक किए जारहे थे, जर्मनी भी यह आशा करता था कि डेविस योजना के कारण उसके राजकोष पर किया गया कष्टकर नियन्त्रण अब हटा लिया जाएगा।

हवा का रुख जर्मनी के पक्ष में था। ग्रेट ब्रिटेन का लोकमत इस बात के लिए आतुर था कि राइनभूमि पर अधिकार समाप्त कर दिया जाये, और फ्रांस में भी यह बात स्वीकार की जा चुकी थी कि राइनभूमि पर अधिकार घाटे का सौदा (wasting asset) रहा था और उसे जो कुछ भी मिले वह ले-देकर जल्दी से जल्दी समाप्त कर दिया जाना चाहिए। सन् १६२८ में राष्ट्रसंघ-सभा के अधिवेशन में जर्मनी और पाँच प्रमुख क्षतिपूर्तिग्रहीता राष्ट्रों (reparation powers) के प्रतिनिधि इस बात पर सहमत होगए कि "राइनभूमि को शीघ्र ही खाली करने" के लिए वार्ताएँ प्रारम्भ की जाये और 'क्षतिपूर्ति समस्या के सम्पूर्ण और निश्चित समाधान" के लिए अर्थ-विशेषज्ञों की एक समिति नियुक्त की जाये। समझौते की शर्तों से यह आभास हो सकता था कि दोनों ही प्रश्नों पर एक साथ विचार किया जाएगा। किंतु फ्रांसीसी सरकार ने प्रारम्भ से ही

यह स्पष्ट कर दिया कि क्षतिपूर्ति-भुगतान हो चुकने के बाद ही राइनभूमि खाली करने का प्रश्न उठ सकता है। इसलिए क्षतिपूर्ति-भुगतान पर ही सबसे पहिले ध्यान दिया गया।

फरवरी १९२९ मे "अर्थ-विशेषज्ञों की समिति" की बैठक पेरिस में हुई। उसमे जेनेवा समझौते में शामिल हर देश के दो विशेषज्ञ और दो अमरीकी विशेषज्ञ (जिनकी नियुक्ति को अमरीकी सरकार ने अपनी कोई जिम्मेदारी नही मानी थी) सम्मिलित थे। वरिष्ठ (senior) अमरीकी विशेषज्ञ ओवेन यंग (Owen Young) को अध्यक्ष चुना गया, और यह समिति उसी के नाम पर "यंग समिति" के रूप में विख्यात हुई। उसका श्रमसाध्य विचार-विमर्श (ardous deliberations) चार माह तक चलता रहा। जून ७, १९२९ को उसने "यंग योजना" स्वीकार की और उसे सम्बन्धित सरकारों के सामने प्रस्तुत की।

यंग समिति द्वारा "क्षतिपूर्ति समस्या का जो पूर्ण और निश्चित समाधान" निकाला गया था, वह इस प्रकार था—क्षतिपूर्ति का भुगतान सेंतीस वार्षिक भुगतानों (annual payments) में किया जाये जिनका औसत १००,०००,००० पौंड हो (जब कि डेविस समिति ने १२५,०००,००० की अधिकतम वार्षिकी निश्चित की थी) तथा उसके बाद बाईस और वार्षिक भुगतान इतनी अल्पराशि के किए जाएँ जितनी कि मित्र राष्ट्रों को अमेरिका का युद्ध कर्ज (war debt) —जो कि १९८८ तक उन्हें चुकाते रहना था—चुकाने के लिए पर्याप्त हो। डेविस योजना द्वारा जर्मनी पर जो विदेशी नियंत्रण लगाया गया था वह हटा लिया गया। चुकाई गई रकमों को हस्तान्तरित कराने की जिम्मेदारी अब लेन-दारों की न रहकर जर्मन सरकार की होगई। विनिमय कठिनाइयों से बचने के लिए भी एक तरीका निकाला गया था। हर वार्षिकी (annuity) का लगभग एक-तिहाई भाग (३३,०००,००० पौंड) "बिना शर्त" ("unconditional") दायित्व माना जाना था। शेष के लिए यह शर्त रखी गई थी कि विनिमय कठि-नाइयाँ उत्पन्न होने पर जर्मनी अधिक से अधिक दो वर्षों तक विनिमय को स्थ-गित कर सकता है। अन्त में, इस योजना में यह सिफारिश की गई थी कि एक अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान बैंक (Bank of International Settlements) की स्थापना की जाए जिसका काम क्षतिपूर्ति भुगतान को प्राप्त करना और उनका

वितरण करना, बिना शर्त वार्षिकियों की प्रतिभूति पर अंतर्राष्ट्रीय ऋण जारी करना तथा सामान्य रूप से, एक अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्रीय बैंक के कृत्य (functions) करना हो।

अब विशेषज्ञों के प्रतिवेदन को सम्बन्धित सरकारों से स्वीकृत कराना और राइनभूमि खाली करने सम्बन्धी विस्तृत बातों को निश्चित करना शेष बचा था। इन प्रयोजनों के लिए हेग में अगस्त १६२६ में एक सम्मेलन का आयोजन किया गया। उसमें ब्रिटेन के प्रमुख प्रतिनिधि मजदूरदलीय नए अर्थमंत्री (Chancellor of the Exchequer) फिलिप स्नोडेन (Phillip Snowden) और मजदूरदलीय नए विदेशमन्त्री आर्थर हेन्डरसन (Arthur Henderson) थे।

यंग योजना बड़ी और अप्रत्याशित कठिनाइयों के बिना स्वीकृत नहीं कराई जा सकी। ये कठिनाइयाँ जर्मनी ने नहीं, अपितु ग्रेट ब्रिटेन ने डाली। पिछले कुछ वर्षों से, अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में फ्रांस की नीति का अनुसरण करने की ओर ब्रिटेन की प्रवृत्ति (जिसके लिए कुछ क्षेत्रों में आस्टिन चेम्बरलेन की आलोचना भी की गई थी) स्पष्ट परिलक्षित हो रही थी। यंग समिति के ब्रिटिश विशेषज्ञ इस परंपरा से अनुचित रूप से प्रभावित हुए प्रतीत हुए। इस योजना को फ्रांस की इच्छानुकूल बनाने के लिए, वे ब्रिटेन को हानि में डालते हुए, इस बात पर सहमत होगए कि १६२० के स्पा (Spa) समझौते द्वारा फ्रांस को बाँटे गए क्षतिपूर्ति-भुगतान प्रतिशत में काफी वृद्धि कर दी जाये। बिना शर्त वार्षिकियों (unconditional annuities) में से तीन-चौथाई से भी अधिक फ्रांस को मिलनी थीं; सशर्त (conditional) वार्षिकियों का विनिमय नहीं होने पर ग्रेट ब्रिटेन के इस त्याग की क्षतिपूर्ति की व्यवस्था तो की गई थी किन्तु वह जटिल और असंतोषजनक थी। स्नोडेन ने फ्रांस की इन विशेष सुविधाओं के प्रति कृपा नहीं दिखाई बल्कि यह माँग की कि स्पा सम्मेलन में निश्चित किया गया प्रतिशत कायम रखा जाये। उसने ग्रेट ब्रिटेन के मामले के प्रति इतना टेढ़ा और जोरदार रुख अपनाया कि वह कुछ फ्रांसीसी राजनीतिज्ञों की आँख का काँटा (*bete noire*) बना रहा तथा ग्रेट ब्रिटेन में वह सर्वाधिक लोकप्रिय व्यक्ति बन गया। उसने अपनी माँगें बहुत कुछ पूरी करा लीं, और सम्मेलन यंग योजना में संशोधन स्वीकार करके ही समाप्त हुआ।

इसी बीच, सम्मेलन के राजनैतिक आयोग मे स्ट्रेसमान, ब्रायण्ड और हेन्डरसन द्वारा राइनभूमि खाली कराने सम्बन्धी चर्चाएं चलाई जारही थी। ग्रेट ब्रिटेन में मजदूरदलीय सरकार होने के कारण राइनभूमि पर अधिकार समाप्त करने की सामान्य इच्छा और भी बढ गई थी; और हेन्डरसन के इस सार्वजनिक वक्तव्य ने कि राइनभूमि से ब्रिटिश सैनिकों को किसी भी स्थिति में हटा लिया जाएगा, इस प्रश्न को वास्तव में हल ही कर डाला। फ्रांसीसी सरकार का यह प्रयत्न कि राइनभूमि खाली करने से पहिले एक समिति नियुक्त की जाये जो इस बात की "जांच" करले कि राइनभूमि के सैनीकरण (militarisation) सबधी स्थायी प्रतिबन्धों का पालन किया गया है अथवा नही, निष्फल गया। सम्मेलन मे यह समझौता होगया कि जून ३०,१९३० (निर्धारित तारीख से लगभग पांच वर्ष पूर्व ही) तक मित्र-राष्ट्रों की सभी सैनिक टुकडियां राइनभूमि से हटा ली जायें। यह तारीख इस मान्यता पर निश्चित की गई थी कि उस समय तक यग योजना अमल में आ चुकेगी।

अब और कोई हिचकिचाहट नही थी। जर्मनी की राज्य बैंक (Reichsbank) के अध्यक्ष (Governor) हजल्मार शाख्ट (Hjalmar Schacht) ने, जो कि यग समिति में वरिष्ठ जर्मन विशेषज्ञ रह चुका था, ससार को यह चेतावनी दी कि उसकी अपेक्षाएं (requirements) जर्मनी की भुगतान-क्षमता (capacity) से परे साबित होंगी। किन्तु इस भविष्यवाणी पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। कुछ शेष मुद्दों का निबटारा करने के लिए तथा हगरी और बलगेरिया को क्षतिपूर्ति की थोडी-बहुत रकम चुकाना शेष थी, उसके बारे मे उपरोक्त प्रकार समझौता करने के लिए जनवरी १९३० में हेग में दूसरा सम्मेलन हुआ। मई १७ को यग योजना अमल में आई। छः सप्ताह बाद, अंतिम मित्र-राष्ट्र सैनिक टुकडी ने जर्मन भूमि छोड दी।

राइनभूमि का खाली किया जाना और क्षतिपूर्ति प्रश्न का "अंतिम" समाधान जो कि अत्यन्त शीघ्र ही मिट्टी मे मिल जाने वाला था, शांतिकरण काल की अन्तिम महत्त्वपूर्ण घटनाएं थी। अगले काल पर विचार करने से पहिले, कुछ ऐसे सीमा-चिन्हो (land-marks) पर विचार करना शेष रह गया है जिन्होंने कि अवधि-अंतरण की सूचना दी। उन राजनीतिज्ञो के त्रिगुट जो कि १९२५ २९ की अवधि की अनेक सफलताओ के लिए जिम्मेदार था, में से ऑस्टिन चेम्बरलेन

सबसे पहिले असत्तारूढ हो गये क्योंकि उन्होंने मई १९२६ में अनुदारदलीय सरकार (Conservative Government) के साथ त्यागपत्र दे दिया। प्रथम हेग सम्मेलन की समाप्ति के पाँच सप्ताहों बाद, तथा उसका कुछ भी परिणाम निकलने से पहिले, अक्टूबर में, स्ट्रेसमान की मृत्यु हो गई। लगभग उसी समय, न्यूयार्क स्टॉक एक्सचेंज मे तहलका (panic) मच गया। यदि यह अनुभव कर लिया गया होता कि क्षतिपूर्ति और मित्र-राष्ट्रों द्वारा कर्ज के भुगतान का सारा प्रश्न ही अमरीकी विनियोजक (investor) और सट्टेबाज की इस इच्छा पर सपूर्ण रूपेण निर्भर करता है कि अटलांटिक पार डॉलर भेजे जाएं, तो योरोप में उसका प्रभाव और भी तात्कालिक होता। कुछ महीनों और दुनिया भूल-भुलैया में पडी रही। जनवरी से अप्रैल १९३० मे, लन्दन में एक सफल नौसैनिक सम्मेलन हो चुका था (देखिए नौवां अध्याय)। उसी वर्ष की ग्रीष्म मे, जबकि अन्तिम फ्रांसीसी सैनिक टुकडी राइनभूमि खाली करने की तैयारी कर रही थी, ब्रायण्ड ने यह घोषणा की कि योरोपीय सयुक्तराज्य (United States of Europe) की स्थापना करने का उपयुक्त अवसर आ चुका है। इस विषय पर एक स्मरण पत्र भी उसने घुमाया जिसे राष्ट्रसघ सभा ने एक समिति के विचारार्थ भेज दिया।

किन्तु यह भ्रम अधिक दिनो तक नही टिका। राष्ट्रसघ-सभा के १९३० के अधिवेशन के समय, जर्मनी की लोकसभा (Reichstag) के चुनावो के परिणाम घोषित किए गये। इन चुनावो मे राष्ट्रीय समाजवादियो या नात्सियो, (National Socialists or Nazis) जो कि अभी तक अमहत्त्वपूर्ण पार्टी थी और जिसका नेतृत्व एडॉल्फ हिटलर नामक आकर्षक भाषणकर्त्ता के हाथो में था, को एक सौ स्थान (seats) मिलने पर लगभग सभी को आश्चर्य हुआ। निःशस्त्रीकरण सम्मेलन-तैयारी आयोग ने दिसम्बर में एक सन्धि का प्रारूप उपस्थित किया जिसकी लगभग हर धारा बहुत अधिक और कटु असहमति (disagreement) का विषय थी। सन् १९३१ तक, तूफान सारे योरोप में बुरी तरह फैल गया था ; और अन्तर्राष्ट्रीय मामलो सम्बन्धी शब्दकोश में "सकट" (crisis) एक सुपरिचित शब्द हो गया था।

तृतीय भाग

संकट काल (The Period of Crisis)

शक्ति-कूटनीति का पुनः आरम्भ

(The Return of Power Politics)

(१९३०—१९३३)

७. अर्थव्यवस्था-भंग

(The Economic Breakdown)

जो आर्थिक संकट १९३१ में अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था, उसके कारणों पर अर्थशास्त्रियों में अब भी मतभेद है। इस अध्याय में केवल उसके लक्षणों और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में उसके परिणामों पर ही विचार किया जाएगा। सन् १९२९ के शरद् में अमेरिका द्वारा योरोप को ऋण देना बिलकुल बन्द कर देना इस संकट की प्रथम अंतर्राष्ट्रीय अभिव्यक्ति थी। इसके बाद शीघ्र ही सारे विश्व में क्रय-शक्ति (purchasing power) का ह्रास होता गया जिसका परिणाम कीमतों में व्यापक और ध्वसकारी गिरावट हुआ। योरोप के कर्जदार देशों (debtor countries) को इससे दोहरी चोट लगी। एक तो, अपने कर्ज चुकाने के लिए उन्हें अमेरिका से डॉलर उधार मिलना बंद हो गया और दूसरे, जिन वस्तुओं की बिक्री कर वे अपने कर्ज चुकाने की आशा कर सकते थे उनकी कीमतें भी अब मदी (slump) से पहले के मूल्य की अपेक्षा बहुत ही कम रह गई थी। अब केवल एक ही मार्ग बचा था। सन् १९३० के अधिकाश क्षतिपूर्ति और कर्ज भुगतान स्वर्ण हस्तातरण (transfers of gold) द्वारा किए गए थे। इन हस्तातरणों ने परिस्थिति को और भी बिगाडने में दो प्रकार से सहायता की। एक तो अमेरिका को अत्यधिक मात्रा मे सोना भेजे जाने से सोने का कृत्रिम अभाव उत्पन्न हो गया जिसने [क्योंकि स्वर्ण ही मूल्य-मान (measure of value) है] वस्तुओं की कीमतों में और भी गिरावट ला दी। दूसरे, जिन देशों को स्वर्ण-कोष (gold reserves) का क्षय सहना पड़ता था, उन्हें स्वर्ण का निर्यात निषिद्ध करने के लिए बाध्य होना पडा। सन् १९३१ में अधिकाश योरोपीय राज्यों ने यह कदम उठाया था। इसके अतिरिक्त, अपने उद्योगों और कृषि को ठप्प नहीं होने देने और अनुकूल व्यापार-सतुलन (favourable balance of trade) बनाए रखने के जी-तोड प्रयत्न (desperate effort) में इन देशों को आयात-निर्यात कर, आयात-निर्बन्धनों और परिमाण-निर्धारण (import restrictions and quotas), निर्यात-सहायता (export subsidies) और विनिमय निर्बन्धनों (exchange restrictions)—

कभी कभी तो इनको देख ऐसा मालूम पडता था कि विदेश-व्यापार पर राज्य का पूरा पूरा नियन्त्रण हो गया है—के रूप में हर इष्ट उपाय (expedient) का आश्रय लेना पडा था। सामान्य वाणिज्य का क्रम लगभग बिलकुल टूट गया था। बेकारी के आँकडे हर देश में दिन दूने रात चौगुने बढ गए। आधा योरोप दिवालिया (bankrupt) हो चुका था—और शेष आधे भाग को भी दिवालिए हो जाने का भय था।

जर्मनी मे सकट (The Crisis in Germany)

जर्मनी मे सकट विशेष रूप से तीव्र था। इसके अनेक कारण थे। उस पर सब राज्यो से अधिक कर्ज था और पिछले पाँच वर्षों मे उसने ही सबसे अधिक ऋण लिया था। डेविस योजना—जिसने कि अनिश्चित दायित्वो (undefined liabilities) की आशका जर्मनी के मन से ऐसे समय दूर नही की जिस समय वह अपना कर्ज चुका सकता था—से उसे इस बात की प्रेरणा कम ही मिली थी कि वह मितव्ययिता और सतर्कतापूर्ण वित्तीय नीति पर चले। और सकट की अवधि प्रारम्भ होने के कुछ ही समय पूर्व खुलकर उधार लेने का अवसर जब उसके सामने आया तो वह अपना प्रलोभन रोक नही सका। यह अनुमान लगाया गया था कि डेविस योजना के पाँच वर्षों मे जर्मनी ने क्षतिपूर्ति के आशिक चुकान के रूप में केवल ५००,०००,००० पौड ही चुकाए थे और लगभग ६००,०००,००० पौड विदेशा से ऋण और साख (credits) के रूप मे प्राप्त किए थे। इस प्रकार अतिरिक्त (surplus) धनराशि को उसने, उसकी नगरपालिकाओ और निजी उद्योग (private enterprise) ने नवनिर्माण और पुर्नानमाण की बडी बडी योजनाओ पर व्यय किया था। आय-व्यय को सतुलित करने का कोई गभीर प्रयत्न ही नही किया गया था क्योकि घाटे की पूर्ति अल्पकालीन ऋण (short-term borrowing) लकर सरलतापूर्वक की जा सकती थी। इस प्रकार जर्मनी की अर्थ व्यवस्था, चाहे वह सरकारी हो या गैर सरकारी, उधार लिए गए धन के बल पर ही सदा चलती रही।

इस प्रकार अर्थ सकट को जर्मनी मे विशेष रूप से अनुकूल स्थिति (vulnerable condition) मिल गई। विदेशी ऋणो की सहायता के बिना ही उसे प्रथम वार १००,०००,००० पौंड प्रति वर्ष के क्षतिपूर्ति कर्ज, विदेशो में सरकारी और गैर सरकारी अन्य दायित्व जिनका ऋणभार उक्त रकम से बहुत कम नहीं होता था, तथा ६०,०००,००० पौंड बजट में घाटे का, सामना

करना पडा। जर्मनी के पास अपने ही देश में पूंजी के ऐसे साधन भी नही थे जिनका कि वह आश्रय ले सक। सन् १९२३ की मुद्रास्फीति (inflation) के कारण उसकी बचत और सचय कोष (reserves) समाप्त हो चुका थी तथा उनकी पुन. पूर्ति भी नही हो पाई थी। जर्मन उद्योग सरकार की सहायता कर सकने की स्थिति में नही था। वह भी विदेशो से पर्याप्त साख (credit) पाने की आशा खो चुका था। और इसके साथ ही साथ व्यापक मदी तथा आयात-निर्यात कर एव परिमाण निर्धारण बाधाओ (tariff and quota barriers) के बढ जाने के कारण वह अच्छे विदेशी बाजारो से भी वचित हो चुका था। जर्मन निर्यात, जिनका मूल्य १९२९ में ६३०,०००,००० पौंड तक पहुँच गया था, सन् ३२ मे गिरकर वही २८०,०००,००० पौंड ही रह गया था। इसी प्रकार इस अवधि में जर्मन आयात मे और भी तेजी से कमी—६७०,०००,-००० से २३०,०००,००० पौंड—होगई। सन् १९२९ में जहाँ उसके पजीयित बेकारों की सख्या २,०००,००० थी, वहाँ यही सख्या मार्च १९३२ मे ६,०००,-००० से भी अधिक की शिरोसख्या (peak figure) तक पहुँच गई।

एक ऐसे देश में जहाँ राजनैतिक सतुलत सदा ही विनाशनक स्थिति मे रहा हो, इस प्रकार की आर्थिक उथल पुथल के भयंकर परिणाम होना अवश्य भावी था। मार्च १९३० में जर्मनी में जो सरकारें बनी, उसमे—वीमर गणतत्र के इतिहास में पहिली बार— एक भी सोशल डेमोक्रेट नही था। मध्यमार्गी दल (Centre) का सदस्य ब्रूनिंग (Bruning) प्रधानमन्त्री बना और स्ट्रेसमान के उत्तराधिकारी कर्टियस (Curtius) के पास विदेश विभाग पूर्ववत् ही बना रहा। अगले माह, आयात निर्यात कर में चहुँमुखी वृद्धि की गई और कृषको को राजकीय सहायता (agrarian subsidies) प्रदान की गई। जर्मनी ही पहिला देश था जिसने आर्थिक मदी से त्राण के लिए इन सदेहास्पद (dubious) उपायों का आश्रय लिया। सितम्बर १९३० के आम चुनावो के परिणामस्वरूप, जर्मनी की लोकसभा (Reichstag) में राष्ट्रीय समाजवादी या नात्सी (Nazi)—जिनकी नीति यहूदियो, सोशल डेमोक्रेटों तथा वर्सेलीज सधि की तीव्र भर्त्सना करने की थी—सदस्यो की सख्या १२ से १०७ हो गई। मत्रिमडल में कोई परिवर्तन नही हुआ। किन्तु प्रजातन्त्र अब वस्तुतः असफल हो चुका था, और जर्मनी का शासन कई महीनों तक राष्ट्रपति

की ग्राज्ञप्तियो (decrees)—जो वीमर (Weimar) सविधान के शब्दों के ग्रनुरूप ही था न कि उसकी भावना के—ग्रनुसार ही चलता रहा।

सन् १६३१ के प्रारम्भ में ही, जर्मनी की राजनैतिक स्थिरता को एक नया धक्का लगा। योरोपीय-सघ (European Union) बनाने सम्बन्धी ब्रायएड योजना पर विचार करने के लिये १६३० की राष्ट्रसघ सभा द्वारा नियुक्त समिति ने ग्रपनी प्रथम कार्रवाई बैठक जनवरी १६३१ में की। यह मूल योजना मुख्यत राजनैतिक थी। किन्तु उस समय की प्रथम ग्रावश्यकता ग्राथिक सहयोग ही थी। ग्रतएव समिति ने योरोपीय देशो के बीच व्यापारिक बाधाग्रो (trade barriers) को दूर करने की योजनाग्रो पर विचार करना प्रारम्भ किया। इसका कोई ठोस परिणाम नही निकला। किन्तु इन वार्ताग्रो से एक ग्रप्रत्याशित क्षेत्र में विचार विमश प्रारम्भ होगया। कर्टियस ग्रौर ग्रॉस्ट्रिया क प्रधानमन्त्री (Chancellor) (जो कि समिति की कारवाई में भाग लेने के लिए जेनेवा ग्राया था) के मन मे यह विचार ग्राया कि जर्मनी ग्रौर ग्रॉस्ट्रिया के बीच घनिष्टतापूर्ण ग्राथिक सघ निर्माण (close economic union) से न केवल व्यापार-बाधाएं ही कम होगी, ग्रपितु दोनो दशो की राजनैतिक सघ बनाने की महत्त्वाकाक्षाएं भी पूर्ण हो सकेंगी जिसका सधियो द्वारा निषेध कर दिया गया था। वार्ताएं बिल्कुल गुप्त रूप से चलाई गई, ग्रौर २१ मार्च को विस्मित विश्व को यह ज्ञात हुग्रा कि जमनी ग्रौर ग्रॉस्ट्रिया ने चुगी सघ (customs union) बनाने सबघी सधि पर हस्ताक्षर कर दिये हैं। इस सघ मे सम्मिलित होने के लिये, ग्रन्य पडोसी देशो को भी ग्रामन्त्रित किया जाना था।

प्रादेशिक ग्राथिक समझौतो के सिद्धान्त का समर्थन योरोपीय सघ के समर्थको द्वारा १६३० की राष्ट्रसघ सभा मे पहिले ही किया जा चुका था। किन्तु इस सिद्धान्त का इस प्रकार ग्रमल मे लाया जाना फ्रासीसी सरकार ग्रौर लघुमैत्री सघ के देशो को फूटी ग्रांखो नही सुहाया। यह कुख्यात था ही कि एक बडे ग्रौर एक छोटे राष्ट्र के बीच चुगी सघ का ग्रवश्यभावी परिणाम बडे राष्ट्र द्वारा छोटे राष्ट्र पर राजनैतिक प्रमुत्व जमाना ही था। यदि यह योजना सफल हो जाती, तो ग्रॉस्ट्रिया की स्वतन्त्रता ग्रतीत की एक कहानी ही बन जाती। इसके ग्रतिरिक्त, चेकोस्लोवाकिया जिसके प्रमुख बाजार जर्मनी ग्रौर ग्रॉस्ट्रिया ही थे,

मुश्किल से ही इस सघ के बाहर रह सकता था। डेन्यूब क्षेत्र के अन्य राज्य भी इसमें शामिल हो सकते थे। इस प्रकार डेन्यूब नदी क्षेत्र पर जर्मनी का आर्थिक और अत में राजनैतिक नियन्त्रण हो जाता। फ्रास और उसके साथियो ने किसी भी कीमत पर इस सधि का विरोध करने का निश्चय किया। सधि पर आपत्ति के लिए वैधिक आधार (legal ground) न केवल ऑस्ट्रिया की स्वतन्त्रता के परकीकरण (alienation) सम्बन्धी सधि निषेध (treaty veto) में मिल सकता था, अपितु १६२२ के ऋण पूर्वपत्र (protocol) मे भी प्राप्य थे जिसमे ऑस्ट्रिया ने यह बचन दिया था कि वह अपनी स्वतन्त्रता को सकट में डालने वाला कोई भी आर्थिक समझौता नही करेगा।

ब्रिटिश सरकार का रुख हिचकिचाहटपूर्ण (hesitant) था। मोटे तौर पर, डेन्यूबीय नदी क्षेत्र मे व्यापारिक चुगी बाधाओ के हट जाने से ग्रेट ब्रिटेन को तो हर प्रकार से लाभ ही था। न तो इस योजना से ही और न उसमें अन्य राष्ट्रों को शामिल किए जाने से ही ब्रिटिश हितो पर कोई हानिकर प्रभाव पडता था। किंतु यह सभव प्रतीत होता था कि इस योजना से मध्य योरोप मे युद्ध नहीं तो गभीर राजनैतिक उपद्रव तो अवश्य ही होगे। फिर, सधि-कर्त्तव्य की उपेक्षा भी तो नही की जा सकती। मई में, राष्ट्रसघ-परिषद ने यह निर्विरोध निर्णय किया कि यह प्रश्न अन्तर्राष्ट्रीय स्थायी न्यायालय मे भेजा जाये कि जर्मनी और ऑस्ट्रिया के बीच प्रस्तावित चुगी सघ शाति-सधियो और १६२२ के पूर्वपत्र की शर्तों के विरुद्ध है अथवा नही।

आखिर इस प्रश्न का निबटारा वैधिक निर्णय (legal decision) द्वारा नही हुआ। विधि प्रश्न (point of law) सदेहपूर्ण था और फ्रास इस बात की जोखिम उठाने के लिए तैयार नही था कि सघ के पक्ष मे निर्णय हो जाये। इसलिए ऑस्ट्रिया को ही यह योजना त्याग देने के लिए तैयार कर लेने के प्रयत्न उसने जोर-शोर से करने प्रारम्भ किये। इन प्रयत्नो मे फ्रास को ऑस्ट्रिया के गम्भीर अर्थसंकट से भी सहायता मिली जिसका वर्णन आगे इसी अध्याय मे किया जायगा। ग्रीष्म में फ्रासीसी और ऑस्ट्रियन सरकारो के बीच ठीक-ठीक क्या वार्ताएं चली, इसका केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है। किन्तु ३ सितम्बर को ऑस्ट्रिया के प्रधानमन्त्री ने योरोपीय सघ (European Union) समिति के सामने घोषणा की कि ऑस्ट्रिया ने यह योजना त्याग दी है। समिति के

जर्मन प्रतिनिधि ने भी इस घोषणा के प्रति अपनी सहमति प्रकट की थी। दो दिनों के बाद, स्थायी न्यायालय ने अपना निर्णय दिया। सात के विरुद्ध आठ मतो के बहुमत से, उसने यह निर्णय दिया था कि चुंगी संघ संधियों और पूर्वपत्र के विरुद्ध होगा। इस तथ्य ने, कि बहुमत में फ्रांसीसी, इटालियन, पोलिश और रूमानियन न्यायाधीश शामिल थे तथा अल्पमत मे ब्रिटिश, जर्मन और अमरीकी न्यायाधीश, इस निर्णय को एक राजनैतिक रंग दे दिया और इस कारण एक स्वतन्त्र न्यायाधिकरण (tribunal) के रूप मे इस न्यायालय की प्रतिष्ठा को धक्का लगा।

जर्मनी और ऑस्ट्रिया का चुंगी संघ बनाने के निषेध का तात्कालिक परिणाम योरोप के लिए दुर्भाग्यपूर्ण ही रहा। इस योजना को अस्वीकार कर देने से मध्य योरोप में राजनैतिक अनिश्चितता तथा आर्थिक अव्यवस्था के एक ऐसे लंबे युग का प्रारम्भ हुआ जिससे बचने का कोई उपाय नहीं था। जर्मनी में, उसने वीमर गणतन्त्र का अन्त निकट ला दिया। सन् १६२० और १६३३ के बीच हर जर्मन सरकार की प्रतिष्ठा अन्ततः उसकी विदेश नीति की सफलता अथवा असफलता पर निर्भर करती थी। जब चुंगी संघ योजना असफल हो गई तब स्ट्रेसमान की नीति और सिद्धातो के अन्तिम प्रतिनिधि कर्टियस ने अपमानित हो अवकाश ग्रहण कर लिया, और उसके बाद वर्सेलीज की सन्धि के अपमानों के विरुद्ध नात्सियों ने पूरे जोर शोर से प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया।

सर्वनाश का वर्ष (The Year of Disaster)

सन् १६३० में भी, यह विश्वास किया जा सकता था कि यह संकट यद्यपि कष्टकर है तथापि विश्व के आर्थिक जीवन का एक अस्थायी दौर है, और आर्थिक जीवन में मूलभूत परिवर्तन किए बिना ही उस पर विजय पा ली जायगी। किन्तु १६३०-३१ के शीतकाल ने तो आशावाद की कमर ही तोड दी। विचारशील व्यक्तियों का भी यह मत हो गया कि सभ्यता का पतन निकट है। सन् १६३१ में तो इस विपत्तिग्रस्त विश्व पर चिंताजनक घटनाओं का कुछ ऐसा घटाटोप छाया कि इस वर्ष का इतिहास सर्वनाश की एक लगभग अन्तहीन सूची (uninterrupted catalogue of disaster) ही है।

1. In 1931 critical events rained so thickly on a distracted world that the history of the year is an almost uninterrupted catalogue of disaster.

सन् १९३१ के बसंत तक अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान की भारी भरकम गाडी धीरे धीरे चरमर करती चली जारही थी। किन्तु यह ठीक-ठीक नहीं जाना जा सकता था कि यह गाडी कहां जाकर चूर चूर हो जाएगी। यह स्थान वियना निकला। ध्वस उस समय हुआ जब कि चुगी संघ योजना विवाद पूरे जोर शोर से चल रहा था, यद्यपि इन दानों घटनाओं का सम्बन्ध जोडने के लिए कोई प्रमाण नहीं है। मई म सबसे बडी गैर सरकारी ऑस्ट्रियन बैंक, क्रेडिट-आन्स्टाल्ट (Kredit-Anstalt) दिवालिया हो गई। कहीं व्यापक रूप मे घबराहट (panic) न फैल जाए, इसलिए ऑस्ट्रियन सरकार ने एक आज्ञप्ति (decree) जारी की जिसमें उसने यह गारन्टी दी कि क्रेडिट आन्स्टाल्ट के विदेशी दायित्वों का भुगतान किया जाएगा। बैंक ऑफ इग्लैंड ने ऑस्ट्रिया राज्य बैंक (Austrian State Bank) को ६,०००,००० पौंड, विपत्ति को रोकने के लिए, दिए किन्तु वह रुकी नहीं। चुगी-सघ योजना के कारण बैंक ऑफ फ्रास ने सहायता देने से इन्कार कर दिया।

किन्तु इस समय तक क्रेडिट आन्स्टाल्ट के पतन को विश्वव्यापी दिवालियापन और विश्वासहीनता की केवल शुरुआत माना जाने लगा था। आतक सीमात के इस पार जर्मनी मे भी फैल गया। विदेशी साहूकारों ने शीघ्र ही अपने अल्प-कालीन ऋणों का तकाजा करना प्रारम्भ कर दिया। तीन सप्ताह के भीतर ही, जर्मन राज्य बैंक (Reichs Bank) से ५०,०००,००० पौंड का सोना निकाल लिया गया। चेकोस्लोवाकिया को छोडकर, मध्य और दक्षिण-पूर्व योरोप के छोटे छोटे राज्य अपने विदेशी कर्जों के बकायादार (defaulters) हो गए। इन कर्जों मे वे कर्ज भी शामिल थे जो कि हगरी, यूनान और बलगेरिया ने राष्ट्रसघ की सहायता से प्राप्त किए थे।

दक्षिणी गोलार्ध (Southern Hemisphere) मे ऑस्ट्रेलिया और अर्जेन्टाइना को कृषि वस्तुओं के मूल्य की विनाशकारी गिरावट के कारण १९२९ के अन्त में स्वर्ण भुगतान (gold payments) स्थगित कर देने पडे थे कॉफी (coffee) बाजार मे गिरावट के कारण दिवालिया हो जाने पर, ब्राजिल ने भी अगले वर्ष ऐसा ही किया। ये विपत्तियाँ ग्रेट ब्रिटेन के लिए भीषण प्रहार थी। क्योंकि इन तीनों देशों मे इसके बहुत अधिक आर्थिक हित थे। पिछले कुछ

महीनो मे बैंक ऑफ इंग्लैंड से सोना लगातार बाहर मुख्यतः फ्रास—जो कि इस समय योरोप का सबसे अधिक धनी देश था—जारहा था। सन् १९३१ के ग्रीष्म मे तो इसमें और भी वृद्धि हो गई। यह अनुमान लगाया गया था कि जून तक ससार का ६० प्रतिशत सोना (सोवियत रूस के पास के सोने को छोडकर) या तो अमेरिका पहुँच गया था या फ्रास। अब स्वर्ण के रूप मे भुगतान शीघ्र ही स्थगित हो जाना आवश्यक था।

ऐसा प्रतीत होता था कि सभी बकायादार हो जाएँगे किन्तु इतने ही मे अमरीकी राष्ट्रपति हूवर (Hoover) ने २० जून को विश्व के सामने यह प्रस्ताव रखा कि अमरीकी सरकार विदेशी सरकारो से अपना पैसा वसूल करना एक वर्ष के लिए इस शर्त पर स्थगित कर सकती है कि सभी अन्तर-सरकारी (inter governmental) कर्जो, जिनमे क्षतिपूर्ति कर्ज भी शामिल होगे, की वसूली इसी प्रकार स्थगित की जायगी। आर्थिक सकट के लिए मित्र राष्ट्रो के युद्धकालीन कर्ज (Allied war debts) जिस सीमा तक जिम्मेदार थे, उसकी *यह अप्रत्यक्ष स्वीकृति बडे साहस और राजनीतिकुशलता (statesmanship)* का काम थी। किन्तु यह स्वीकृति बहुत देरी से की गई थी। इस प्रस्ताव का एक स्पष्ट उद्देश्य जर्मनी और, सामान्य रूप से योरोप की क्रय-शक्ति तथा साख अमरीकी ऋणपत्रधारी (bond holder) तथा निर्यातकर्त्ता (exporter) के लाभ के लिए पुन बढा लेना था। किन्तु इन बातो से हूवर के श्रेय में किसी प्रकार की कमी नही होती। मित्र-राष्ट्र सरकारें भी अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक स्थिति की वास्तविकताओ का सामना करने म उतनी ही सुस्त रही थी तथा अपना वास्तविक हित किस मे है इसे समझ भी नही सकी थी।

हूवर के प्रस्ताव से चारो ओर उत्साह फैल गया। उसका नैतिक प्रभाव इतना अधिक हुआ कि कुछ दिनो तक ऐसा प्रतीत होने लगा कि विश्वास पूरी तरह लौट आएगा। किन्तु फ्रास ने एक बार फिर रोडा अटकाया। अन्य किसी भी राष्ट्र की अपेक्षा फ्रास को जितना युद्ध-कर्ज चुकाना था उससे भी अधिक क्षतिपूर्ति की रकम उसे लेनी थी। ग्रेट ब्रिटेन या कम से कम अमेरिका की अपेक्षा तो अवश्य ही, फ्रास यह अधिक चाहता था कि क्षतिपूर्ति भुगतान जारी रहे। उसे इस बात से भी बहुत कम मतलब था कि जर्मनी की वित्तीय और वाणिज्यिक स्थिति पुन. सुधर जाये। योरोप मे केवल फ्रास ने ही हूवर-

प्रस्तावित भुगतान-विलंबकाल पर आपत्ति उठाई। अन्त में जब वह इस बात के लिए तैयार हुआ, तब उसने यह शर्त रखी कि यंग योजना द्वारा निर्धारित बिना शर्त वार्षिकियाँ जर्मनी अन्तर्राष्ट्रीय-भुगतान बैंक (International Bank of Settlements) को यथावत् चुकाये किन्तु वे तुरन्त ही जर्मनी की सरकारी रेलवे कंपनी को दे दी जाएंगी तथा सम्पूर्ण विलंबित वार्षिकियों पर ब्याज लगाया जाये। केवल यही शर्त मनवाने में पन्द्रह दिनों तक घिसघिस चलती रही तथा हूवर के प्रस्ताव से उस समय जो विश्वास उत्पन्न हुआ था, उसके लिए यह देरी घातक सिद्ध हुई। संकट का वातावरण पहिले से अधिक गहरा होता चला गया। सभी संबंधित राष्ट्रों द्वारा हूवर-प्रस्तावित भुगतान विलंबकाल स्वीकार कर लिए जाने के एक सप्ताह बाद, १३ जुलाई को जर्मनी की सबसे बड़ी बैंकों में से एक ने भुगतान करना बन्द कर दिया।

हूवर के उक्त प्रस्ताव से सरकारों के आपसी कर्जों की तात्कालिक व्यवस्था तो होगई थी। किन्तु यह बाधा दूर हो जाने पर भी गैर सरकारी कर्जों का निबटारा शेष रह गया था तथा उन्होंने एक असमाधेय (insoluble) समस्या खड़ी करदी थी। जर्मनी इस समय ऐसी स्थिति में था कि यदि मार्क का विदेशों में और अधिक हस्तान्तरण किया जाता, तो १९२३ की दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति की पुनरावृत्ति हो हो जाती। उसके विदेशी साहूकारों के सामने इस बात के अतिरिक्त और कोई चारा ही नहीं था कि सभी जर्मनी कर्जों का विलंब से चुकाए जाने के प्रस्ताव पर वे सहमत हो जायें। इससे लंदन के व्यापारिक प्रतिष्ठानों को बड़ी अड़चन हुई क्योंकि उनकी बड़ी-बड़ी रकमें जर्मनी में अल्पकालीन कर्जों के रूप में फँसी हुई थीं।

ग्रेट ब्रिटेन स्वयं ही इस समय अर्थ संकट के गर्त में फँसा हुआ था। तेजी (boom period) के प्रारंभ में अप्रैल १९२५ में, ब्रिटिश सरकार ने पौंड को युद्ध-पूर्व की उसकी दर पर स्वर्ण आधार (gold basis) पर पुन: ला दिया किन्तु बाद में अनुभव से यह पता चला कि ब्रिटिश सरकार का यह कदम विचारहीन साहसपूर्ण था। कुछ समय बाद, फ्रांस, इटली और अन्य अनेक योरोपीय देशों ने भी पुनः स्वर्ण-मान का आश्रय लिया किन्तु अपनी मुद्राओं के मूल स्वर्ण-मूल्य में उन्होंने इस बार काफी कमी कर दी थी। इस प्रकार फ्रैंक (Francs) नामक फ्रांसीसी सिक्के जिनका युद्ध-पूर्व मूल्य प्रति पौंड २५ था, अब प्रति पौंड

१२५ होगये थे। इसमें संदेह की गुंजाइश कम ही है कि फ्रांस और अन्य देशों ने बहुत ही कम दर पर अपनी मुद्राओं को स्थिर किया था जो कि अनुचित था किन्तु सम्भवतः किसी योजनापूर्वक नही किया गया था। इस सारी कार्रवाही का उद्देश्य अधिकांश योरोपीय देशो में मजदूरी और अन्य उत्पादन-व्यय ग्रेट ब्रिटेन से काफी कम रखना तथा ब्रिटेन को हानि मे डालते हुए इन देशो के निर्यात-व्यापार को बढाना था। इसके अतिरिक्त, ग्रेट ब्रिटेन को छोड योरोप के हर महत्त्वपूर्ण देश ने बहुत अधिक आयात-निर्यात कर लगाने की नीति का अनुसरण कर आयात को कुचलने का प्रयत्न किया। सन् १९२७ में हुए अर्थ-सम्मेलन मे (देखिए पृष्ठ ६६) आयात-निर्यात कर कम करने और अन्य व्यापारिक बाधाएं दूर करने सम्बन्धी जो सिफारिशें की गई थी, उनकी उपेक्षा की गई, और १९२९ में ब्रिटिश सरकार द्वारा रखे गए "अस्थायी आयात-निर्यात-कर समझौता" ("tariff truce") अर्थात् वर्तमान आयात-निर्यात कर मे वृद्धि नही करने सम्बन्धी एक प्रस्ताव, को बहुत ही कम समर्थन प्राप्त हुआ।

जब तक समृद्धि बनी रही और विश्व व्यापार बढता रहा, तब तक ग्रेट ब्रिटेन कर्ज में पडे बिना ही अपना काम चलाता रहा। किन्तु १९२५-२९ की तेजी में उसने अन्य किसी भी महत्त्वपूर्ण देश की अपेक्षा कम ही कमाया। उसका विपरीत व्यापार-सन्तुलन वर्ष प्रतिवर्ष बढता ही गया। सन् १९३० मे सर्वाधिक निर्यातकर्त्ता राष्ट्र (exporting power) के रूप में जर्मनी प्रथम बार उससे आगे (*लगभग ३०,०००,००० पौंड से*) *निकल गया*। *अमेरिका, जो कि* इस सूची मे तीसरे स्थान पर था, ब्रिटिश साम्राज्य, ब्रिटिश अधिदेशो (कनाडा के अतिरिक्त) और स्केन्डेनेविया को छोडकर अन्य सभी बाजारो में ग्रेट ब्रिटेन से आगे थे। जब संकट आ उपस्थित हुआ तब प्रतिद्वन्द्विता-शक्ति मे यह कमी (decline in competitive power) ग्रेट ब्रिटेन की स्थिरता के लिए घातक सिद्ध हुई। विश्व व्यापार में मन्दी के कारण तो उस देश को (ग्रेट ब्रिटेन को) विशेष रूप से धक्का पहुँचा जिसकी अधिकांश आय का साधन दूसरे लोगों के व्यापार का परिवहन-कार्य कर देना और पूंजी लगाना (transporting and financing) था। भुगतानो का बकाया धीरे-धीरे विपरीत रूप धारण करने लगा। करो से आय मे कमी हो जाने के कारण विश्वास और भी उठ

गया। इस कमी के कारण, जुलाई १६३१ तक, आय-व्यय में १००,०००,००० पौंड का घाटा हो गया। विदेशी साहूकार (debtors) इस स्थिति से भय खाने लगे। जुलाई के अन्त में एक सप्ताह के भीतर ही २१,०००,००० पौंड का सोना ग्रेट ब्रिटेन के बाहर चला गया। बैंक ऑफ फ्रांस से काफी उधार मिल जाने पर ही पौंड से विश्वास उठने-उठने बचा—यह प्रक्रिया पूरे अगस्त भर जारी रही। अगस्त २४ को मजदूरदलीय सरकार ने त्यागपत्र दे दिया और उसका स्थान एक राष्ट्रीय सरकार (National Government) ने लिया जिसने ७०,०००,००० पौंड का आय-व्यय-घाटा खर्च (budget deficit by economies in expenditure) में कमी कर तथा अतिरिक्त कर लगाकर पूरा करने के लिए एक पूरक आय व्ययक (supplementary budget) प्रस्तुत किया। किन्तु वेतन कटौती के प्रश्न को लेकर बेडे (fleet) में थोडा असन्तोष फैल जाने से अविश्वास पुनः डिग गया। सितम्बर २१ को सरकार ने सोने का निर्यात ही निषिद्ध कर दिया। सुपरिचित शब्दो में कहे तो, पौंड "स्वर्ण से मुक्त हो गया" और कुछ ही दिनो के भीतर, स्वर्ण और स्वर्ण-मुद्राओ के रूप में उसका मूल्य लगभग २५ प्रतिशत गिर गया।

एक महत्त्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा के रूप में पौंड की स्थिति इतनी सुदृढ थी कि उसका परस्पर विरोधी और अप्रत्याशित परिणाम (paradoxical and unexpected result) होना आवश्यक था। पौंड के मूल्य मे कमी के कारण ग्रेट ब्रिटेन मे मूल्य तो नही बढे (राष्ट्रीय मुद्रा के मूल्य में कमी का यह स्वाभाविक और सामान्य परिणाम होता है) किन्तु विश्व के मूल्यो में गिरावट आ गई। इसलिए जहाँ एक ओर ग्रेट ब्रिटेन में उसका परिणाम बिलकुल लाभ-दायी था और ह्रासमान निर्यात व्यापार (flagging export trade) को पुनः बढा लेने तथा धीरे-धीरे किन्तु निश्चित रूप से स्थिति सुधार लेने की प्रेरणा मिली थी, वहाँ दूसरी ओर विदेशो से उनका प्रथम प्रभाव पहिले से ही गिरी हुई और अलाभदायी (unremunerative) कीमतो में और भी गिरावट हुआ था। इसके अतिरिक्त, अक्टूबर १६३१ के आम चुनाव, जिनमें राष्ट्रीय सरकार को अत्यधिक बहुमत मिला, ने ग्रेट ब्रिटेन द्वारा अपनी परम्परागत अबाधित व्यापार नीति (traditional free-trade policy) त्यागने, अनेक कृषि-उत्पादनो का परिमाण (quota) निर्धारित करने तथा तैयार माल पर चहुँमुखी

आयात-निर्यात कर (tariff) लगाने की नीति प्रारम्भ करने के लिए मार्ग प्रशस्त किया। सन् १६३२ में, ओटावा सम्मेलन (Ottawa Conference) में ग्रेट ब्रिटेन और ब्रिटिश अधिदेशो ने अधिमानात्मक आयात-निर्यात-कर (preferential tariffs) और आयात-परिणाम (import quota) सम्बन्धी कई समझौते किए जिनके लाभ से विदेशी राज्यो को वचित रखा गया। ब्रिटिश व्यापार के पुनरुत्कर्ष (revival) के लिए ये कदम सम्भवतः अत्यन्त आवश्यक थे।

ग्रेट ब्रिटेन द्वारा स्वर्ण-मान का परित्याग कर दिया जाना, जिसका अनुकरण शीघ्र ही स्केन्डेनेवियन देशो, न्यूजीलैंड और (कुछ समय बाद) दक्षिण अफ्रीका द्वारा किया गया, सकट की चरमसीमा (culminating point) था। सन् १६३१-३२ के शीतकाल को १६१८ क बाद सम्भवतः सबसे दुर्भाग्य पूर्ण काल (darkest period) माना जा सकता है। उसके राजनैतिक तथा आर्थिक पहलू थे। सितम्बर १६ को, जापान ने एक ऐसा सैनिक अभियान प्रारम्भ किया जिसने कि उसे एक वर्ष स भी कम समय में, चीन के उपजाऊ प्रात, मचूरिया का स्वामी बना दिया। फरवरी २, १६३२ को जेनेवा में नि.शस्त्रीकरण सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। तत्कालीन घटनाचक्र से परिचित बहुत ही कम लोग उसकी सफलता के आसारो को अत्यन्त निराशापूर्ण के अतिरिक्त अन्यथा मान सकते थे। मचूरिया मे जापान की कार्रवाही और नि.शस्त्रीकरण सम्मेलन का विवेचन अगले दो अध्यायो मे किया जाएगा। इस अध्ययन के शेष भाग में १६३३ के मध्य तक आर्थिक सकट का और अधिक विस्तार से वर्णन किया जायगा।

क्षतिपूर्ति का अन्त
(The End of Reparation)

योरोप के देश इस समय तक तीन वर्गों में बँट गए थे एक तो वे जो स्वर्ण का मुक्त निर्यात (free export) करते थे तथा स्वर्ण-मान पर सुदृढ थे— फ्रास, इटली, पोलेड, बेल्जियम, हॉलैंड और स्विट्जरलैंड (इन्हे कभी-कभी "स्वर्ण गुट" ("gold bloc") भी कहा जाता था) दूसरे वे जिन्होने स्वर्ण मान का विधिवत् परित्याग कर दिया था—ग्रेट ब्रिटेन, स्वीडन, नार्वे, डेनमार्क, फिनलैंड और इस्तोनिया (जिन्हे कभी कभी 'स्टर्लिङ्ग गुट" कहा जाता था) तथा स्पेन

पुर्तगाल और यूनान। तीसरे वर्ग मे वे देश आते थे जिन्होने स्वर्ण मान का वर्तमान मे परित्याग कर सोने का निर्यात भी निषिद्ध कर दिया था किन्तु जो विदेश-विनिमय सम्बन्धी सभी लेन-देनो पर नियन्त्रण कर अपनी मुद्राओ को कृत्रिम स्वर्ण तुल्यता (artificial gold parity) पर बनाए हुये थे।

अन्तिम और सबसे अधिक सख्या वाले उक्त वर्ग का जर्मनी एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण था। लबे समय से चले आए क्षतिपूर्ति विवाद सम्बन्धी अन्तिम कदम ने लेनदार सरकारो मे झगडे की एक नई जड पैदा कर दी। राज्य बैंक के जरिए, जर्मन सरकार के हाथो मे अब जर्मनी के विदेश-मुद्रा-विनिमय (foreign exchange) का वास्तव मे एकाधिकार ही आ गया था। फ्रास का यह कथन था कि अन्य सभी विदेशी भुगतान से पहिले यग योजना की बिना-शर्त (unconditional) वार्षिकियो का हस्तान्तरण करने के लिए जर्मन सरकार वचनबद्ध है! इस पर ग्रेट ब्रिटेन का उत्तर इस प्रकार था :—प्रथमतः, फ्रास की यह दलील तर्क की दृष्टि से बेतुकी है क्योंकि आवश्यक आयातो का भुगतान करना जर्मनी के लिए सबसे पहिले जरूरी है। द्वितीयतः, जर्मनी की साख को पुनः स्थापित करने के लिए यह अधिक जरूरी है कि जर्मनी अपने व्यापारिक कर्जों (फ्रास की अपेक्षा ब्रिटेन को ही इन कर्जों से अधिक मतलब था) को क्षतिपूर्ति से पहिले चुका दे। प्राथम्य के इस कठिन प्रश्न पर शायद ही कभी समझौता हो पाता किन्तु हूवर-प्रस्तावित भुगतान विलबकाल समाप्त होने से पहिले, जनवरी १९३२ में ब्रूइनिंग ने इस समस्या को यह घोषणा कर हल किया कि जर्मनी क्षतिपूर्ति का भुगतान नही कर सकता है और न ही भविष्य में किसी भी स्थिति में वह ये भुगतान करेगा। यह रुख अपनाने का एक कारण जर्मनी की आन्तरिक राजनीति था। वर्सैलीज सधि के विरुद्ध राष्ट्रीय समाजवादियो का आन्दोलन जोर पकड रहा था और कोई भी सरकार क्षतिपूर्ति प्रश्न पर इससे कम "देशभक्तिपूर्ण" रुख नही अपना सकती थी।

ऐसी स्थिति में, आवश्यकता इस बात की थी कि पहली जुलाई १९३२ को हूवर-प्रस्तावित भुगतान विलबकाल समाप्त होने से पहिले किसी प्रकार का समझौता कर लिया जाये। फ्रासीसी सरकार ने यद्यपि अप्रकट रूप से अवश्यभावी को स्वीकार कर लिया था, तदपि वह अभी सार्वजनिक रूप से यह स्वीकार नही कर सकती थी कि क्षतिपूर्ति की रकम डूब गई। जून तक लुसाने मे एक

सम्मेलन हुआ जिसमे यह समझौता किया गया कि यदि जर्मनी ५ प्रतिशत विमोच्य ऋणपत्रों (redeemable bonds) के रूप में १५०,०००,००० पौंड एक ही बार में चुका दे, तो उसके बदले मे सभी क्षतिपूर्ति दावे रद्द किये जा सकते हैं। सरकारों ने एक पृथक् समझौता कर आपसी युद्ध कर्जों को भी रद्द कर दिया किन्तु यह शर्त रखी कि अमेरिका को उन्हें जो कर्ज चुकाना है उसका सतोषजनक समाधान हो जाने पर ही इस समझौते का अनुसमर्थन किया जावे। किन्तु अब स्थिति ऐसी हो गई थी कि लुसाने समझौते का अनुसमर्थन किया जाना या नही किया जाना (वास्तव मे, वह कभी किया ही नही गया) कोई व्यावहारिक महत्त्व नही रखता था। इस बात की कल्पना नही की जा सकती थी कि कोई जर्मनी से क्षतिपूर्ति की रकम वसूल करने के लिए पुन. प्रयत्न करेगा। इतिहास का एक लबा अध्याय अब सदा क लिए बन्द हो चुका था।

जो भी हो हूवर-प्रस्तावित भुगतान विलबकाल (Hoover moratorium) समाप्त होने पर, मित्र राष्ट्रो के अमरीकी कर्ज का प्रश्न व्यावहारिक रूप मे सामने आ गया। सौभाग्य से, अगली किश्तें १५ दिसम्बर से पहिले देय नही थीं। किन्तु दुर्भाग्य से इसी अवधि के बीच में पडने वाले नवम्बर म, अमरीकी राष्ट्रपति का चुनाव होने वाला था। यद्यपि अमेरिका म भी आर्थिक सकट की चर्चा इससे पूर्व सुनाई देती थी किन्तु सकट की पूरी भयकरता का अनुभव वहाँ योरोप की अपेक्षा देरी स हुआ। सन् १६३२ क शरद से पहिल यह सकट वहाँ अपनी चरम सीमा को मुश्किल से ही पहुँच पाया था। चुनाव अत्यन्त निराशापूर्ण वातावरण में हुआ। अधिकांश मतदाता यह कठिनाई से विश्वास कर पाते थे कि जो कुछ राष्ट्रपति हूवर ने किया था वह सही था। जो भी हो, यह स्पष्ट था कि हूवर-घोषित भुगतान विलबकाल से अमेरिका को लाभ नहीं हुआ था। और अब, जिस समय कि अमरीकी राजकोष में ८००,०००,००० पौंड का घाटा था, योरोप के कर्जों को रद्द करने की बात करने क लिए उपयुक्त अवसर नहीं था। चुनाव का कुछ भी परिणाम हुआ होता (वास्तव मे फ्रैंकलिन रूजवेल्ट की भारी जीत हुई) इस समय यदि मित्र-राष्ट्र सरकारें अपने कर्जों पर पुनर्विचार के लिए अनुरोध करती तो उन्हें कोरा जवाब (blank refusal) ही मिलता। इन परिस्थितियों मे, ग्रेट ब्रिटेन ने, कुछ हिचकिचाहट के बाद, दिसम्बर की किश्त चुका दी। फ्रांसीसी सरकार भी किश्त चुकाना चाहती थी किन्तु फ्रांसीसी प्रतिनिधि

सभा (Chamber of Deputies) ने यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। इस कारण अन्य प्रमुख कर्जदार राज्यों के साथ ही साथ फ्रास भी बकायादार हो गया।

कर्जदार राज्यों में केवल ग्रेट ब्रिटेन ही एक ऐसा राज्य था जिसने दिसम्बर ३२ में किस्त की पूरी रकम चुका दी। यह भुगतान ही अन्तिम पूरा भुगतान था। इसके बाद जून और दिसम्बर १९३३ में उसने २,०००,००० पौंड का भुगतान प्रत्येक बार किया जो कि देय रकम का बहुत ही कम भाग था किन्तु अमरीकी सरकार ने उसे ही बकायादार नहीं रह जाने के लिए पर्याप्त मान लिया। दूसरी किस्त देय होने से पहिले, नए अमरीकी कानून ने इस कहानी की पुनरावृत्ति रोक दी। इसके बाद और कुछ कभी भी नहीं चुकाया गया। वास्तव में, १९३२ का साल क्षतिपूर्ति और मित्र-राष्ट्रों के आपसी कर्जों के नाटक का अन्तिम दृश्य था जिसने कि ससार को दस से भी अधिक वर्षों से परेशान कर रखा था। लुसान्ने सम्मेलन ने उन दोनों को ही असम्मानपूर्वक दफना दिया।

विश्व अर्थ-सम्मेलन
(World Economic Conference)

लुसाने में यह निश्चय किया गया था कि आगामी वर्ष एक वृहद् अर्थ-सम्मेलन किया जाये—जो कि १९२७ के जेनेवा सम्मेलन के बाद प्रथम बार किया जाना था। अमरीकी सरकार ने उसमें इस शर्त पर भाग लेना स्वीकार कर लिया कि उसमें मित्र राष्ट्रों के आपसी कर्जों पर विचार नहीं किया जाएगा। सम्मेलन होने से पहले, अमरिका में बहुत सी घटनाएँ घट गईं। सन् १९३२-३३ के शीतकाल में, अमेरिका में अर्थ-सकट अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया। उस समय यह अनुमान लगाया गया था (क्योंकि सरकारी तौर पर कोई हिसाब नहीं रखा जाता था) कि अमेरिका में १५,०००,००० व्यक्ति बेकार हैं। मार्च १९३३ में, जब फ्रेंकलिन रूजवेल्ट अमेरिका के राष्ट्रपति हुए, तब अमेरिका की सारी अर्थ-व्यवस्था ही ढहढहानेवाली थी। अगले माह, अमेरिका ने स्वर्ण मान का परित्याग कर दिया और डॉलर का मूल्य शीघ्र ही लगभग ३० प्रतिशत घट गया।

इस घटना की काली छाया में जून १९३३ में लदन में विश्व अर्थ-सम्मेलन हुआ। लिखित इतिहास में वह राज्यों का सबसे बड़ा सम्मेलन था। उसमें चौंसठ देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। मानव-समाज की सामूहिक बुद्धि-

सत्ता मे यद्यपि वर्तमान निष्ठा (still persistent faith) का वह अद्भुत परिचायक था। किंतु अर्थ समस्या और नि शस्त्रीकरण-समस्या मे एक विचित्र समानता शीघ्र ही परिलक्षित हुई। जिस प्रकार फ्रास और उसके साथी वर्षों तक इस बात पर जोर देते रहे कि नि.शस्त्रीकरण से पहले सुरक्षा आवश्यक है, उसी प्रकार विश्व अर्थ सम्मेलन मे भी फ्रान्स ऐसे देशो के नेता के रूप मे सामने आया जिन्होने इस बात पर जोर दिया कि आयात-निर्यात कर कम करने या परिमाण निर्धारण का बंधन हटा देने सम्बन्धी किसी भी प्रकार का समझौता करने से पहले मुद्रा का स्थिरीकरण (stabilisation) आवश्यक है। पहले तो आसार बिलकुल ही निराशाजनक प्रतीत नही हुए। ब्रिटिश सरकार ने आयात-निर्यात कर मे कमी करने के लिए जोर देते हुए भी, स्थिरीकरण की आवश्यकता का समर्थन किया तथा इसके लिए चर्चा चलाने की इच्छा भी प्रकट की। अमरीकी विदेशमन्त्री तथा अमरीकी प्रतिनिधिमडल के नेता कॉर्डेल हल (Cordell Hull) ने भी यही किया। किन्तु अमरीकी राजकोष जिस नम्यमुद्रा (flexible currency) का अनुभव नया नया ही हुआ था, उसक दोषो की अपेक्षा लाभो से ही अधिक परिचित था। राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने एक वक्तव्य जारी किया जो अमरीकी प्रतिनिधिमडल के समझौतात्मक (conciliatory) रुख को अस्वीकार करने के समान ही था। अत: स्थिरीकरण-समर्थकों (stabilisers) की आलोचनाओ के विरुद्ध राजकोष-दृष्टिकोण (Treasury view) का समर्थन करने के लिए एक विशेषज्ञ वाशिंगटन स शीघ्र ही भेजा गया। यह असोभनीय घटना सम्मेलन के लिए प्राणघातक प्रहार (death blow) ही थी। सम्मेलन धीरे-धीरे जुलाई के अन्त तक चलता रहा और उसमे गेहूँ की खरीद बिक्री (marketing) और चाँदी के मूल्य के सबध मे गौण समझौते किए गए तथा उसके बाद वह अनिश्चित काल तक (*sine die*) के लिए स्थगित हो गया। सम्मेलन का महत्त्वपूर्ण कार्य नि सशय रूप से यह जतला देना था कि सभी देशों के लिए एक सी नीति अपनाकर विश्व अर्थ-सकट पर विजय नही पाई जा सकती।

अंतिम दौर (The Last Phase)

विश्व अर्थ-सम्मेलन इसलिए असफल हो गया कि उसके सभी प्रतिनिधियो, अगले कदम के बारे में उनक कुछ भी मत रहे हो, का अन्तिम उद्देश्य अतीत

आयात निर्यात कर की नीची दरो और स्थायी मुद्राओं के युग—को अब फिर वापस ले आना था। किन्तु अब ऐसा हो सकना असमव था। सम्मेलन की असफलता ने राजनीतिज्ञो को नई दिशा मे सोचने के लिए विवश किया। यह स्पष्ट था की आर्थिक राष्ट्रीयतावाद और राज्य द्वारा व्यापार-विनियमन (economic nationalism and state regulation of trade) के तथ्यो ने जड जमा ली थी और उनके भावी विश्व व्यवस्था के आधारभूत तथ्यो के होते हुए भी एक ऐसे सुधार का प्रारम्भ हुआ जो कि आरम्भ में तो शायद ही अनुभव किया गया हो किन्तु वह जोर अवश्य पकड रहा था। ग्रेट ब्रिटेन में इस सुधार का प्रारम्भ सभवतः जुलाई १६३२ से हुआ जबकि युद्ध के समय ५ प्रतिशत पर जनता से लिए गए अधिकाश ऋण को ३½ प्रतिशत लोक ऋण (public debt) के रूप मे सफलतापूर्वक परिवर्तित किया गया था। अमेरिका में, मार्च १६३३ से वस्तुओं के भावो में तेजी आना और विदेश-व्यापार में सुधार होना प्रारम्भ हुआ तथा डालर के मूल्य में कमी एव राष्ट्रपति रूजवेल्ट के "नया कार्यक्रम" (New Deal) के कारण उसे बहुत प्रोत्साहन मिला। अन्यत्र भी यह सुधार धीरे-धीरे होने लगा। पहिले वह उन देशों तक ही सीमित था जिन्होंने स्वर्ण मान का परित्याग कर दिया था किंतु इन देशो—जो कि स्टर्लिङ्ग गुट के थे—अमेरिका और जापान के हाथो में विश्व का आधे से भी अधिक व्यापार था (केवल ग्रेट ब्रिटेन के ही हाथो म एक-चौथाई व्यापार था) तथा ये ही तत्कालीन रुख के निर्णायक थे। सीधे सौदे (direct bargaining) के आधार पर दो दो राज्यो में (pairs of state) द्विपक्षी व्यापारिक समझौतो (bilateral commercial agreements) ने अब अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की बडी-बडी योजनाओ का स्थान ले लिया। अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर पूँजी लगाना अब भी वास्तव में बन्द ही था। पर राज्य स्वय ही अपने को सकट से बचाने लगा। अचूक आर्थिक उपायो (economic panaceas) का चलन उठ गया तथा राष्ट्रसघ के आर्थिक और वित्तीय सगठन अपना समय नित्य कार्यों तथा खोज कार्यों (routine and research) में बिताने लगे।

द्विपक्षी समझौतों की नई नीति का अनुसरण करने में ग्रेट ब्रिटेन न नेतृत्व किया। विश्व अर्थ-सम्मेलन के बाद के वर्ष में, आपसी तौर पर आयात निर्यात कर में कमी करने और खरीद का वचन देन सबधी समझौते अर्जेन्टायना, स्केन्डनेवियन और वाल्कन देशो तथा सोवियत रूस और पोलंड से किए गए। फ्रास, जर्मनी

और हालैंड के साथ किए गए समझौते प्रतिरक्षात्मक उपाय (defensive measures) थे ताकि ये देश ब्रिटिश माल के प्रति यदि भेद-भाव की नीति बरतें भी तो उस का सामना किया जा सके किन्तु उनसे व्यापार में बहुत अधिक वृद्धि नही हुई। जून १६३४ में, अमरीकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने अपने देश की कांग्रेस (Congress) से अन्य राज्यो से व्यापारिक समझौते करने—जिनमें अमरीकी आयात निर्यात कर में कमी करना भी शामिल किया जा सकता था—की शक्तियां प्राप्त कर ली। इस प्रकार के समझौते कई अमरीकी देशो, जिनमें कनाडा भी शामिल था और कुछ योरोपीय राज्यो से किए गए। स्वर्ण मान पर टिके रहने वाले देश अपेक्षाकृत देरी से समृद्धिशाली हुए। सन् १६३४ और १६३५ म, इटली, पोलैंड और बेल्जियम स्वर्ण गुट (gold bloc) से अलग हो गए, प्रथम दो ने तो विनिमय-नियत्रण (exchange control) प्रारम्भ कर दिया और अन्तिम ने सरकारी तौर पर अपनी मुद्रा का अवमूल्यन (devaluation) कर दिया जब फ्रास, स्विटजरलैंड और हॉलैंड ने भी अपनी मुद्राओ का अवमूल्यन कर दिया, तब ता सितबर १६३६ में स्वर्ण मान का अस्तित्व ही अन्तिम रूप से समाप्त हो गया।

यद्यपि इस बात का तो दावा नही किया जा सकता कि आर्थिक और वित्तीय स्थिरता पूरी तरह पुन स्थापित हो चुकी थी, तदपि १६३३ को सामयिक इतिहास (contemporary history) क उस स्पष्ट काल का समाप्ति सूचक वर्ष कहा जा सकता है जो कि विश्व अर्थ सकट काल कहलाता है। तीन वर्षो से दुनिया अपनी आर्थिक कठिनाइयो पर गभीर विचार कर रही थी और उसे कोई हल नही मिल पा रहा था। सन् १६३३ में जहां एक ओर आर्थिक बादल फटना ही प्रारभ हुए थे वही दूसरी ओर राजनैतिक क्षितिज पर कालिमा छाती जा रही थी। राजनैतिक चिन्ताओ—जापान और जर्मनी का राष्ट्र-संघ से हट जाना तथा नि शस्त्रीकरण सम्मेलन का आसन्न (imminent) अन्त का विश्व घटनाचक्र में पुन' प्राधान्य हो गया। यद्यपि इनके कारण भी अधिकाशतः आर्थिक थे तदपि उन्होने सकट के शुद्ध आर्थिक पहलू को मनुष्य के विचार जगत में गौण स्थान दिला दिया।

८. सुदूर पूर्व (पूर्वी एशिया*) में संकट

(Crisis in the Far East)

सुदूर पूर्व में जापान की स्थिति की तुलना योरोप में जर्मनी और इटली की स्थिति से की जा सकती थी। उसके आन्तरिक साधन इतने पर्याप्त नहीं थे कि उनमें उसकी तेजी से बढ़ती हुई आबादी का काम चल सके। उसे ऐसा लगता था कि उसे निम्न कोटि से ऊँचा उठा हुआ (upstart) माना जाता है और उसकी आकांक्षाओं की पूर्ति में अन्य बड़े राष्ट्र द्वेषपूर्ण बाधा डालते हैं। वाशिंगटन सम्मेलन में, ऍंग्लो संक्सन (Anglo-Saxon) राष्ट्रों ने उस पर संयुक्त दबाव डालकर उसे चीन में अपनी युद्धकालीन लाभों (war-time gains) को त्याग देने तथा चीन की अखंडता का सिद्धान्त मानने के लिए विवश किया था। सन् १९२३ में जापान में एक ऐसा भयंकर भूकंप आया कि उसे सैनिक विजय का कोई भी विचार तत्काल त्याग देने के लिए और भी विवश होना पड़ा किन्तु १९२४ के अमरीकी आप्रवासन अधिनियम (American Immigration Act) जिसके द्वारा जापानियों को अमरीका में बसने की वस्तुतः मनाही करदी गई थी, को घोर अपमान समझा गया। अमेरिका की इस नीति का अनेक ब्रिटिश अधिराज्यों ने भी अनुकरण किया था। सन् १९२५ में, ब्रिटिश सरकार का यह निर्णय कि वह सिंगापुर में प्रथम श्रेणी का एक सैनिक अड्डा बनाने की एक दीर्घकालीन योजना कार्यान्वित करेगी, जापान की महत्त्वाकांक्षाओं के लिए एक और रोड़े के समान प्रतीत हुआ। इस प्रकार केवल

---

* इस अध्याय के अनुवाद के समय समाचार-पत्रों में भारत सरकार की यह घोषणा प्रचारित हुई है कि अब सुदूर पूर्व (Far East) और मध्य पूर्व (Middle East) को क्रमश पूर्वी एशिया एवं पश्चिमी एशिया कहा जायगा। किन्तु एकरूपता बनाए रखने की दृष्टि से इस पुस्तक में (Far East) और (Middle East) को क्रमश 'सुदूर पूर्व' तथा 'मध्य पूर्व' ही कहा गया है। —अनु०

एशिया की मुख्यभूमि पर ही जापान अपना विस्तार कर सकता था तथा केवल समान शक्ति सवल (equals) राष्ट्र के रूप म अपितु विजेताओं के रूप में भी सामने आ सकते थे। इस घटना की चर्चा के पहिले, यह आवश्यक है कि इन वर्षों में विदशो क साथ चीन क सबधो के विषय मे मुख्य मुख्य बातें जान ली जायें।

वाशिंगटन सम्मेलन के बाद चीन (China After the Washington Conference)

सन १६११ की चीनी क्राति के बाद चीन आपसी कलह का शिकार हो गया। सन् १६१६ मे केन्टन (Canton) प्रात पेकिंग (Peking) सरकार—शेष देश पर जिसका शासन करीब-करीब नाम-मात्र का ही था—के हाथ से बिल्कुल ही निकल चुका था। वाशिंगटन सम्मेलन के कुछ ही महीनो के भीतर १६२२ में, समस्त उत्तरी और मध्य चीन, जोकि प्रतिद्वन्द्वी तु शु (Tuchuns) या प्रान्तीय राज्यपालो (provincial governors) के शासन में बँटा हुआ था, मे गृहयुद्ध भडक उठा। चीन के अन्तिम उत्तरी छोर पर चाग त्सो-लिन (Chang Tsolin) के कर्मठ नेतृत्व में मचूरिया वस्तुत: स्वतन्त्र होगया। मध्य चीन मे वू-पी-फु (Wu-Pei-fu) सभी तु-शनो में सर्वाधिक शक्तिशाली था किन्तु देशो को एकबद्ध करने में वह कभी भी सफल नही हो सका। दक्षिण चीन मे, केन्टन कोमिन्ताग (Kuomintang) या राष्ट्रवादी पार्टी (nationalist party) का मुख्यालय था। इस पार्टी का नेतृत्व ऐसे तरुण चीनी बुद्धिवादियो के हाथो में था जिनकी शिक्षा दीक्षा पश्चिमी योरोप या अमेरिका या चीन के ही अमरीकी कालेजो (colleges) मे हुई थी और उनमे प्रजातन्त्र तथा आत्म-निर्णय के सिद्धात कूट-कूटकर भरे हुये थे। कोमिन्ताग के अध्यक्ष, सन-यातसेन (Sun Yat-sen) चीन के सबसे प्रभावशाली व्यक्ति थे और उनमे एक दूरद्रष्टा तथा भविष्यद्रष्टा के गुणो के साथ ही साथ चतुर राजनीतिज्ञ के गुणो का भी सम्मिलन था। सन-यातसेन १६२३ में, केन्टन सरकार के प्रधान (Head) बने और उन्होने बोरोडिन (Borodin) नामक एक रूसी को अपने प्रमुख सलाहकार के रूप मे नियुक्त किया। बोरोडिन ने सोवियत अन्तर्राष्ट्रीयतावाद (internationalism) और चीनी राष्ट्रवाद में शीघ्र ही एक कामचलाऊ मेल स्थापित किया।

चीन के आपसी कलहों का चीनी राजनीति की दूसरी प्रमुख समस्या—विदेशी प्रभुत्व का विरोध (resistance to foreign resistance)—से निकट सबध था। उन्नीसवीं शताब्दी में बडे राष्ट्रो ने चीन पर तथाकथित "असमान सधियाँ" ("unequal treaties") लाद दी थी जिनके अनुसार चीन ने उसके क्षेत्र में रहने और व्यापार करने वाले इन राष्ट्रो

सुदूर पूर्व

के नागरिको को कई विशेष सुविधायें दी थी। इन विशेष सुविधाओ मे से, दो बहुत महत्त्व की थीं। पहिली के अनुसार चीन आयात और निर्यात चुगी कर के रूप में अधिक से अधिक ५ प्रतिशत ले सकता था। दूसरी के अनुसार बडे राष्ट्रो को चीन मे क्षेत्रातीत अधिकार (Extra-territorial Jurisdiction) प्राप्त थे। उनके राष्ट्रवासियो

(nationals) पर न तो चीनी कानून लागू होते थे और न ही चीनी न्यायालयो मे उन पर मुकद्दमा चलाया जा सकता था। वे अप्रत्यक्ष रूप से लगाए गए करो के अतिरिक्त और कोई कर चीन को नही देते थे। ऐसे सभी मामले जिनमें कोई विदेशी आरोपी अथवा प्रतिवादी (accused or defendant) होता था, सबधित विदेशो के हो राष्ट्र के न्यायाधीशो द्वारा उसके राष्ट्र के कानूनो के अनुसार निबटाए जाते थे। इसके अतिरिक्त, चीन ने यह स्वीकार भी किया था कि वह सभी प्रमुख बन्दरगाहो मे, विदेशियो के निवास के लिए पृथक् क्षेत्र देगा। कई बदंरगाहो मे इस प्रकार के क्षेत्र "सुविधा क्षेत्रो" ("concessions") और "बस्तियो" ("settlements") के रूप में विकसित हो चुके थे और उनकी नगरपालिकाएँ भी विदेशियो के ही हाथो में थीं। अन्य स्थानो पर बडे-बडे "पट्टक्रामित" ("leased territories") थे। ये पट्टे इतने विस्तृत थे कि सबधित विदेशी राष्ट्र को कुछ वर्षों के लिए इस प्रकार के क्षेत्र पर वस्तुत: सार्वभौमत्व ही प्राप्त हो जाता था।

प्रथम विश्वयुद्ध से पहिले शिक्षित चीनियो की तरुण पीढी इन सुविधाओ का उग्र विरोध करती थी। युद्ध समाप्त होने पर, जब जर्मनी और रूस चीन में इन विशेष अधिकारो से वचित होगए, तब तो अन्य "असमान सधियो" को रद्द कराने का आन्दोलन व्यापक रूप धारण करने लगा। वाशिंगटन-सम्मेलन द्वारा इस आन्दोलन का मुकाबिला यह आशा दिखाकर करने का प्रयत्न किया गया था कि इन विशेष सुविधाओ मे शीघ्र ही कमी की जाएगी। विशेषत: बडे राष्ट्रो ने यह वचन दिया था कि ५ प्रतिशत के वर्तमान आयात-निर्यात कर पर तुरन्त ही २½ प्रतिशत अधिकर (surtax) लगाने और आगे चलकर आयात-निर्यात कर को १२½ प्रतिशत कर देन का अधिकार देने के लिए वे एक विशेष सम्मेलन का आयोजन करेंगे; और कुछ अस्पष्ट शब्दो में, उन्होने यह वचन भी दिया था कि चीन मे विदेशियो के क्षेत्रातीत अधिकारो और न्याय-प्रशासन (administration of justice) की जाँच करने तथा प्रतिवेदन देने के लिए एक आयोग की नियुक्ति की जाएगी : किन्तु वाशिंगटन सम्मेलन समाप्त होने के बाद, इन वचनो को कार्य रूप मे परिणत करने की किसी को चिन्ता भी नही हुई। गृहयुद्ध के कारण विलब के लिए काफी बहाना मिल गया। गृहयुद्ध के कारण उत्पन्न अशांत स्थिति मे इस बात की सभावना कम ही प्रतीत होती थी कि

लि-क्नि (li-kin=duties levied on goods in transit in the interior, देश मे माल लाने-लेजाने पर शुल्क) समाप्त कर दिया जायेगा—आयात निर्यात कर में वृद्धि के लिए यह भी एक शर्त थी।

विलव ने, उसके लिए कितने ही दृढ कारण क्यों न खोज निकाले गए हों कोमिन्तांग को लाभ उठाने का एक अवसर दिया जो कि इस समय चीन की राष्ट्रीय स्वतन्त्रता को प्रबल समर्थक के रूप में सामने आई। मार्च १९२५ मे सनयात-सेन की मृत्यु हो गई। किन्तु उनकी मृत्यु ने चीनी राष्ट्रीयतावाद के पोषक सन्त के रूप मे उनका स्थान निश्चित बना दिया। उनका नाम विदेशी नियन्त्रण के विरुद्ध राष्ट्रीय विद्रोह का प्रतीक बन गया। सोवियत प्रभाव में, विदेश-विरोधी इस भावना ने कटु और अतोषणीय (implacable) बैर का रूप धारण कर लिया। बोरोडिन ने इस बैर का प्रमुख लक्ष्य ग्रेट ब्रिटेन को—जो कि "असमान सन्धियों" के लिए उत्तरदायी तथा बोरोडिन के देश का प्रमुख शत्रु था—को बनाने के लिए भरसक प्रयत्न किया। उसके लिए ऐसा कर सकना इसलिए भी सरल हो सका कि चीन मे ब्रिटिश हितों का विस्तार काफी था। यदि मई १९२५ में शघाई की एक अन्तर्राष्ट्रीय बस्ती मे एक दुखद घटना नहीं घटी होती, तो बोरोडिन का प्रभाव समवत उतना अधिक नही होता। उक्त मास में चीनी-विद्यार्थियों ने जिस समय कपडा मिलो में, जो जापानियो के स्वामित्व में थी, श्रमिकों की स्थिति के सम्बन्ध में एक शातिपूर्ण प्रदर्शन किया, उस समय ब्रिटिश अधिकारियो को कमान मे नगरपालिका पुलिस ने उन पर गोली चलाई। पुलिस की इतनी कठोर कारवाई के लिए सम्भवत कोई औचित्य नहीं था। उसके बाद इस मामले के प्रति ब्रिटिश अधिकारियों ने जो रुख अपनाया, उसने आग में घी डालने का काम किया। इस घटना के कुछ ही सप्ताहों के बाद केंटन के ब्रिटिश "सुविधा क्षेत्र" (concession) मे एक और तथा इससे भी भयकर गोलाबारी हुई। सारे चीन में क्रोध की लहर फैल गई, और ब्रिटिश माल का बहिष्कार प्रारम्भ होगया।

इसी बीच, कोमिन्तांग के प्रभाव के विस्तार, जिसे बोरोडिन का योग्य समर्थन प्राप्त था, का उत्तर के तु-चुनो की शक्ति पर विग्रहकारी (disintegrating) प्रभाव पड रहा था। आयात निर्यात कर पर पुनर्विचार के लिए गठित विशेष

सम्मेलन ने भी आखिर १६२५ के शरद् में पेकिंग मे अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया था। किन्तु १६२६ के प्रारम्भ में ही, उसे अपना कार्य छोड देने के लिए विवश होना पडा क्योकि उस समय चीन मे ऐसी कोई मान्य सरकार ही नही थी जिस से कि वह वार्ता चला सके। पेकिंग मे यद्यपि इस समय भी विदेशी उपदूतावास (legations) थे, तदपि वह चीन की राजधानी नही रह गया था। अब दक्षिण गुरुत्वाकर्षणकेन्द्र बन चुका था। अक्टूबर १६२६ में केन्टन की राष्ट्रवादी सरकार ने बडे राष्ट्रो द्वारा प्राधिकृत (authorisation) किए जाने की प्रतीक्षा किए बिना ही, अपने अधीनस्थ बदरगाहो मे २½ प्रतिशत अधि कर लगाना प्रारम्भ कर दिया।

अब ब्रिटिश सरकार को भी यह सद्बुद्धि आई कि बढते हुए राष्ट्रीयतावाद—जो कि चीन की वास्तविक शक्ति थी—से समझौता कर लेना चाहिए। दिसम्बर १६२६ मे उसने दो कदम उठाए जिनका काफी प्रभाव पडा। राष्ट्रवादी सरकार के विदेश-मन्त्री से भेंट के लिए एक ब्रिटिश मन्त्री हकाऊ (Hankow) गया-चीन की सरकार को मान्यता देने की दिशा मे ब्रिटिश सरकार का यह पहला कदम था। पेकिंग स्थित ब्रिटिश उपदूतावास ने एक स्मरणपत्र जारी किया और जोर दिया कि चीनी राष्ट्रीय आदोलन से ब्रिटिश सरकार को सहानुभूति है। स्मरणपत्र में यह घोषित किया गया था कि चीन पर विदेशी सरक्षण शासन लादने का विचार अब पुराना पड गया है तथा ब्रिटेन सधि पर पुनर्विचार सम्बन्धी वार्ता चलाने के लिए तैयार है। इसके साथ ही इस स्मरणपत्र के द्वारा ब्रिटेन ने प्रथम कदम के रूप मे यह प्रस्ताव रखा था कि सारे चीन में २½ प्रतिशत अधि कर लगाने का अधिकार बडे राष्ट्र तुरन्त ही दे दें।

इससे पहिले कि इस घोषित नीति का कुछ परिणाम निकले, तूफान आगया। जनवरी १, १६२७ को राष्ट्रवादी सरकार ने अपनी राजधानी कन्टन से हकाऊ में बदली जो कि राष्ट्र की राजधानी के लिए अधिक केन्द्रीय स्थान मे था। कुछ ही दिनो बाद, हकाऊ स्थित ब्रिटिश सुविधाक्षेत्र को उत्तेजित चीनी जनता ने नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। इसलिए ब्रिटिश सेना की एक टुकडी शीघ्र ही शघाई भेजी गई ताकि वहाँ की अन्तर्राष्ट्रीय बस्ती को इसी प्रकार के आक्रमण से बचाया जा सके। फरवरी मे, ब्रिटिश सरकार ने राष्ट्रवादी सरकार से एक समझौता किया जिसके अनुसार कुछ शर्तो पर हकाऊ स्थित ब्रिटिश सुविधाक्षेत्र का चीन को

हस्तातरण वैध घोषित किया गया। समझौते की यह नीति जो कि ब्रिटिश जान-माल की सुरक्षा के दृढ निश्चय के कारण अपनाई गई थी, परिणाम सामने आने पर शीघ्र ही उचित सिद्ध हुई। सन् १६२७ दो महत्त्वपूर्ण बातो में एक नया मोड था।

एक तो, इस वर्ष मे बोरोडिन (Borodin) के प्रभाव का सहसा और नाटकीय अन्त हो गया। मास्को के क्रांतिकारी अन्तर्राष्ट्रीयतावाद और कोमिन्ताग के स्वदेशीय राष्ट्रीयतावाद में मेल सदा ही कृत्रिम रहा था। चीन को विदेशियो के नियत्रण से मुक्त करने का सामान्य उद्देश्य पूरा होने तक, उनमे खूब निभी। किन्तु १६२७ के प्रारम्भ में जब राष्ट्रवादी सरकार ने हकाऊ मे अपने पैर जमा लिए और जब वह सारे चीन की केन्द्रीय सरकार होने का दावा करने लगी, तब कोमिन्ताग में दो दल हो गये। उसका वामपथी दल (left wing) यह चाहता था कि बोरोडिन के सहयोगपूर्वक पार्टी की क्रांतिकारी परपराएं जारी रखी जायें। दक्षिण पथी दल (right wing) जिस पर ग्रेट ब्रिटेन के नए रुख का प्रभाव था, बडे राष्ट्रो द्वारा सम्मान और मान्यता पाने की आकाक्षा रखता था। इस दल को इस समय जनरल च्यागकाई शेक के रूप मे एक समर्थ नेता मिल गया जिसे न तो कम्यूनिज्म से सहानुभूति थी और न ही वह रूसी सलाहकारो की सहायता लेना चाहता था। च्यागकाई-शेक ने नानकिंग में एक प्रतिद्वन्द्वी कोमिन्ताग सरकार स्थापित की और हकाऊ सरकार से यह मांग की कि बोरोडिन तथा अन्य कम्युनिस्टो को निकाल दिया जाए। जुलाई में यह मांग पूरी कर दी गई। बोरोडिन और उसके रूसी सहायक वापस मास्को भेज दिए गये और कई चीनी कम्यूनिस्टो को जेल मे ठूंस दिया गया। राजधानी भी हकाऊ से नानकिंग स्थानांतरित कर दी गई तथा इस घटना के बाद से नानकिंग ही चीन की राजधानी बना रहा।

दूसरे, सन् १६२७ में चीन के अतर्राष्ट्रीय सम्बन्धो में भी एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। दो वर्षों तक विदेशियो मे ग्रेट ब्रिटेन ही चीन का कोपभाजन अधिकाशतः बना रहा था। वाशिंगटन सम्मेलन में अगीकार की गई आत्म-निय-त्रण की नीति का सतर्कता से अनुसरण करते हुए जापान पृष्ठभूमि में ही रहा था और ब्रिटिश माल के बहिष्कार से उसने व्यापारिक लाभ उठाया था। किन्तु चीन मे एकयपूर्ण राष्ट्रवादी सरकार की पुन स्थापना के आसार ने स्थिति उलट दी तथा चीन सम्बन्धी ब्रिटिश और जापानी नीति के मूलभूत अन्तर को सामने ला

दिया। चीन में ग्रेट ब्रिटेन का केवल व्यापारिक स्वार्थ था और उसकी यह हार्दिक इच्छा थी कि चीन एक शांतिपूर्ण तथा संगठित राष्ट्र हो जाए ताकि उसका व्यापार बढे। अपने पडोसी के मामलों में, जापान की रुचि राजनैतिक थी। वह यह चाहता था कि चीन कमजोर, फूटपरस्त और जापान के प्रभुत्व से टक्कर लेने या उसकी महत्त्वाकाक्षाओं को रोकने में असमर्थ ही बना रहे। विशेषकर, जापान को यह फूटी आँखों नही सुहाता था कि उत्तरी चीन केन्द्रीय सरकार के प्रभावशाली नियन्त्रण में आ जाये।

इसीलिए, मई १९२७ में जब राष्ट्रवादी सेनाओं ने उत्तर की ओर कूच किया और पेकिंग के दक्षिण में लगभग ५०० मील येलो नदी (Yellow River) तक पहुँच गई तब जापानी सरकार सचेत हो गई। शान्तुग प्रान्त में उसने कुछ सैनिक टुकडियाँ उतार दी और सामरिक महत्त्व के कुछ स्थलो पर अधिकार कर लिया ताकि राष्ट्रवादियो को आगे बढने से रोका जा सके। इस कारवाई ने यह सिद्ध कर दिया कि बडे राष्ट्रो के दबाव के कारण जापान ने वाशिंगटन में यद्यपि यह घोषणा की थी कि शान्तुग पर अधिकार करने की इच्छा उसने त्याग दी है, तदपि यह इच्छा अभी भी बनी हुई थी। सारे चीन म इस घटना की बहुत अधिक प्रतिक्रिया हुई। दो वर्षों पूर्व ग्रेट ब्रिटेन के प्रति प्रदर्शित की गई शत्रुता अब जापान के प्रति प्रदर्शित की जाने लगी। चीनी देशभक्तों ने अब जापानी माल का बहिष्कार प्रारम्भ किया। जापान द्वारा विरोध किए जाने पर भी, पेकिंग तक के समस्त चीन ने राष्ट्रवादी सरकार की सत्ता मान ली। किन्तु मचूरिया के बारे में जापान टस से मस नही हुआ और अप्रैल १९२८ में जब चाँग-त्सो लिन (Chang Tso-lin) ने नानकिंग से समझौता करने के आसार प्रकट किये, तब एक रहस्यपूर्ण बम के फूटने से उसकी मृत्यु हो गई। इस बम के बारे में कई लोगो का यह विश्वास था कि यह जापान का ही षड्यन्त्र था।

इस प्रकार १९२८ के मध्य तक, चीन में स्थिति स्पष्ट हो चुकी थी और १९३१ की नाटकीय घटनाओं के लिए रास्ता तैयार हो चुका था। गृह-युद्ध बीच-बीच मे चलता रहा। मध्य चीन के कुछ प्रान्तो में, कम्युनिज्म अब भी फैलता जा रहा था। दूरस्थ (outlying) प्रांतो मे सरकार का नियन्त्रण या तो था ही नही या था भी तो कमजोर था। मचूरिया मे, जापान के प्रभाव के कारण नानकिंग मे कोई सहयोग नही हो पाता था किंतु कम से कम नाम के लिए तो

चीन एक बार फिर एक केन्द्रीय सरकार के अधीन एक हो गया था। अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में जापान पुनः चीन का प्रमुख सिरदर्द बन गया। चीन को जापान का हमेशा ही भय बना रहता था, इस कारण अन्य विदेशी हितो के प्रति उसके रुख में नरमी बनी रही। सन् १९१९ के बाद से चीन के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध इतने संघर्षपूर्ण कभी भी नही रहे जितने कि १९२७ और १९३१ के बीच मे थे।

जापान की मचूरिया-विजय
(Japan Conquers Manchuria)

किन परिस्थितियो से प्रेरित होकर जापान से बिना किसी हिचक के अपने प्रथम आक्रमण की तारीख निश्चित की, यह अनुमान लगा सकना कठिन है। जापान में सैनिक और असैनिक (military and civil) अधिकारियो में बहुत समय से प्रतिद्वन्द्विता चली आरही थी। दोनो ही जापान को बडे राष्ट्रो की पक्ति में ला बैठाने के लिये समान रूप से उत्सुक थे। किन्तु असैनिक-राजनैनिक नेताओ (civilian political leaders) का यह विश्वास था कि यह काम ब्रिटिश और अमरीकी लोकमत को अपने पक्ष में करके भली भांति किया जा सक्ता है। इसके विपरीत सैनिक अधिकारी (जिनकी स्थिति इसलिए भी सुदृढ थी कि वह असैनिक सरकार के प्रति उत्तरदायी न होकर सम्राट के प्रति ही सीधे उत्तरदायी थे) सैनिक विजयो की नीति का अनुसरण कर जापान को महान् राष्ट्र बनाना चाहते थे। असैनिक पार्टी की वाशिंगटन सम्मेलन मे विजय हो चुकी थी और लगभग दस वर्षों तक वह इतनी प्रभावशाली रही कि उसने सेना को कोई कार्रवाई नही करने दी। किन्तु १९२७ के बाद स, जापानी हितो के प्रति चीन के उत्तेजनात्मक रुख (provocative attitude) ने जापान का धैर्य तोड दिया। सन् १९२९ और १९३१ के बीच के आर्थिक सकट जबकि जापान के विदेशी व्यापार का मूल्य लगभग आधा रह गया था, के कारण जापान मे गम्भीर आन्तरिक विद्रोह की आशका होने लगी। सन् १९३१ के ग्रीष्म मे, चीनी लुटेरो द्वारा मचूरिया मे एक जापानी अधिकारी की हत्या का उपयोग जनविक्षोभ उभाडने मे किया गया। सितम्बर में, सेना ने मामला अपने हाथों मे ले लिया। इसके लिए जो अवसर चुना गया था वह सयोग से अथवा पूर्वयोजनानुकूल ऐसा अवसर था जबकि ग्रेट ब्रिटेन आर्थिक और राजनैतिक सक्ट के गर्त में फँसा हुआ था।

रूस और जापान के बीच युद्ध समाप्त करने वाली संधि के अनुसार दक्षिण मंचूरिया रेलवे, जो कि ट्रांस साइबेरियन रेलवे से पोर्ट आर्थर (Port Arthur) तक दक्षिण की ओर जाती है, की रक्षा के लिए मंचूरिया में लगभग १५,००० सैनिक रखने का अधिकार जापान को मिल गया था। ये रक्षक-सैनिक रेलवे क्षेत्र में ही रहते थे और उनका मुख्यालय मुकडेन (Mukden) में था। सितम्बर १८१९, १९३१ की रात को, एक जापानी गश्ती दल (patrol) को मुकडेन के समीप चीनी सैनिकों की एक ऐसी टुकडी का वास्तव में या कथित रूप से पता चला, जो कि मुख्य रेल्वे लाइन को उडा देने का प्रयत्न कर रही थी। तुरन्त ही जापानी रक्षक बुलाए गए और एक छोटी सी मुठभेड हो गई जिसके परिणामस्वरूप मुकडेन स्थित १०,००० चीनी सैनिकों को या तो निःशस्त्र कर दिया गया या उन्हें तितर-बितर कर दिया गया। चार दिनों के भीतर ही, मुकडेन के उत्तर में २०० मील के घेरे में स्थित सभी चीनी नगरों पर, जिनमें से कुछ तो रेल्वे क्षेत्र से बहुत दूर बसे हुए थे, जापान का अधिकार हो गया। चीनी प्रांतीय सरकार, जिसका प्रधान चांग-त्सो लिन का एक पुत्र था, मुकडेन से बाहर खदेड दी गई और चिनचो (Chinchow) में नाममात्र के लिए अपना अस्तित्व बनाए रही। नवम्बर के मध्य तक, उत्तरी मंचूरिया का विस्तृत और थोडी आबादी वाला क्षेत्र जापान के हाथों में आगया। उसके बाद जापानी सेनाएँ दक्षिण की ओर बढीं—इस समय वे युद्ध में बमवर्षक वायुयानों का प्रयोग करती थीं। दिसम्बर २८ को चिनचो भी जीत लिया गया और जनवरी ४,१९३२ को, जापानी बडी दीवार (Great Wall) स्थित शानहैक्वान (Shanhaikwan) जो कि मंचूरिया और मुख्य चीन के बीच का सीमांत स्टेशन है, पहुँच गए। इस प्रकार मंचूरिया को जापान ने पूरी तरह विजित कर लिया।

जापान ने अपनी विजय योजना को राष्ट्रसंघ परिषद्, जिसका इस समय लगभग अविराम अधिवेशन हो रहा था, की परेशानी का विचार किए बिना ही कार्यान्वित किया था। आक्रमण होते ही, चीनी सरकार ने अनुबंधपत्र के ग्यारहवें अनुच्छेद के अधीन राष्ट्रसंघ से अपील की। इस अनुच्छेद के अधीन केवल निर्विरोध प्राप्त होने पर ही निर्णय लिए जा सकते थे। और राष्ट्रसंघ को इसी के अन्तर्गत सभी पिछली सफलताएँ मिली थीं। जापानी प्रतिनिधि ने अपनी सरकार की ओर से यह अस्वीकार किया कि जापान चीन क्षेत्र को अपने क्षेत्र में मिला लेने का कोई विचार रखता है और उसने सैनिक कारवाई का औचित्य यह

बताया कि चीनी लुटेरों से जापानी जान माल की रक्षा करने के लिए इस कार्रवाई का आश्रय लेना आवश्यक था। यूनान-बलगेरिया विवाद में जिस रीति से सफलता मिली थी, (देखिए पृष्ठ ६७) उसी का पुनः अनुसरण करते हुए, राष्ट्रसंघ ने एक प्रस्ताव तैयार किया जिसका उद्देश्य जापान को पीछे हटने के लिए तैयार करना था। प्रस्ताव में जापानी प्रतिनिधि द्वारा दिया गया यह आश्वासन उद्धृत किया गया था कि, जापानी सरकार "यथासंभव शीघ्र ही अपने सैनिकों को रेल्वे क्षेत्र में केवल उसी अनुपात में वापस हटा लेगी जितने कि जापानियों के जान माल की सुरक्षा के लिए आवश्यक हैं।" प्रस्ताव में यह आशा प्रकट की गई थी कि "पुनः सामान्य संबंध स्थापित करने के लिए यह और इसी प्रकार के अन्य कदम शीघ्र ही उठाए जाएँगे। सितम्बर ३०, १९३१ को यह प्रस्ताव निर्विरोध रूप में स्वीकार कर लिया गया, और उसके बाद उत्सुक किन्तु निराश अवस्था में परिषद् का अधिवेशन एक पखवारे के लिए स्थगित हो गया।

पेरिस समझौते (Pact of Paris) के अनुसार, युद्ध का आश्रय लेना निषिद्ध था तथा वाशिंगटन में की गई नौ राष्ट्र की संधि (देखिए पृष्ठ १८) के हस्ताक्षर-कर्त्ता चीन की स्वतंत्रता और अखंडता का सम्मान करने के लिए वचनबद्ध थे। यही कारण था कि जापान दृढ़तापूर्वक इस बात पर जोर देता रहा कि मंचूरिया में उसकी कार्रवाई को युद्ध न मानकर "पुलिस कार्रवाई" ("Police operations") माना जाए तथा चीनी क्षेत्र को अपने राज्य में मिलाने का उसका कोई विचार नहीं था जैसे-जैसे समय बीतता गया वैसे-वैसे यह बहाना बनाए रखना भी अधिकाधिक कठिन होता गया। जब अक्तूबर १३ को परिषद् का पुनः अधिवेशन हुआ, तब यह स्पष्ट हो चुका था कि जापान न केवल राष्ट्रसंघ का अनुबंधपत्र ही, अपितु पेरिस समझौते और नौ राष्ट्रों की सन्धि का भी उल्लंघन करना चाहता था। इस कारण अमेरिका भी तुरन्त ही रंगमंच पर आ गया। अमरीकी नेताओं ने शीघ्र ही यह अनुभव कर लिया कि जापान की इस कार्रवाई ने प्रशान्तसागर में शक्ति संघर्ष (struggle for power) के एक नए अध्याय का प्रारम्भ किया है। अमरीकी सरकार ने परिषद् के प्रयत्नों की न केवल अपूर्व सराहना की, अपितु पेकिंग और टोकियो स्थित अपने कूटनीतिक प्रतिनिधियों (diplomatic representations) के जरिए उनका समर्थन भी किया। इसके साथ ही परिषद् के अध्यक्ष ब्रायएड (Briand) को उसने यह

सूचित भी किया कि परिषद् की कार्रवाई में भाग लेने के लिए यदि अमेरिका को कोई निमन्त्रण दिया गया तो वाशिंगटन में उसका स्वागत ही होगा।

चापलूसी और आश्चर्य भरे इस प्रस्ताव के बहकावे मे आकर, परिषद् ने पहली गलती की। जब ब्रायण्ड ने परिषद् के सामने यह प्रस्ताव रखा कि अमेरिका से परिषद् में एक प्रतिनिधि भेजने का अनुरोध किया जाए तब जापान के प्रतिनिधि ने तुरन्त ही यह आपत्ति उठाई कि यह प्रस्ताव अवैधानिक है। अनुबधपत्र के सत्रहवें अनुच्छेद मे केवल एक ही स्थिति ऐसी रखी गई थी जिसमें राष्ट्रसघ के गैर-सदस्यों से भी परिषद मे प्रतिनिधि भेजने का अनुरोध किया जा सकता था। अभी ऐसी कोई परिस्थिति उत्पन्न नही हुई थी। लम्बे वाद-विवाद के बाद यह आपत्ति अमान्य कर दी गई। मामले को किसी तरह बनाने की दृष्टि से परिषद् के अन्य सदस्यो ने भी यह निश्चित किया कि अमेरिका को आमत्रित किया जाना केवल नियमिक मामला (matter of procedure) है जिस पर बहुमत द्वारा निर्णय किया जा सकता है। अक्टूबर १६ को, एक अमरीकी प्रतिनिधि परिषद् में शामिल हुआ उसने यह घोषणा की कि वह परिषद् की चर्चाओ मे केवल उसी सीमा तक भाग लेगा जिस सीमा तक उनका सबध पेरिस समझौते से होगा। वातावरण मे उत्साह बहुत अधिक था। आशावादी लोग यह कहते सुने जाते थे कि यदि राष्ट्रसघ ने जापान को खो दिया है तो अमेरिका को पा लिया है। किन्तु घटनाओ ने शीघ्र ही यह स्पष्ट कर दिया कि इस आशावादिता का आधार ठीक नही था। अमरीकी सरकार अपने देश के राष्ट्रसघ विरोधी जनमत से भय खाती थी। इस कारण अमेरिका का प्रतिनिधि परिषद की कार्रवाई में कोई सक्रिय भाग नही ले सका। अगले माह जब परिषद् की बैठकें पुनः आरम्भ हुई तब अमरीकी सहयोग परिषद् के सदस्यो से निजी और अशासकीय वार्ताएँ चलाने तक ही सीमित रहा।

इसी बीच अमेरिका के परिषद् मे भाग लेने सम्बन्धी विवाद की खाई जापान और परिषद् के अन्य सदस्यो के बीच गहरी पड गई थी। दोनो पक्षो का रुख कडा हो गया। सेना हटाने के लिए जापान ने पहिली शर्त यह रखी कि उसे चीन से सीधी ही वार्ताएँ चलाने दिया जाए तथा परिषद् को उसने यह बताने से भी इन्कार किया कि वार्ता के लिए उसकी शर्तें क्या होगी। परिषद् के अन्य सदस्य इस बात पर जोर देते रहे कि वार्ताएँ चलाने से पहिले, जापान अपनी सेनाएँ

रेल्वे क्षेत्र में हटा ले। अक्टूबर २४ को इस आशय के एक प्रस्ताव पर मत लिए गए कि "परिषद् की अगली बैठक की तारीख अर्थात्, १६ नवंबर से पहिले जापान अपनी सेना पूरी तरह हटाले।" किन्तु जापानी प्रतिनिधि के एकमात्र विपरीत मत (adverse vote) के कारण यह प्रस्ताव स्वीकृत नहीं हो सका। समझौते का मार्ग निश्चय ही समाप्त हो चुका था और अब ग्यारहवें अनुच्छेद के अनुसार कोई कार्रवाई शेष नहीं बची थी।

किन्तु राष्ट्रसंघ के उत्कर्ष के दिनों में ग्यारहवें अनुच्छेद की इतनी प्रतिष्ठा प्राप्त हो चुकी थी और पन्द्रहवें अनुच्छेद में निर्धारित कार्रवाई, जिसके अनुसार सम्बन्धित पक्षों के मत के विरुद्ध भी निर्णय दिया जा सकता था, का आश्रय लेने की इतनी प्रगाढ अनिच्छा थी कि उक्त निष्कर्ष (समझौते का मार्ग समाप्त हो चुका है) पर तुरन्त ही नहीं पहुँचा जा सकता था। नवम्बर १६ से दिसंबर १० तक के पेरिस के अपने लम्बे अधिवेशन में, परिषद् ग्यारहवें अनुच्छेद के अनुसार इस समस्या को सुलझाने में जूझी रही। पूर्ण गतिरोध उपस्थित हो गया। किन्तु प्रकट रूप से असफलता स्वीकार करना यह निर्विरोध निर्णय कर स्थगित कर दिया गया कि सुदूर पूर्व में एक राष्ट्रसंघ आयोग भेजा जाए, जोकि घटनास्थल पर जाकर इस बात की जांच करे कि "चीन और जापान के बीच शांति भंग होने की आशंका पैदा करने वाली क्या ऐसी परिस्थितियाँ हैं जिनका अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर प्रभाव पड सकता है", किन्तु आयोग पर यह बन्धन रखा गया था कि वह "किसी भी पक्ष के सैनिक प्रबन्ध में हस्तक्षेप" न करे। इस आयोग में पाँच बड़े राष्ट्रों (ग्रेट ब्रिटेन, अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी और इटली) के प्रतिनिधि रखे गये थे तथा उसका अध्यक्ष ब्रिटिश प्रतिनिधि लार्ड लिटन (Lord Lytton) को बनाया गया था।

लिटन आयोग के अपना कार्य आरम्भ करने से पहिले ही, कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घट गई। चीनियों ने जापानियों के आक्रमण का उत्तर अपने परम्परानुकूल अस्त्र—जापानी माल का बहिष्कार—से दिया था। उत्तेजना इतनी फैल चुकी थी कि यदा कदा दुर्घटनाएँ घटित हो जाया करती थीं। जनवरी १९३२ के अन्त में, एक ऐसी ही घटना से, जिसमें कि कुछ जापानी भिक्षुओं पर शंघाई में हमला किया गया था, तथा उनमें से एक की मृत्यु हो गई थी, जापान के सैनिक अधिकारियों को चीन को पाठ पढ़ाने का एक बहाना मिल गया। एक बड़ी

सेना शंघाई मे उतारी गई और उसने अन्तर्राष्ट्रीय बस्ती को अपना अड्डा बना कर चेपे (Chapei) उपनगर पर बम बरसाए तथा उसे लगभग जला ही डाला। किन्तु शंघाई पर स्थायी रूप से अधिकार करना जापान का वर्तमान कार्यक्रम नही था। मार्च के आरम्भ मे ही, चीन में लिटन-आयोग के आ जाने से जापानियो ने भी इस अशोभनीय-अमहत्त्वपूर्ण घटना को रफा दफा करना चाहा। लम्बी वार्ताओं के बाद, जिनमें ब्रिटिश मन्त्री ने मध्यस्थ का काम किया, जापानी सेनाएँ मई मे शंघाई से हटाली गई। इसी बीच जापान ने मचूरिया मे कठपुतली मचूकुओ गणतन्त्र (puppet Republic of Manchukuo) स्थापित कर मचू (Manchu) वंश के अन्तिम वशज पु-यि (Pu Yi) को उसका राष्ट्रपति (president) बनाकर अपनी विजय का सुदृढ बना लिया था। इसी वर्ष के अन्तिम भाग में, जापान ने इस गणतन्त्र को जो कि वास्तव में जापानी सलाहकारो की सहायता से प्रशासित होता था, एक स्वतन्त्र राज्य के रूप मे सरकारी तौर पर मान्यता दे दी।

इधर जेनेवा में भी घटनाचक्र चल रहा था। जनवरी २९ को, जबकि शंघाई मे युद्ध चल रहा था आखिर चीनी सरकार ने यह माँग की कि अनुबधपत्र के दसवें और पन्द्रहवें अनुच्छेद लागू किए जायें। इसके बाद ही उसने यह अनुरोध भी किया कि राष्ट्रसघ सभा का एक विशेष अधिवेशन बुलाया जाये। मामले को परिषद् से राष्ट्रसघ-सभा मे ले जाने का कारण स्पष्ट था। छोटे राष्ट्रो ने, जिन्हे कि आक्रमण से सबसे अधिक भय रहता था, प्रारम से ही बडे राष्ट्रो की अपेक्षा, जिन पर अनुशास्तियो को लागू करने का दायित्व पडता, इस बात की उत्सुकता अधिक ही दिखाई थी कि जापान पर बल प्रयोग (coercion) किया जाये। राष्ट्रसघ-सभा मे, छोटे राष्ट्रो का काफी बहुमत था। सभा का विशेष अधि-वेशन मार्च में हुआ और उसमे कई सुन्दर भाषण दिए गए। किन्तु लिटन आयोग की रिपोर्ट प्राप्त होने तक वह अपना निर्णय घोषित नही कर सकी थी तथा लिटन आयोग की रिपोर्ट शरद के पहले तैयार न हो सकती थी। ग्रीष्म मे, जेनेवा नि.शस्त्रीकरण सम्मेलन मे उलझा हुआ था, तथा लुसाने मे क्षतिपूर्ति का निबटारा हो रहा था। इस प्रकार सुदूर पूर्व समस्या लगभग भुला दी गई।

सितम्बर के अन्त में लिटन आयोग का प्रतिवेदन जेनेवा पहुंचा और नवबर में वह परिषद् के समक्ष प्रस्तुत किया गया। यह प्रतिवेदन एक लबा और विस्तृत

दस्तावेज था जिसमें न केवल मचूरिया घटना की ही चर्चा की गई थी, अपितु चीन-जापान सबधो के लगभग हर पहलू पर प्रकाश डाला गया था। जिन विभिन्न बहानो को बताकर जापान मचूरिया पर अपने आक्रमण का औचित्य बताना चाहता था, उनको आयोग ने बिना किसी हिचक के अस्वीकार कर दिया था और यह निर्णय दिया कि स्वतत्र मचूकुओ राज्य पूर्ण गल्प (complete fiction) है। इसके विपरीत, उसने इस बात से भी इकार नही किया कि पिछले दिनो जापान के प्रति चीन का रुख गलत और उत्तेजनात्मक रहा है। उसने यह निर्णय दिया कि न तो पूर्वस्थिति की स्थापना से और न ही बोगस मचूकुओ राज्य को यथावत् बनाए रखने स समस्या का सतोषजनक समाधान हो सकेगा। इसलिए उसने यह सिफारिश की कि राष्ट्रसघ के तत्वावधान मे चीन और जापान के बीच वार्ताएँ चलें तथा उनके परिणामस्वरूप मचूरिया में स्वायत्तशासी शासन की स्थापना की जाए।

लिटन प्रतिवेदन पर राष्ट्रसघ की परिषद्, सभा और सभा की एक समिति ने, जिस कि प्रनुबधपत्र के पन्द्रहवें अनुच्छेद के अनुसार एक प्रतिवेदन तैयार करने का काम सौंपा गया था, क्रमश विचार किया। समिति ने अपना प्रतिवेदन लगभग बिल्कुल ही लिटन प्रतिवेदन क आधार पर तैयार किया। उसमें यह सिफारिश की गई थी कि चीन और जापान राष्ट्रसघ सभा द्वारा गठित की जान वाली एक समिति के तत्वावधान में जापानी सेनाओ को हटा लेने तथा चीन के सार्वभौमत्व क अन्तर्गत मचूरिया मे स्वायत्तशासन की स्थापना के लिए वार्ताएँ चलाएं। उसमें यह सुझाया गया था कि राष्ट्रसघ क सदस्य मचूरिया की वर्तमान सरकार को मान्यता न दें किंतु इसके साथ ही उसने यह भी अस्वीकार कर दिया था कि मचूरिया में पूर्वस्थिति कायम की जाये।

जो भी हो, इस प्रतिवेदन की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता इस बात म थी कि वह इस कुशलता के साथ लिखा गया था और उसमें किसी प्रकार का निर्णय देने से बचा गया था ताकि अनुबधपत्र के सोलहवें अनुच्छेद के अधीन अनुशास्तियाँ लगाने की आवश्यकता न पड़। अनुबधपत्र, पेरिस समझौते और नौ राष्ट्र सधि के अधीन कर्त्तव्यों का उसमें विशेष रूप से उल्लेख किया गया था। किंतु उसमें इस निष्कर्ष से बचा गया था कि जापान ने इन कर्त्तव्यो का उल्लघन किया है। जापान का यह मत उसमे विधिवत् अस्वीकार किया गया था कि मचूरिया अभियान

केवल पुलिस कार्रवाई थी। किन्तु उसमें लिटन प्रतिवेदन का निम्नलिखित भाग उद्धृत कर उसका समर्थन किया गया था कि "वर्तमान मामला एक देश द्वारा दूसरे देश पर राष्ट्रसघ के अनुबधपत्र में निर्धारित समझौते के तरीको को समाप्त करने से पहिले ही युद्ध घोषित कर देने का नही है और न ही वह पडोसी देश की सशस्त्र सेनाओ द्वारा किसी देश के सीमात का अतिक्रमण किए जाने से सम्बन्धित साधारण मामला है।" इस उद्धरण की महत्ता स्पष्ट थी। यदि जापान ने युद्ध का आश्रय नही लिया था, तो उसने अनुबधपत्र का उल्लघन भी नही किया था और सोलहवें अनुच्छेद को लागू करने का प्रश्न ही नही उठता था। अनुशास्तियो पर तो वास्तव में कभी विचार ही नही किया गया। प्रतिवेदन में केवल उसी दड की सिफारिश की गई थी जो कि अमरीकी विदेशी-मन्त्री ने पहिले पहल सुझाया था और जिसमें—मचूकुओ को मान्यता नही देना—अमरीकी सरकार सहयोग देने के लिए तैयार थी।

फरवरी २४, १९३३ को, राष्ट्रसघ सभा ने इस प्रतिवेदन पर अपना मत दिया। उस दिन उपस्थित चवालीस प्रतिनिधिमडलो में से बयालीस ने उसे स्वीकार कर लिया। स्याम ने मत नही दिया और जापान ने उसके विरोध में अपना मत दिया किंतु प्रतिवेदन के निर्विरोध स्वीकार किए जाने पर विवाद से सम्बन्धित एक पक्ष के विपरीत मत का कोई प्रभाव नही पडा। जैसे ही परिणाम की घोषणा की गई, जापानी प्रतिनिधिमडल सभागृह से एक साथ उठकर चला गया। एक माह बाद, जापान ने राष्ट्रसघ की सदस्यता छोडने की विधिवत् सूचना भी दे दी।

प्रतिवेदन स्वीकार करने के बाद, राष्ट्रसघ-सभा ने एक समिति "स्थिति का उतार-चढाव देखने ... और राष्ट्रसघ के सदस्यो तथा गैर सदस्यों को उनकी कार्रवाई और रुख मे मेल लाने के उद्देश्य से सहायता करने के लिए" नियुक्त की। सोवियत सरकार राष्ट्रसघ के राजनैतिक अगो से इस समय भी सहयोग नही करना चाहती थी। अमरीकी सरकार ने सहयोग देना सहर्ष स्वीकार कर लिया और इस समिति के लिए अपना एक प्रतिनिधि नियुक्त कर दिया। किन्तु, राष्ट्रसघ के लिए अब वस्तुतः कोई प्रयत्न करना शेष नही रह गया था। समिति ने दो स्पष्ट मुद्दो—सुदूर पूर्व को शस्त्रास्त्रो का निर्यात और अमान्यता (non-recognition) निर्णय के व्यावहारिक परिणाम—पर विचार किया।

जहाँ तक पहिले प्रश्न का सम्बन्ध है, कोई परिणाम नहीं निकल सका। ब्रिटिश सरकार ने कुछ अबुद्धिमानी पूर्वक ग्रेट ब्रिटेन से चीन और जापान दोनों को ही शस्त्रास्त्र भेजने पर रोक लगा दी। किन्तु जब और किसी ने उसके इस उदाहरण का अनुकरण नहीं किया, तब यह रोक हटा ली गई और इसके बाद दोनों ही पक्षों को शस्त्रास्त्र भेजने की सीमा निश्चित करने का और कोई प्रयत्न नहीं किया गया। इस प्रकार जहाँ तक दूसरे प्रश्न का सम्बन्ध है, समिति ने अमान्य राज्य के साथ डाक-तार और वाणिज्यिक संबंधों तथा ऐसे राज्य में रहने वाले विदेशी कूटनीतिक प्रतिनिधियों की स्थिति का कुछ जटिलताओं की ही छानबीन की। बाहरी दुनिया से संपर्क की अधिकांश व्यावहारिक सुविधाएँ मंचूकुओ को सुलभ रहीं। किन्तु उसका अस्तित्व जापान के सिवाय अन्य किसी भी महत्त्वपूर्ण देश ने मान्य नहीं किया।

राष्ट्रसंघ पर परिणाम
(Consequences to League)

जापान द्वारा मंचूरिया-विजय प्रथम विश्व-युद्ध के बाद सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सीमाचिन्हों (landmarks) में से एक थी। उससे यह सूचित होता था कि वाशिंगटन सम्मेलन द्वारा कुछ समय के लिए टाल दिया गया शक्ति-संघर्ष (struggle for power) अब पुनः प्रारम्भ होने वाला था। वैसे सारे विश्व के लिए इस घटना ने यह सूचना दी कि युद्ध-समाप्ति के बाद, इतने नंगे रूप में जो 'शक्ति-कूटनीति' ("power-politics") किसी प्रकार बन्द होगई थी, उसका पुनः आश्रय लिया जाने वाला था। शांति समझौते के बाद पहिली बार, काफी बड़े पैमाने पर युद्ध किया गया था। (यद्यपि उसे पुलिस कार्रवाई बताया गया था) और विजेता ने काफी क्षेत्र अपने राज्य में मिला लिया था (यद्यपि उसे एक स्वतन्त्र राज्य घोषित किया गया था)। राष्ट्रसंघ के लिए, जिसके अनुबंधपत्र और आदर्शों की अवहेलना की गई थी, इस घटना के परिणाम बहुत अधिक हुए थे। इस निष्कर्ष से बचना मुश्किल था कि राष्ट्रसंघ के सदस्य (विशेषत बड़े राष्ट्र जिन पर अनुबंधपत्र का पालन करवाने का मुख्य भार आवश्यक रूप से था) किसी शक्तिशाली और सुसज्जित राज्य की आक्रमणात्मक कार्रवाई को रोकने के लिए तैयार नहीं थे।

इस असमर्थता को छिपाने के लिए कई बहाने उस समय पेश किए गए थे। यह अग्नि-परीक्षा ऐसे समय पर आई थी जब सारा संसार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सम्पूर्ण व नाशकारी कमी आ जाने से कष्ट-ग्रस्त था। दिखाऊ तौर पर यह कहा जाता था कि यदि अनुबंधपत्र के अनुसार जापान से वित्तीय और आर्थिक सम्बन्ध तोड़ लिए जाएँ, तो उसका अर्थ जानबूझकर वर्तमान आर्थिक कष्ट को और भी भयंकर बना लेना होगा। जापान के अतिरिक्त ब्रिटेन ही राष्ट्रसंघ का एक ऐसा सदस्य था जिसके पास प्रथम श्रेणी का समुद्री बेड़ा था। यदि जापान आर्थिक अनुशास्तियों के उत्तर में अनुशास्ति लगाने वाले राष्ट्रों के चीन स्थित अधीन प्रदेशों पर आक्रमण कर देता, तो अपने सामान्य अड्डों से इतनी दूरी पर ब्रिटिश नौसेना प्रतिरक्षा (defence) शायद ही ठीक तौर से कर पाती। इसलिए यह विचार फैल गया कि यह (जापान सम्बन्धी) मामला एक अपवाद है और उसे पूर्वोदाहरण (precedent) नहीं माना जा सकता। दूरी बहुत अधिक थी। अनुबंधपत्र के इक्कीसवें अनुच्छेद के लेखकों और लोकार्नो संधिकर्त्ताओं ने सुरक्षा के प्रादेशिक स्वरूप (regional character of security) को मान्यता देकर बुद्धिमानी ही की थी। योरोपीय राज्यों से यह आशा नहीं की जा सकती थी कि वे दुनिया के उस पार अनुशास्तियाँ लगाएँ। चीन की असाधारण स्थिति, जिस पर राष्ट्रसंघ-सभा के प्रतिवेदन में सावधानीपूर्वक जोर दिया गया था, से भी राष्ट्रसंघ के नियमों का कड़ाई से पालन नहीं किए जाने का औचित्य सिद्ध हो जाता था। यद्यपि अनुबंधपत्र सुदूर पूर्व में असफल हो चुका था, तदपि उससे यह परिणाम नहीं निकाला जा सकता था कि योरोप में वह प्रभावशाली सिद्ध नहीं होगा मंचूरिया विवाद की अन्तिम अवस्थाओं में, केवल चीनी प्रतिनिधि—जिसने दुःखपूर्वक यह कहा था कि, चीन से "यह स्वीकार कर लेने की आशा नहीं की जा सकती कि संधियों, अनुबंधपत्रों और अन्तर्राष्ट्रीय नियमों के मान्य सिद्धान्तों का प्रवर्तन मंचूरिया की सीमा के पास ही समाप्त हो जाता है"[1]—को छोड़कर सभी के मन में यह आत्मसंतोषकारी भावना भरी हुई थी।

---

1 "Cannot be expected to admit that the operation of treaties, covenants and the accepted principles of international law stops at the border of Manchuria"

इसके अतिरिक्त, मंचूरिया घटना ने राष्ट्रसंघ को एक और लाभ—अमेरिका की सद्भावना की प्राप्ति—सहज ही हो गया था। यह अवश्य ही था कि परिषद की कार्यवाहियों में अमरीकी प्रतिनिधि ने बहुत ही थोड़े समय तक भाग लिया था। यह भी अनिश्चित ही था कि यदि राष्ट्रसंघ आर्थिक अनुशास्तियाँ लगाता, तो अमेरिका उसके साथ सहयोग करता अथवा नहीं। यह स्पष्ट था कि अमरीकी सैनिक सहयोग की आशा किसी भी स्थिति में नहीं की जा सकती थी। किन्तु अमेरिका का राष्ट्रसंघ का सदस्य बन जाना अब भी पहिले की भाँति ही असम्भव था। परन्तु इन सभी मर्यादाओं के होते हुए भी, राष्ट्रसंघ के प्रति अमरीकी लोकमत में एक निश्चित परिवर्तन हुआ। इस प्रश्न (मंचूरिया) पर राष्ट्रसंघ के हर निश्चय का अमरीकी सरकार ने प्रकट रूप से स्वागत किया—अब तक अमेरिका की जो नीति रही थी, उसमें यह एक नई बात थी। इस दशा में सम्भवतः और अधिक प्रगति हुई होती किन्तु निःशस्त्रीकरण सम्मेलन में अमेरिका द्वारा भाग लिए जाने के हतोत्साहकारी प्रभाव ने इसमें रुकावट डाल दी।

मंचूरिया विवाद के ही समय, राष्ट्रसंघ को दो और युद्धों—दोनों ही दक्षिण अमेरिका में हुए—की समस्या का सामना करना पड़ा। इस बार भी अमरीकी सरकार ने राष्ट्रसंघ की कार्यवाही का उत्साहपूर्वक समर्थन किया। इनमें से पहिले युद्ध का सम्बन्ध चाको (Chaco) से था, जो कि दूरस्थ एवं निर्जन (uninhabited) प्रदेश था तथा जिसके लिए बोलिविया और पैराग्वे (Paraguay) में वर्षों से संघर्ष चल रहा था। सन् १९३२ में नियमित युद्ध प्रारम्भ हो गया और अगले वर्ष पैराग्वे ने युद्ध की विधिवत् घोषणा कर दी। राष्ट्रसंघ ने इस विवाद का निपटारा पहिले प्रसंविदापत्र के अनुच्छेद ग्यारह के अधीन और बाद में पन्द्रहवें अनुच्छेद के अधीन किया। उसके लगभग सभी सदस्यों और अमेरिका ने दोनों ही युद्धरत (belligerent) राष्ट्रों को युद्ध सामग्री भेजे जाने पर रुकावट लगा दी किन्तु हर प्रयत्न निष्फल गया। युद्ध चलता ही रहा और १९३५ में उसकी समाप्ति पर पैराग्वे की विजय हुई। दूसरा विवाद पेरू (Peru) द्वारा कोलम्बिया की छोटी सी लेटिशिया (Leticia) बस्ती और उसके निकटवर्ती क्षेत्र पर कब्जा कर लेने से सम्बन्धित था। कोलम्बिया ने पन्द्रहवें अनुच्छेद के अधीन परिषद् से अपील की। इस पर परिषद् ने मार्च १९३३ में पेरू

से कोलंबिया के क्षेत्र से हट जाने का अनुरोध किया। पहिले तो पेरू ने इस अनुरोध की अवहेलना की किन्तु इसी बीच पेरू में ही कुछ ऐसी आंतरिक घटनाएं घटी कि पेरू का रुख अधिक बुद्धिसगत हो गया। इस वर्ष के अन्त में एक राष्ट्र-सघ आयोग कोलंबिया को उक्त जिला लौटाए जाने का अधीक्षण करने (to superintend) के लिए लेटिशिया गया। किन्तु न तो चाको में राष्ट्रसघ की सफलता और न ही लेटिशिया मे उसकी सफलता से मचूरिया और नि.शस्त्रीकरण सम्मेलन जैसी गभीर समस्याओ के प्रति ससार की चिंताएं दूर हो सकी।

६. निःशस्त्रीकरण सम्मेलन
(The Disarmament Conference)

यह केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है कि यदि निःशस्त्रीकरण सम्मेलन १६२५ और १६३० के बीच में हुआ होता तो उसे अपने कार्य में सफलता मिली होती। किंतु इतना निश्चित है कि फरवरी १६३२ में जब उसका अन्तिम अधिवेशन हुआ—जब आर्थिक सकट चरम-सीमा पर था और जापानियों ने शघाई पर हमला किया था—तब उसकी सफलता के लगभग सभी आसार मिट चुके थे। मचूरिया-विफलता (fiasco) के बाद ही हुई उसकी असफलता उस सकट-काल की समाप्ति थी जो कि १६३० में प्रारम्भ हुआ था। जो भी हो, सम्मेलन का विवरण देने से पूर्व उन दस वर्षों पर यहाँ संक्षिप्त दृष्टिपात करना आवश्यक है जो सम्मेलन के अनुकूल वातावरण तैयार होने लगे।

निःशस्त्रीकरण समस्या
(The Disarmament Problem)

मित्र-राष्ट्रों ने वर्सेलीज-संधि में यह घोषणा की थी कि जर्मनी का लगभग पूर्ण निःशस्त्रीकरण का उद्देश्य "सभी राष्ट्रों के शस्त्रीकरण का व्यापक सीमन (limitation) प्रारम्भ करना संभव बनाना" था। अनुबन्धपत्र के आठवें अनुच्छेद द्वारा राष्ट्रसघ के सदस्यों ने यह स्वीकार किया था कि "राष्ट्रीय-सुरक्षा का ध्यान रखते हुए किसी भी राष्ट्र के शस्त्रास्त्रों की निम्नतम सीमा निर्धारित करना शांति बनाए रखने के लिए आवश्यक है।" इसलिए, एक तरफ तो मित्र-राष्ट्र सरकारों ने जर्मनी को यह वचन (जो कि विधित (legally) नहीं, तो नैतिक दृष्टि से तो बन्धनकारी था ही) दिया था कि जर्मनी को निःशस्त्रीकरण कर दिए जाने के बाद व्यापक निःशस्त्रीकरण किया जाएगा, और दूसरी ओर उन्होंने शस्त्रास्त्रों की कमी में "राष्ट्रीय सुरक्षा" (national safety) को सर्व-प्रमुख मान लिया था। इन दोनों सिद्धान्तों में सघर्ष ही निःशस्त्रीकरण समस्या थी।

मनुबन्धपत्र के आठवें अनुच्छेद के अनुसार राष्ट्रसंघ-परिषद् का यह कर्त्तव्य था कि वह "विभिन्न सरकारों द्वारा विचार और कार्रवाई" के लिए शस्त्रास्त्रों में कमी सम्बन्धी योजनाएँ बनाये। नवम्बर १६२० में, परिषद् ने इस कार्य में उसे सहायता पहुँचाने के लिए एक "स्थायी मिश्रित आयोग" ("Temporary Mixed Commission") की स्थापना की जिसमें अ-सेना (civilians) और सेना दोनों ही के प्रतिनिधि थे। किन्तु निःशस्त्रीकरण के क्षेत्र में पहिली सफलता वाशिंगटन सम्मेलन में मिली। इस सम्मेलन में, प्रमुख नौसैनिक राष्ट्रों (naval powers) की नौसेना का सीमन टनों और अनुपातों की एक सरल सी सांख्यिक योजना (numerical scheme) द्वारा कर दिया गया था। अब यह राष्ट्रसंघ का काम था कि वह उस जमाने की सेना के सबसे महत्त्वपूर्ण अंग— थल सेना (क्योंकि वायु-सेना अभी अपनी शैशवावस्था में ही थी) पर भी यह सिद्धान्त लागू करे। अस्थायी मिश्रित आयोग के ब्रिटिश प्रतिनिधि ने १६२२ में सेनाओं के सीमन के लिए एक सांख्यिक योजना प्रस्तुत की। उसके अनुसार सेनाएँ ३०,००० सैनिकों के कल्पित यूनिटों (imaginary units) में विभाजित की जानी थीं और कुछ यूनिट (युद्धपोतों के समान) हर राष्ट्र के लिए निर्धारित किए जाने थे। इस प्रकार फ्रांस को छः यूनिट या १८०,००० सैनिकों की सेना मिलनी थी तो इटली को चार यूनिट, ग्रेट ब्रिटेन को तीन इत्यादि। दुर्भाग्यवश इस सीधी सादी योजना की लगभग हर योरोपीय देश के सैनिक विशेषज्ञ ने आलोचना की। दिखाऊ तौर पर यह तर्क किया गया कि कुछ टनों का युद्धपोत तो थोड़े-बहुत अंशों में एक प्रामाणिक वस्तु है और बन्दूकों के रूप में उसका अधिकतम पूरक (maximum complement) ज्ञात है किन्तु ३०,००० सैनिकों के यूनिट की शक्ति का कोई माप नहीं हो सकता तथा उसके शस्त्रास्त्रों के अनुपात में उसकी शक्ति लगभग बिलकुल ही अनिश्चित हो सकती है। इस प्रकार थल-सेना निःशस्त्रीकरण सम्बन्धी ठोस योजना को निंदास्पद तरीके से टाल दिया गया।

किन्तु अनुच्छेद आठ तो ज्यों का त्यों बना हुआ था उसके बारे में कुछ न कुछ कदम उठाना आवश्यक था ही। तो ऐसे अवसर पर "राष्ट्रीय सुरक्षा" की शर्त पर भरोसा करते हुए, फ्रांसीसी प्रतिनिधिमंडल ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि निःशस्त्रीकरण के लिए अतिरिक्त सुरक्षा आवश्यक शर्त है। फ्रांसीसियों

के इस दृष्टिकोण को ब्रिटिश प्रतिनिधिमंडल का भी समर्थन मिला। अगले तीन वर्षों में, प्रारूप पारस्परिक सहायता संधि (Draft Treaty of Mutual Assistance), जेनेवा उपसंधि और लोकार्नो संधियों की धूम रही। इस सम्पूर्ण अवधि में नि.शस्त्रीकरण के क्षेत्र में दो बातों को छोड़ और कुछ भी प्रगति नहीं हुई। एक तो, वाशिंगटन समझौते के आधार पर छोटे-छोटे राष्ट्रों का नौसैनिक शस्त्रीकरण (armaments) सीमित करने का असफल प्रयास और दूसरे, शस्त्रों का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार नियन्त्रित करने के लिए एक समझौता जिस पर कभी भी अमल नहीं किया गया।

लोकार्नो संधियों पर हस्ताक्षर और राष्ट्रसंघ में जर्मनी के प्रवेश की सम्भावना ने नि शस्त्रीकरण की गाड़ी में एक बार पुनः गति ला दी। लोकार्नो सम्मेलन में की गई अन्तिम उपसंधि में, हस्ताक्षरकर्त्ताओं ने अपने आपको इस बात के लिए वचनबद्ध किया था कि इन समझौतों के परिणामस्वरूप, "अनुबंधपत्र के आठवें अनुच्छेद में उपबन्धित नि.शस्त्रीकरण प्रभावपूर्ण तरीके से तथा शीघ्र ही किया जा सकेगा।" इस समय के बाद से जर्मनी द्वारा अन्य राष्ट्रों को भी *नि.शस्त्र करने की माँग नि.शस्त्रीकरण कार्रवाई का एक निर्णायक घटक* (determining factor) हो गई। दिसम्बर १९२५ में, परिषद् ने एक नि.शस्त्रीकरण सम्मेलन तैयारी आयोग (Preparatory Commission for the Disarmament Conference) की नियुक्ति की जिसकी पहली बैठक मई १९२६ में हुई। जर्मनी, अमेरिका और सोवियत-संघ सभी से इस आयोग के सदस्य बनने का अनुरोध किया गया था। प्रथम दोनों देशों ने तुरन्त ही और सोवियत संघ ने अगले वर्ष यह निमंत्रण स्वीकार कर लिया।

फिर भी, *कार्य की प्रगति धीमी ही हुई। सन् १९२६ का अधिकांश भाग* दो प्राविधिक उप-आयोगों ("technical" sub commissions) के कार्य में ही व्यतीत हो गया जो यह परिभाषित करने का कठिन कार्य कर रहे थे कि किस प्रकार के शस्त्रास्त्र सीमित और कम किए जाएँ। जब ब्रिटिश और फ्रांसीसी प्रतिनिधिमंडल ने निःशस्त्रीकरण-समझौतों के प्रारूप प्रस्तुत किए, तब कहीं जाकर मार्च १९२७ में तैयारी आयोग ने वास्तव में अपने विषय को छुआ। ये प्रारूप केवल सत्याभ समझौते (dummy convention) ही थे। उनमें कोई आँकड़े नहीं दिए गये थे बल्कि एक रूपरेखा यह बताने के लिए दी

गई थी कि क्या और किस प्रकार सीमित किया जाये। किन्तु फिर भी वे अत्यधिक मत विभिन्नताएं सूचित करते थे जिनमे से अनेक तो मूलभूत थी। सैनिको के मामले मे, फ्रासीसी प्रतिनिधिमडल केवल सेवारत सैनिको (man on service) की ही सख्या सीमित करना चाहता था जबकि ब्रिटिश, अमरीकी और जर्मन प्रतिनिधिमडल प्रशिक्षण प्राप्त सभी व्यक्तियो की सख्या सीमित करने के पक्ष में थे। जहाँ तक सैनिक सामग्री का प्रश्न है, जर्मनी के प्रतिनिधिमडल की यह माँग थी कि सभी महत्त्वपूर्ण शस्त्रास्त्रो की स्पष्ट सांख्यिक सीमा निर्धारित की जाये जैसी कि वर्सेलीज की सधि में उसके (जर्मनी) लिए निश्चित की गई थी। फ्रासीसी प्रतिनिधिमडल अप्रत्यक्ष उपाय—आय व्ययक में ही सैनिक सामग्री पर व्यय की सीमा बाँध कर (सीमन का केवल यही प्रकार जर्मनी पर अभी तक लागू नही किया गया था)—द्वारा यही कार्य करना चाहता था जबकि ब्रिटिश और अमरीकी प्रतिनिधिमडलो का यह विचार था कि सैनिक सामग्री का सीमन अव्यवहार्य (impracticable) है। नौसैनिक सामग्री के विषय मे फ्रासीसी और इटालियन प्रतिनिधिमडल की केवल यही माँग थी कि समुद्री ६.. का सीमन कुल टन (total tonnage) निश्चित कर लिया जाये। इसके विपरीत, ब्रिटिश और अमरीकी प्रतिनिधिमडल हर प्रकार के जहाज का अलग अलग सीमन चाहते थे। आय व्ययक के सम्बन्ध में फ्रासीसी प्रतिनिधिमडल व्यय का सीमन चाहता था जबकि ब्रिटिश और इटालियन प्रतिनिधिमडल परस्पर सम्मत रूप मे व्यय का विस्तृत प्रकाशन आवश्यक समझते थे। अमरीकी और जर्मनी प्रतिनिधिमडल आय व्यय के सम्बन्ध मे किसी प्रकार के ठहराव करना उचित नही समझते थे। आयोग ने इन विभिन्न दृष्टिकोणों को लिपिबद्ध किया और आगे किसी समय विचार के लिए वह स्थगित हो गया।

इसी बीच, अमरीकी सरकार ने एक अप्रत्याशित प्रस्ताव रखा। इन विलबो से अधीर हो, उसने वाशिंगटन नौसेना-सधि (Naval Treaty) के अन्य हस्ताक्षरकर्त्ताओं को एक सम्मेलन मे भाग लेने के लिए आमत्रित किया जिसमे कि उन जहाजो के सम्बन्ध में विचार किया जाना था जो कि उक्त सधि में शामिल नहीं किए जा सके थे। फ्रास ने इस निमत्रण को अस्वीकार कर दिया। यदि मौका आ ही जाता तो वह इस बात के लिए तैयार था कि नौसेना सम्बन्धी जो बातें वह स्वीकार करे, उनके बदले मे उसको कुछ ऐसी बातें स्वीकार की जाएं

जिन्हे वह अपने हित में अधिक महत्त्वपूर्ण समझता है। यदि वह केवल नौसैनिक निःशस्त्रीकरण पर ही विचार-विमर्श मे शामिल होता, तो यह बात स्पष्ट ही उसके हित में नहीं होती। इटली ने भी फ्रांस का अनुकरण किया। किन्तु ग्रेट ब्रिटेन और जापान ने सम्मेलन में शामिल होना स्वीकार कर लिया। तदनुसार (accordingly), जून १६२७ में जेनेवा में तीन-राष्ट्र सम्मेलन हुआ।

ऐसा प्रतीत होता है कि अमरीकी और ब्रिटिश दोनो ही सरकारो ने इस कठिनाई का महत्त्व बहुत कम आंका था कि वाशिंगटन मे निर्धारित सीमाओं को उन जहाजो पर जो युद्धपोत नही हैं (non-capital ships); युद्धपोत-भिन्न जहाज) लागू करना कितना कठिन है। अमरीकी प्रतिनिधिमंडल ने यह प्रस्ताव रखा कि ५ : ५ : ३ का वाशिंगटन अनुपात गश्ती जहाजो (cruisers), विध्वंसकों (destroyers) और पनडुब्बियों (submarines) पर भी लागू किया जाये और इसी आधार पर उसने आंकड़े प्रस्तुत किये। ब्रिटिश प्रस्ताव इससे भी अधिक जटिल था। ब्रिटिश सरकार का यह मत था कि उसके विशाल साम्राज्य भर में फैले अड्डो और मोर्चों (communications) के कारण ब्रिटेन को कम से कम सत्तर गश्ती जहाजो की आवश्यकता है। अभी तक ग्रेट ब्रिटेन जितने गश्ती जहाजो का निर्माण कर चुका था या कर रहा था, उनसे यह सख्या काफी अधिक थी। इसलिए उसने यह प्रस्ताव रखा कि गश्ती जहाजो को दो वर्गों में, कुल टनो और तोपो की शक्ति के अनुसार, विभाजित किया जाये—बड़े गश्ती जहाजो पर वाशिंगटन अनुपात लागू किया जाये और छोटे गश्ती जहाजो पर सख्या सम्बन्धी कोई बधन न हो। उसने यह सुझाव भी रखा कि युद्ध-पोतो (capital ships) का आकार घटाया जाये। संक्षेप में, ब्रिटिश सरकार जहाजो के आकार में चहुँमुखी कमी (all-round reduction) करके खर्च मे कमी करना चाहती थी किन्तु छोटे गश्ती जहाजों के सम्बन्ध में कोई बन्धन नही चाहती थी या उनकी सीमित-सख्या बहुत अधिक निर्धारित कराना चाहती थी। अमरीकी सरकार किसी भी प्रकार के जहाज का आकार घटाने की कोई उपयोगिता नही समझती थी। वह इस बात पर विचार करने के लिए तैयार नही थी कि वर्तमान गश्ती जहाजो की सख्या से अधिक सख्या निश्चित की जाये तथा उसे यह सदेह था कि ब्रिटिश सरकार वाशिंगटन मे स्वीकार किए गये समानता के सिद्धान्त से बचना चाहती है। जापानी प्रतिनिधि-मडल की स्थिति बीच की थी और उसके रुख से यह प्रतीत होता था कि उक्त

दोनों विरोधी जिस बात पर सहमत हो जाएँगे, उसे वह स्वीकार कर लेगा। किन्तु गश्ती जहाज सम्बन्ध मतभेद पर कोई समझौता नहीं हो सका तथा सम्मेलन की समाप्ति पर यह स्वीकार कर लिया गया कि सम्मेलन असफल रहा है। निःशस्त्रीकरण-प्रयास की यह प्रथम प्रकट पराजय थी।

जेनेवा नौसैनिक सम्मेलन की असफलता की काली छाया १६२७ की राष्ट्र-संघ-सभा पर भी पड़ी और उसने वह मार्ग अपनाते हुए, जो कि जेनेवा में नि.शस्त्रीकरण के आसार अच्छे नहीं दिखने पर अपनाया जाता था, यह सिफारिश की कि सुरक्षा समस्या का और अधिक अध्ययन किया जाये। लिट्विनोव (Litvinov) के नेतृत्व में एक सोवियत प्रतिनिधि-मंडल के प्रथम आगमन से तैयारी आयोग (Preparatory Commission) के शरद् अधिवेशन में जान आ गई। लिट्विनोव ने प्रभावपूर्ण ढंग से यह अपील की कि नि.शस्त्रीकरण पूर्ण (total) और सार्वदेशिक (universal) हो। किन्तु इस प्रस्ताव को कोई समर्थन नहीं मिला। तथा बसंत अधिवेशन में जो गतिरोध (deadlock) दूर नहीं किया जा सका था, उसके कारण लिट्विनोव के प्रस्ताव से कम क्रांतिकारी आधार पर भी प्रगति नहीं की जा सकी। ऐसी परिस्थितियों में, आयोग ने राष्ट्रसंघ सभा से संकेत पाकर पंचनिर्णय और सुरक्षा समिति (committee on Arbitration and Security) नियुक्त की जिसके कार्य का विवरण पहिले ही दिया जा चुका है। दो वर्षों तक निःशस्त्रीकरण समस्या एक बार फिर पृष्ठभूमि में चली गई।

सन् १६२६ से पहले आकाश साफ होने के आसार दिखाई नहीं दिये। इस वर्ष हर्बर्ट हूवर अमेरिका का राष्ट्रपति बना तथा उसके तीन महीने बाद मेकडॉनल्ड की द्वितीय मजदूरदलीय सरकार ग्रेट ब्रिटेन में सत्तारूढ हुई। इन परिवर्तनों ने संभवतः ऐसे समझौतों को निकट लाने में सहायता की जिसकी दोनों पक्ष बहुत दिनों से आकांक्षा करते थे। शरद् में मेकडॉनल्ड ने अमेरिका की यात्रा की। इस यात्रा के परिणामस्वरूप, यह निश्चय किया गया कि जनवरी १६३० में लंदन में एक और नौसैनिक सम्मेलन का आयोजन किया जाए। इस बार, फ्रांस और इटली तथा जापान ने भी आमंत्रण स्वीकार कर लिया किन्तु फ्रांस ने नौसेना, थल सेना तथा वायु-सेना सम्बन्धी शस्त्रास्त्रों के अन्योन्याश्रय सम्बन्ध (interdependence) की बात इस बार भी दोहराई।

लदन नौसैनिक सम्मेलन (London Naval Conference) का मार्ग इसके पूर्वगामी (predecessor) सम्मेलन से बहुत भिन्न था। ग्रेट ब्रिटेन ने गश्ती जहाजो की अपनी आवश्यकता सत्तर से पचास कर दी थी। इस सख्या से समझौता हो सकना सभव हो गया। यद्यपि ग्रेट ब्रिटेन और अमेरिका दोनो ही के लिए यह निःशस्त्रीकरण की अपेक्षा पुनर्शस्त्रीकरण (rearmament) का ही कदम था। इस बार फ्रास ने वही रुख अपनाया जो पहले ब्रिटेन ने दिखाया था। उसके प्रतिनिधियो ने इस बात पर जोर दिया कि उसके उपनिवेश-प्रदेशो (colonial possessions) के कारण यह आवश्यक है कि फ्रास गश्ती-जहाजो का एक बडा बेडा रखे। उन्होने इस आग्ल-अमरीकी प्रस्ताव को कि वाशिंगटन अनुपात गैर-युद्धपोतो (non-capital ships) जहाजो पर भी लागू किया जाए; तथा इटली का यह दावा कि इस मामले में उसे फ्रास के बराबर माना जाए ये दोनो ही बातें अस्वीकार कर दी। इन सम्मेलन की इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि जापान ने उस पर वाशिंगटन-सन्धियो द्वारा लादी गई असमानताओ के प्रति प्रथम बार खुले आम असतोष व्यक्त किया और सभी प्रकार के जहाजो के मामले मे ग्रेट ब्रिटेन तथा अमेरिका के साथ समानता (parity) का अस्थायी दावा प्रस्तुत किया। अन्त मे काफी कठिनाई के बाद, उसे इस बात के लिए राजी कर लिया गया कि वह वाशिंगटन अनुपात (जिसके अनुसार उसे ब्रिटिश या अमरीकी टनो का ६० प्रतिशत मिला था,) को बडे गश्ती जहाजो के लिए इस शर्त पर स्वीकार करले कि छोटे गश्ती-जहाजो और विध्वसको के लिए उसका यह अनुपात ७० प्रतिशत होगा तथा पनडुब्बियों के मामले में उसे समानता प्राप्त रहेगी। अप्रैल में इसी आधार पर एक सीमन सधि (limitation treaty) की गई। फ्रास की आपत्तियां दुराग्रहपूर्ण सिद्ध हुईं। इस कारण यह समझौता केवल ग्रेट ब्रिटेन, अमेरिका और जापान तक ही सीमित रहा। इसके साथ ही पांचो राष्ट्र इस बात पर सहमत हो गए कि वाशिंगटन-सन्धि की अवधि मे पाँच वर्षों की और वृद्धि कर दी जाए।

इस आशिक सफलता ने राष्ट्रसघ को इस दिशा मे पुनः प्रयत्न करने की प्रेरणा दी। राइनभूमि खाली करा लेने के बाद, जर्मनी अपना सारा ध्यान निःशस्त्रीकरण पर केन्द्रित कर सकता था, अतः इस क्षेत्र में अधिकाधिक प्रगति के लिए जेनेवा मे जर्मनी का जोर माह प्रति माह बढता ही गया। यह निश्चय

किया गया था कि तैयारी आयोग का अतिम अधिवेशन १६३० के शरद में हो और उसके बाद, चाहे कोई भी विषय निर्णीत होने से क्यो न रह गया हो, बहुत समय से स्थगित चला आरहा नि.शस्त्रीकरण सम्मेलन आयोजित किया जाये। अन्तिम अधिवेशन में भी सीमन-सिद्धान्तो सम्बन्धी मतभेदो को दूर करने की दिशा में प्रगति नही की जा सकी जोकि आयोग की पिछली कार्रवाइयो में भी बराबर रोडे अटकाते चले आरहे थे। किन्तु एक अस्थायी प्रारूप समझौता (dummy draft convention) (जिसमें इस समय भी आँकडे नही दिए गए थे) बहुमत द्वारा स्वीकार किया गया। जो उस से असहमत थे, उन्होंने अपनी आपत्तियाँ और शर्ते पाद टिप्पणियो (foot-notes) में दे दी किन्तु इस प्रकार के दस्तावेज का व्यावहारिक मूल्य बहुत कम था। सच पूछा जाए तो सम्मेलन ने उसका उपयोग भी नही किया। किन्तु उस से नि.शस्त्रीकरण सबंधी वे मूलभूत मतभेद सामने आगए जिनका सामना सम्मेलन को करना पड सकता था। तैयारी आयोग के पाँच वर्षो के श्रम का केवल यही परिणाम सामने आया था। अब मार्ग प्रशस्त हो चुका था। सम्मेलन २ फरवरी १६३२ को आयोजित किया गया।

नि शस्त्रीकरण सम्मेलन
(The Disarmament Conference)

सम्मेलन मे इकसठ राज्यो, जिनमे से पाच राज्य राष्ट्रसघ के सदस्य भी नही थे, के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे और उसका अध्यक्ष आर्थर हेन्डरसन बनाया गया था। सन् १६३१ में अपनी नियुक्ति के समय. हेन्डरसन ब्रिटिश मजदूरदलीय सरकार में विदेशी मन्त्री थे। किन्तु अगस्त में इस सरकार ने स्तीफा दे दिया तथा आगामी आम चुनावो में हेन्डरसन ससद (Parliament) का सदस्य नही चुने जा सके। इसलिए एक गैर-सरकारी व्यक्ति की हैसियत से ही उन्होने इस सम्मेलन की अध्यक्षता की थी। यह एक अप्रत्याशित दुर्योग था। यदि इस सम्मेलन का अध्यक्ष ब्रिटिश सरकार का उच्च पदाधिकारी रहा होता, तो वह सम्मेलन को मामलो पर विचार करने और निर्णय लेने में सहायता करने मे अधिक समर्थ हो सकता था। सम्मेलन का अन्तिम परिणाम तो सभवतः वही होता जो कि होना था किन्तु फिर भी सम्मेलन को गिराने वाल टाल-मटोल और हिचकिचाहट से तो बचा ही जा सकता था। ब्रिटिश और फ्रासीसी दोनो ही

सरकारों ने जेनेवा मे मन्त्रिमण्डलीय प्रतिनिधि—जो सदैव नीति-सचालन करते रहें—*नियुक्त न कर स्थिति को और भी खराब बना दिया।* जर्मनी की आतरिक स्थिति ने और भी बुरा प्रभाव डाला। मई १६३२ में, ब्रूनिग (Bruning) की कमजोर और समझौते के मार्ग पर चलने वाली सरकार अपदस्थ हो गई और उसका स्थान पापेन (Papen)—जो कि राष्ट्रीय समाजवादियो से मोर्चा लेने की महत्ता के प्रति अत्यन्त सजग था—की चालाक और क्रूर सरकार ने लिया। इन छोटी छोटी बाधाओ तथा अर्थ-सकट द्वारा किए गए सर्वनाश एव जापान द्वारा मचूरिया पर हमले ने सम्मेलन के भाग्य का फैसला हो कर डाला।

जहाँ तक निःशस्त्रीकरण का प्रश्न है, तैयारी आयोग ने इस दिशा में मार्ग प्रशस्त करने की अपेक्षा मार्ग के गड्ढों की सूचना ही अधिक दी थी। इसीलिए इसमें कोई आश्चर्य की बात नही कि नि.शस्त्रीकरण समेम्लन ने आयोग से लगभग बिलकुल ही भिन्न मार्ग अपनाया यद्यपि आयोग के परिश्रम का सम्मान *करने के लिए उसने यह प्रस्ताव स्वीकार किया था कि आयोग द्वारा तैयार किए* गए प्रारूप समझौते को वह "आधार" मानकर चलेगा। सम्मेलन के सदस्यों में एक स्मरण-पत्र वितरित कर फ्रासीसी प्रतिनिधिमण्डल ने इस दिशा में पहिला कदम उठाया। इस स्मरणपत्र के द्वारा उसने यह प्रस्ताव रखा था कि राष्ट्रसंघ की अपनी पुलिस हो; जिन राष्ट्रो के पास युद्धपोत, बडी पनडुब्बियाँ या भारी तोपखाना हो उनका यह कर्त्तव्य हो कि आवश्यकता पडने पर वे राष्ट्रसघ पुलिस को उनका उपयोग करने दें। इसके साथ ही बमवर्षक वायुयानो का प्रयोग करने का एकाधिकार राष्ट्रसघ पुलिस को ही दिया जाना था। अनेकों छोटे-छोटे *यारोपीय राष्ट्रो ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया था;* किन्तु यह प्रस्ताव ग्रेट ब्रिटेन और अमेरिका—जो अधिराष्ट्रीय सेना (supernational military force) के सुझाव का सदा ही विरोध करते थे—तथा जर्मनी, जो इस प्रस्ताव को नि.शस्त्रीकरण के वास्तविक प्रश्न को टालने की एक और कुचेष्टा मानता था, को फूटी आंखों नही सुहाया। फ्रास ने भी राष्ट्रसघ पुलिस सगठित करने पर और अधिक जोर नही दिया। किन्तु सम्मेलन निःशस्त्रीकरण सबधी किसी ठोस कदम पर जब भी विचार करता, तब यह विश्वास के साथ कहा जा सकता था कि फ्रासीसी प्रतिनिधिमडल सम्मेलन को इस बात का पुनः स्मरण अवश्य कराएगा कि विचाराधीन प्रस्ताव पर फ्रास का अनुमोदन प्राप्त करने के लिए फ्रास की सुरक्षा मे कुछ न कुछ वृद्धि होना आवश्यक है।

ब्रिटिश विदेशमत्री के उद्घाटन भाषण में निहित एक प्रस्ताव का सम्मेलन के काय पर सीधा प्रभाव पडा। सर जान साइमन ने यह सुझाव रखा कि सम्मेलन "परिणामात्मक सीमन" ("qualitative limitation") पर विचार करे अर्थात् शस्त्रास्त्रो का सीमन सख्या द्वारा न किया जाये, (इसी प्रकार के सीमन पर तैयारी आयोग ने मुख्य रूप से विचार किया था) बल्कि कुछ ऐसे विशिष्ट प्रकार के शस्त्राशस्त्रो को बिलकुल ही समाप्त कर दिया जाये जो प्रतिरक्षात्मक युद्ध (defensive warfare) की अपेक्षा आक्रमणात्मक युद्ध के काम अधिक आ सकते हो। इस सुस्पष्ट प्रस्ताव को बहुत अधिक समर्थन मिला। भारी तोपो, टेंको, पनडुब्बियो, बमवर्ष के वायुयानो और गैस को अनेक प्रतिनिधिमडलो ने विशेष रूप से आक्रमणात्मक शस्त्रो की कोटि में रखा। किन्तु जब यह प्रश्न नौसैनिक, थल-सैनिक और वैमानिक विशेषज्ञो के तीन आयोगो के सामने रखा गया, तो यह स्पष्ट हो गया कि आक्रमणात्मक और प्रतिरक्षात्मक शस्त्रो मे सब की एक राय हो सकना कठिन है। एक ओर यदि ब्रिटिश और अमरीकी प्रतिनिधिमडल पनडुब्बियो को आक्रमणात्मक और युद्धपोतो को प्रतिरक्षात्मक मानते थे, तो दूसरी ओर, अन्य प्रतिनिधिमडल इससे ठीक उलटा सोचते थे। कई प्रतिनिधिमडल सभी प्रकार के टैंको को आक्रमणात्मक मानते थे। किन्तु फ्रासीसी प्रतिनिधिमडल केवल ७० टन से अधिक के टैंक को (जो कि अभी अस्तित्व मे भी नही आया था)—को आक्रमणात्मक मानता था जबकि ब्रिटिश प्रतिनिधिमडल ने पच्चीस टन की सीमा सुझाई थी। केवल जर्मन प्रतिनिधिमडल के पास ही एक सुसगत कसौटी थी। उसके अनुसार वर्सेलीज की सधि मे निषिद्ध सभी शस्त्रास्त्र आक्रमणात्मक कोटि मे आते थे और बाकी सब प्रतिरक्षात्मक श्रेणी मे। किन्तु इस कसौटी के होते हुए भी, वे एक स्पष्ट असगत बात कर गये। उनकी यह मान्यता थी कि सभी सैनिक वायुयान आक्रमणात्मक है किन्तु असैनिक वायुयानो, जो कि वर्सेलीज की सधि में सम्मिलित किए जाने से छूट गए थे, पर नियन्त्रण के किसी भी सुझाव का वे जोरदार विरोध करते थे। केवल रासायनिक युद्ध आयोग (Commission on Chemical Warfare) ने ही यह निर्विरोध सिफारिश की थी कि युद्ध में हानिकर गैसो (noxious gases) का प्रयोग निषिद्ध कर दिया जाये (इतनी सफलता तो १९२५ में हुए एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन को पहिले ही मिल चुकी

यो) किन्तु इस प्रकार की गैसो को बनाने या उन्हे अपने पास रखने पर नियन्त्रण के लिए कोई योजना नही बनाई जा सकी।

विभिन्न आयोग इन स्वल्प परिणामो (meagre results) की सूचना जून से पहले नही दे सके। लुसाने सम्मेलन की ओर ध्यान आकृष्ट हो जाने से इसमे और भी विलब हो गया। अमेरिका ने एक प्रस्ताव रखा जिसका आधारभूत सिद्धान्त यह था कि वर्तमान सशस्त्र सेना और शस्त्रास्त्रो में एक तिहाई कमी की जाये। ग्रेट ब्रिटेन ने इस प्रस्ताव का नम्रतापूर्ण किन्तु अनमने भाव से स्वागत किया क्योकि उसे यह सदेह था कि यह प्रस्ताव ग्रेट ब्रिटेन के सस्ते जहाजों मे कमी करने की कपटपूर्ण योजना है। जुलाई के मध्य में, जब विभिन्न प्रतिनिधिमडल इस आशय के एक प्रस्ताव पर कि ग्रीष्मावकाश से पहिले कितनी प्रगति की जा चुकी है, विचार करने के लिए एकत्रित हुए, तो उन्हे यह जानकर बडी उलझन हुई कि इस दिशा में ऐसी कोई सफलता ही प्राप्त नही हुई थी जिसका उल्लेख किया जा सके। जुलाई २० को सम्मेलन के सामने एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया जिसमे यह उल्लिखित किया गया था कि निम्नलिखित बातो पर समझौता हो गया है :—(१) बमवर्षा (air bombardment) निषिद्ध करना, वायुयानो की सख्या सीमित करना तथा असैनिक वायुयानो का विनियमन (regulation), (२) भारी तोपखाना और एक अधिकतम आकार—जो कि अभी निश्चित नही किया गया था—के टैंको (tanks) को सीमित करना; और (३) रासायनिक युद्ध निषिद्ध करना। इकतालीस प्रतिनिधिमडलो ने इस प्रस्ताव के पक्ष में मत दिया। आठ (इटली सहित) ने मत ही नही दिया और दो (जर्मनी तथा सोवियत सघ) ने उसका विरोध किया। जर्मन प्रतिनिधि ने जो सदा ही इस सिद्धान्त पर जोर देता रहा कि अन्य राष्ट्रो को भी वर्सेलीज की सधि के अनुसार अपना निःशस्त्रीकरण कर लेना चाहिए या पुनर्शस्त्रीकरण (rearming) का जर्मनी का अधिकार मान लेना चाहिए, यह घोषणा की कि सम्मेलन के भावी कार्य में जर्मनी केवल तब ही भाग लेगा, जबकि "राष्ट्रो के समान अधिकार (का सिद्धान्त) स्पष्ट और निश्चित रूप से मान लिया जायेगा।"

अवकाशकाल में वार्ताओ का कोई परिणाम नही निकला। अक्टूबर मे जब सम्मेलन का पुन. अधिवेशन हुआ, तब जर्मनी का स्थान रिक्त हो चुका था।

दो माह तक, सम्मेलन का काम लगभग बिलकुल ही बन्द पड़ा रहा। इस समय की महत्त्वपूर्ण घटना केवल यही थी कि फ्रांस ने एक नई सुरक्षा योजना प्रस्तुत की और यह प्रस्ताव रखा कि शस्त्रास्त्रों के निर्माण पर सभी देशों में राज्य का एकाधिकार (state-monopoly) रहे। किन्तु इस समय जर्मनी का प्रश्न सबसे महत्त्वपूर्ण था। आखिर ११ दिसम्बर को, एक रास्ता निकाला गया। ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस और इटली ने जर्मनी का यह दावा स्वीकार कर लिया कि उसे ऐसे किसी भी समझौते में शामिल होने के समान अधिकार प्राप्त हैं जिसके अनुसार सभी देशों को सुरक्षा प्राप्त हो सके।" इन शर्तों पर जर्मनी ने सम्मेलन में पुनः शामिल होना स्वीकार कर लिया। समानता का सिद्धान्त मान्य किया जा चुका था; यद्यपि "सुरक्षा-समझौता" ("system of security") की आवश्यकता के कारण फ्रांस अब भी बाजी जीत लेना चाहता था। निःशस्त्रीकरण सम्मेलन का प्रथम वर्ष इस सयमित आशा के साथ समाप्त हो गया।

सम्मेलन जनवरी १९३३ के अन्त में पुनः प्रारम्भ हुआ। दिसम्बर समझौते का व्यावहारिक परिणाम केवल यही हुआ था कि फ्रांस की सुरक्षा-माँग और जर्मनी की निःशस्त्रीकरण-माँग की खुले-आम टक्कर हो गई। मार्च के मध्य में, जबकि पूर्ण गतिरोध हो चुका था, ब्रिटिश प्रधानमन्त्री जेनेवा आया और उसने "मेकडॉनल्ड योजना" प्रस्तुत की। इस योजना से पहिली बार सम्मेलन को समझौते का सम्पूर्ण प्रारूप प्राप्त हुआ जिसमें कि योरोप के लगभग हर देश में सीमित किए जाने वाले सैनिकों और सामग्री की सख्या दी गई थी। योजना का हार्दिक स्वागत हुआ। किन्तु निःशस्त्रीकरण-समझौते की आशा अब लगभग बिलकुल ही समाप्त हो चुकी थी। अगले चार सप्ताहों में इस योजना पर जो वाद-विवाद हुए, उनसे एक बार पुनः यह स्पष्ट होगया कि मूलभूत मुद्दों पर ही बहुत अधिक मतभेद हैं। जून में सम्मेलन इस आशा, जो अब परम्परा बन चुकी थी— के साथ स्थगित हो गया कि अवकाश काल में निजी वार्ताओं द्वारा शेष मतभेद दूर हो जाएंगे।

जनवरी के अन्त से, हिटलर जर्मनी का प्रधानमन्त्री (Chancellor) चला आरहा था और नात्सी शासन ने अपने पैर दृढ़तापूर्वक जमा लिए थे। इस कारण यह स्वाभाविक ही था कि फ्रांसीसी सरकार ने जर्मनी के दावों को स्वीकार करने में अधिक अनिच्छा प्रदर्शित करना प्रारम्भ कर दिया। किन्तु यह और भी अधिक

आवश्यक हो गया था कि बिना किसी विलंब के जर्मनी के साथ समझौता कर लिया जाये। दुर्भाग्यवश १९३३ के ग्रीष्मावकाश में जो एक योजना तैयार हो सकी वह फ्रांसीसी ही थी जिसमें कि निःशस्त्रीकरण समझौते को दो कालों में विभाजित करने का सुझाव दिया गया था। चार वर्षों के प्रथम या परीक्षा-काल में, शस्त्रास्त्रों पर अन्तर्राष्ट्रीय निगरानी (international supervision) की प्रणाली स्थापित की जानी थी तथा राष्ट्रीय सेनाओं का पुनर्गठन प्रारम्भ किया जाना था। सीमन का प्रश्न द्वितीय-काल में ही हाथ में लिया जाना था। ब्रिटिश और इटालियन सरकारें इस प्रस्ताव से सहमत थीं। अक्टूबर १४ को सर जॉन साइमन ने सम्मेलन के कार्यालय (Bureau) में उसका विधिवत् समर्थन किया। इसके कुछ ही घण्टों के भीतर, जर्मनी ने यह घोषणा की कि उसने निःशस्त्रीकरण सम्मेलन तथा राष्ट्रसंघ की सदस्यता त्याग दी है।

जर्मनी के अलग हो जाने से इस कार्य को बड़ा आघात पहुँचा, क्योंकि जर्मनी ही निःशस्त्रीकरण का अधिकाधिक आकर्षण-केन्द्र होता जा रहा था। छः माह तक सम्मेलन कुछ भी प्रगति नहीं कर सका और इस अवधि में जर्मनी सहित प्रमुख राष्ट्र कूटनीतिक पत्र-व्यवहार द्वारा विचारों का आदान प्रदान ही करते रहे। फरवरी १९३४ में ईडन (Eden) पेरिस, बर्लिन और रोम गये। ईडन के बर्लिन वास (stay in Berlin) के समय, हिटलर ने यह प्रस्ताव रखा कि जर्मनी अपनी सेना के लिए ऐसी कोई भी सीमा स्वीकार करने के लिए तैयार है जो फ्रांसीसी, इटालियन और पोलिश सेनाओं के लिए समान रूप से स्वीकार की जाए। उसने यह प्रस्ताव भी रखा कि जर्मनी वायुसेना का ऐसा कोई भी प्रतिशत निश्चित करने के लिए प्रस्तुत है जो कि उसके पड़ौसी राष्ट्रों की वायुसेना की संयुक्त संख्या का ३० प्रतिशत या फ्रांस की वायुसेना की संख्या का ५० प्रतिशत (जो भी कम हो) हो। फ्रांसीसी सरकार ने इसका उत्तर 'जर्मनी के (प्रस्तावित) पुनःशस्त्रीकरण के वैधकरण (legalisation)" के प्रति विरोध प्रकट कर दिया तथा यह मत प्रकट किया कि कोई भी निःशस्त्रीकरण समझौता करने से पहिले यह अवश्य निश्चित कर लिया जाए कि यदि समझौते का पालन नहीं किया गया तो शास्तियाँ (penalties) लगाई जाएँगी और ऐसी स्थिति के लिए कुछ गारन्टियाँ दी जाएँगी। इस पर ब्रिटिश सरकार ने फ्रांसीसी सरकार से यह पूछा कि यदि संतोषजनक गारंटियाँ दी जाएँ, तो क्या वह हिटलर का प्रस्ताव स्वीकार

करने के लिए तैयार है। अन्त में, १७ अप्रैल को, फ्रांसीसी सरकार ने यह उत्तर दिया कि अभी हाल ही में जर्मनी का जो सैनिक आय-व्यय (budget) प्रकाशित हुआ है उससे यह स्पष्ट है जर्मनी पुनर्शस्त्रीकरण करना चाहता है इसलिए फ्रांस जर्मनी के प्रस्तावों पर वार्ता करने के लिए तैयार नही है।

यह उत्तर ही सम्मेलन का वास्तविक अन्त था। यद्यपि वह कुछ महीनो और चलता रहा तथा इस बीच उसकी समितियाँ गौण विषयो, जैसे शस्त्रास्त्रों का निर्माण और व्यापार तथा सैनिक आय-व्ययको का प्रकाशन पर विचार करती रही। किन्तु उसके अधिवेशन अब बीच-बीच मे होने लगे तथा उसका सारा अस्तित्व ही अवास्तविक और असतत (unreal and fitful) हो गया। सन् १९३४ की समाप्ति के बाद, उसके अधिवेशन होना भी बन्द हो गये यद्यपि वह नियमानुसार न तो समाप्त किया गया और न विश्व आर्थिक सम्मेलन के समान स्थगित ही हुआ। उसके अध्यक्ष की भी १९३५ के शरद् मे मृत्यु हो गई।

नि:शस्त्रीकरण सम्मेलन का अविराम अत (lingering death) उस युद्धोत्तर-काल के इतिहास की अतिम कहानी था जो कि १९३० में आर्थिक सकट की शुरूआत से प्रारम्भ हुआ था। इस काल के कुछ माह उस नए काल मे भी शामिल थे जो कि जर्मनी में हिटलर द्वारा सत्ता ग्रहण कर लेने से प्रारम्भ हुआ था। वास्तव मे इन दोनो ही घटनाओं का अत्यन्त निकट सबध था और दोनो ही एक काल से दूसरे काल में संक्रमण (transition) की सूचक थी। मित्र-राष्ट्रो द्वारा नि शस्त्रीकरण सबधी अपना वचन पूरा नही किए जाने के कारण जर्मनी के पुनर्शस्त्रीकरण को उचित ठहराया जा सकता था या कम से कम उसे पुनर्शस्त्रीकरण के एक कारण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता था। इस पुनर्शस्त्रीकरण का आवश्यक परिणाम अन्य देशो मे अधिक भय का फैलना और अधिक शस्त्रीकरण हुआ। जिस कुचक्र (vicious circle) को १९१९ के राजनीतिज्ञो ने तोडना चाहा था, वह एक बार फिर पूरे वेग से चलने लगा। जिसे शक्ति कूटनीति (power politics) ने सुदूर पूर्व मे १९३१ में पहिली बार अपना रग दिखाया था, उसी का आश्रय १९३३ मे सारे विश्व में लिया जाने लगा।

चार-राष्ट्र समझौता (Four-Power Pact)

एक ऐसी घटना के बारे में यहाँ एक अनुलेख (postscript) जोड़ा जा

सकता है जिसका यद्यपि नि.शस्त्रीकरण सम्मेलन से प्रासगिक सबध ही है, तदपि वह इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि वह दोनो कालो की सीमा-रेखा (border-line) पर घटित हुई थी, तथा उससे इटली की उस समय की नीति स्पष्ट हो जाती है जिस समय जर्मनी एक सैनिक राष्ट्र के रूप में पुनः आगे आता जा रहा था। मार्च १६३३ मे, जब ब्रिटिश प्रधानमन्त्री "मैकडानल्ड योजना" लेकर जेनेवा आये थे, तब वे साइमन को साथ ले मुसोलिनी से नि.शस्त्रीकरण-समस्या पर चर्चा करने के लिए रोम भी गये। मुसोलिनी का नि शस्त्रीकरण में कभी भी विश्वास नही रहा था और वह नि.शस्त्रीकरण के अतिरिक्त अन्य बातो की चर्चा करना ही अधिक पसद करता था। जैसे हो ये अतिथि इटली पहुँचे, वैसे ही एक प्रस्तावित चार-राष्ट्र समझौते, जो कि इटली, ग्रेट-ब्रिटेन, फ्रास और जर्मनी मे किया जाना था, का प्रारूप उनके सामने रख दिया गया।

पिछले दशक (decade) में इटली की नीति का प्रमुख ध्येय यह था कि फ्रास, जो दूसरा लैटिनी बड़ा राष्ट्र (Latin Great Power) था, के साथ इटली की समानता का दावा किया जाये। विशेषत. इटली को फ्रास की उपनिवेशीय श्रेष्ठता (colonial superiority) तथा पोलैंड और लघु मैत्री-सघ के साथ गुटबन्दी के कारण योरोप में फ्रास की शक्ति से चिढ थी। इटली की उपनिवेशीय महत्त्वाकाक्षाएँ पूरी होने के लिए तो अभी और अधिक उपयुक्त अवसर की आवश्यकता थी। किन्तु इसी बीच मध्य योरोप में फ्रास के प्रभाव का मुकाबिला करने के लिए उसने लघु-मैत्रीसघ के विरुद्ध हगरी, और बालकन देशो मे युगोस्लाविया के विरुद्ध बलगेरिया का पक्ष लिया। इस प्रकार उसके दो ऐसे राज्यो का पक्ष लेने, जिनकी विदेश नीति का एकमात्र लक्ष्य ही यह था कि शाति सघियो मे सशोधन कराया जाए, के कारण इटली 'सशोधनवाद" (revisionism) का प्रमुख समर्थक हो गया। इस कारण उसे सशोधनवादी राष्ट्रो मे सबस बडे राष्ट्र—जर्मनी के साथ काम करने का एक सामान्य आधार मिल गया और १६२६ के बाद से ही इटली तथा जर्मनी के सम्बन्ध उत्तरोत्तर घनिष्ठ होते गए। इसलिए १६३३ के वसत मे इटली का उद्देश्य यह था कि जर्मनी को यथासभव शीघ्र अन्य बडे राष्ट्रों की श्रेणी मे पुनः ला बैठाया जाए; फ्रास के पिछलग्गुओ (satellites)—पोलैंड और लघु मैत्रीसघ—को कमजोर बनाया जाये तथा शाति-सधियो में सशोधन की माँग को बढावा दिया जाये।

ब्रिटिश मन्त्रियो को दिए गए प्रारूप समझौते में ये ध्येय स्पष्ट परिलक्षित थे। इस प्रारूप की शर्तों के अनुसार, चारो राष्ट्रो को यह घोषणा करनी थी कि वे अपनी योरोपीय नीति का मेल इस प्रकार बैठाएंगे कि "आवश्यकता होने पर अन्य राष्ट्र भी" उसे अपना सकें। इस प्रकार स्पष्ट है कि योरोप के अन्य राष्ट्रो का नेतृत्व (hegemony) भी उन्होने अनधिकारपूर्वक अपने हाथो में ले लिया और फ्रास के साथियों का स्थान गौण कर दिया गया। दूसरे, इन चारो राष्ट्रो ने यह भी घोषित किया कि शाति सधियो में सशोधन पर विचार भी उनकी सामान्य नीति का एक अग रहेगा। लघु-मैत्रीसघ और पोलेंड के लिए यह दूसरा आघात था। तीसरे, चारो राष्ट्र इस बात पर सहमत हो गए कि यदि निःशस्त्रीकरण सम्मेलन से समस्या का समाधान नही निकल सका, तो वे धीरे धीरे पुनर्शस्त्रीकरण करने का जर्मनी का अधिकार स्वीकार कर लेंगे। अन्त, उन्होने यह वचन दिया कि "योरोप से असबधित (सभी) प्रश्नो (extra-European questions) तथा "उपनिवेशीय क्षेत्र" के सम्बन्ध मे वे अपनी नीति समरूप रखेंगे। चूंकि चार में से दो राष्ट्रो की उपनिवेशीय महत्त्वकाक्षाएं थी, इसीलिए इस प्रारूप से यह आभास होता था कि वे उन उपायो का अध्ययन करना चाहते जिनका आश्रय लेने पर उनकी ये महत्त्वाकाक्षाएं पूरी हो सकती थी।

उपनिवेश सम्बन्धी धारा को छोड, इस प्रारूप में ऐसी कोई बात नही थी जिसका ब्रिटिश हित पर सीधा प्रभाव पडता हो। किन्तु ब्रिटिश मन्त्रियो ने यह जान लिया कि इस प्रारूप का अधिकाश भाग फ्रासीसी सरकार को बहुत बुरा प्रतीत होगा जिसे (और जर्मन सरकार को भी) कि यह प्रारूप साथ ही साथ भेजा गया था। इसलिए उसने किसी भी प्रकार का वचन न देने की बुद्धिमानी की। फ्रास में, वास्तव मे उसका काफी विरोध हुआ जो कि लघु-मैत्रीसघ तथा पोलेंड के भी क्रोधपूर्ण विरोध के कारण और भी तीव्र हो गया। जो भी हो, फ्रासीसी सरकार ने समझौते को बिलकुल ही अस्वीकार कर देने की अपेक्षा उस की हानिकर बातो को दूर करने का प्रयत्न करने का निश्चय किया। दो माह से भी अधिक तक कूटनीतिक चर्चाएं चलाने के बाद कही उसे अपने इस ध्येय में सफलता मिली। सशोधित समझौते के अनुसार, चारो राष्ट्रो ने यह वचन दिया कि वे "राष्ट्रसघ के ढांचे के भीतर" सभी राष्ट्रो से सहयोग करेंगे। अनुबधपत्र

के दसवें और सोलहवें अनुच्छेद की उन्होने पुन पुष्टि की (reaffirmed) जिनमें कि वर्तमान व्यवस्था (existing order) को बनाए रखने की व्यवस्था थी। अनुच्छेद उन्नीस की भी उन्होंने पुनः पुष्टि की जिसमें कि सतुलित शब्दो में सशोधन की बात कही गई थी। यदि नि शस्त्रीकरण-सम्मेलन कोई ऐसे प्रश्न अनिर्णीत छोड दे, जिनका सम्बन्ध इन राष्ट्रो से विशेषतया हो, तो ये राष्ट्र उन पर आपस में विचार करेंगे—ऐसी व्यवस्था भी की गई थी। उपनिवेश-प्रश्नो सम्बन्धी मुद्दा बिलकुल ही हटा दिया गया। सशोधित समझौते से किसी को भी आघात नहीं पहुँच सकता था। वह इतना हानिरहित था कि ऐन मौके पर, जर्मनी ने उसे स्वीकार करने से लगभग इन्कार ही कर दिया। किन्तु अन्त में, ७ जून १९३३ को रोम मे चारो राष्ट्रो के प्रतिनिधियों के हस्ताक्षर हो ही गये।

लघु मैत्रीसघ ने समझौते के अन्तिम रूप के हानिरहित होने पर सतोष व्यक्त किया था। किन्तु लघु-मैत्री-सघ क्षेत्रो में यह अरुचिकर भावना बनी रही कि इटली ने उनके अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हितो पर कुठाराघात किया है तथा फ्रास ने उनकी रक्षा में अनुचित ढोलढाल दिखाई है। पोलैंड के आत्माभिमान को बहुत अधिक धक्का लगा। छोटे राष्ट्रों में सबसे बडे राष्ट्र पोलैंड ने इटली—जो बडे राष्ट्रों में सबसे छोटा था—का इस सफलता का तीव्र विरोध किया क्योंकि योरोपीय नीति (निर्धारक) नेताओ की सगति से इटली ने उसे वचित कर दिया था। उसने अपना क्रोध फ्रास पर निकाला जिसने पोलैंड की महत्ता को मुसोलिनो के घमड के सामने बलि चढा दिया था। चार राष्ट्र समझौता कभी भी अमल मे नही आया (फ्रास और जर्मनी दोनो ही उसका अनुसमर्थन नहीं कर सके)। इसलिए फ्रास और उसके साथियो में फूट के बीज बोकर एव उनके सम्बन्धो मे शिथिलता लाकर उसका एक उद्देश्य तो पूरा हो ही गया। ऐसा कर, उसने राष्ट्रो की उस नई गुटबन्दी के लिए मार्ग प्रशस्त किया जो कि जर्मन नीति के नये सचालन (new direction) का आवश्यक परिणाम थी।

चतुर्थ भाग

जर्मनी का पुनरुद्भव

(Re-emergence of Germany)

संधियों का अंत

(The End of The Treaties)

(१६३३—१६३६)

१०. नात्सी क्रान्ति

(Nazi Revolution)

जनवरी ३०,१९३३ को हिटलर जर्मनी का प्रधानमन्त्री (Chancellor) बना। उसकी सरकार में तीन नात्सी और आठ राष्ट्रवादी (Nationalists) थे। इस समय जर्मन संसद को भी नए आम चुनाव के लिए विघटित (dissolved) कर दिया गया। पिछली जुलाई में जो आम चुनाव हुए थे, उनमें नात्सी पार्टी को २३० स्थान मिले थे तथा जर्मन संसद में वह सबसे बडी पार्टी (largest single party) बन गई। अब यह संसद मे पूर्ण बहुमत (absolute majority) प्राप्त करने की आशा करती थी। फरवरी २७ को, जब चुनाव भी नहीं हो पाए थे, जर्मन संसद (Reichstag) भवन रहस्यपूर्ण परिस्थितियो (mysterious circumstances) में जल गया। इस घटना का बहाना लेकर कथित (alleged) कम्युनिस्टों और उनसे सहानुभूति रखने वालों (sympathisers) की बडे पैमाने पर गिरफ्तारियाँ (round up) की गईं। यह काय कुछ अशो में पुलिस द्वारा किन्तु मुख्य रूप से ब्राउन (brown) वर्दी पहनने वाले सैनिकों द्वारा किया गया था। चुनाव के परिणामस्वरूप नात्सी प्रतिनिधियो की सख्या ९२ और बढ गई। इस घटना के बाद से ही वैधता और सवैधानिक उपायो (legality and constitutional forms) को ताक मे उठाकर रख दिया गया। इस समय यहूदियो, सोशल-डेमोक्रेटो तथा कम्यूनिस्टो को तो, वास्तव मे गैरकानूनी (outlawed) ही कर दिया गया। उनमें से अनेकों को अपने घरो से निकालकर नजरबन्दी शिविरों (concentration camps) में रखा गया या उन्हे बहुत अधिक शारीरिक यातनाएँ दी गई। कई हत्याएँ भी इस समय हुई किन्तु हत्यारों को दड दिलाने का प्रयत्न नही किया गया। अन्य पार्टियों के जो सदस्य नई तानाशाही (dictatorship) का विरोध करते थे या उसकी आलोचना करते थे, उनके साथ भी इसी प्रकार का व्यवहार किया गया। सन् १९३३ के मध्य तक, नात्सी पार्टी को छोड सभी अन्य पार्टियो (non-Nazi

parties) और पार्टी सगठनों को जबर्दस्ती विघटित कर दिया गया। अब जर्मन ससद का केवल यही कार्य रह गया था कि भूले-भटके जब भी उसका अधिवेशन हो, तब वह प्रधानमन्त्री की नीति घोषणाओं (declarations of policy) को सहर्ष मान ले। अगस्त १९३४ में हिन्डेनबर्ग (Hindenburg) की मृत्यु होने पर, हिटलर (Herr Hitler) को बहुत अधिक बहुमत से राष्ट्रपति चुना गया। वह इसके साथ ही साथ प्रधानमन्त्री भी बना रहा।

विदेश नीति के क्षेत्र में, नए शासन की घोषणाएँ शातिपूर्ण तथा भय दूर करने वाली थी। हिटलर ने जोर देकर यह अस्वीकार किया कि शाति-समझौते को बल प्रयोग कर (by force) सशोधित करने को उसकी कोई इच्छा है। किन्तु यह बात नही भुलाई जा सकी थी कि हिटलर द्वारा १९२४ में लिखित अपने आत्म चरित्र 'मीन कैम्फ' ("Mein Kamph" Tr.)—जिसकी अब लाखों प्रतियाँ बिकती थी—में फ्रास को जर्मनी का कट्टर दुश्मन बताया गया था तथा जर्मनी की वर्तमान सीमाओ से बाहर यहाँ-वहाँ रहने वाले सभी जमन अल्पसख्यको को जर्मनी मे शामिल कर लेने का दावा किया गया था एव पूर्वी योरोप को जमन उपनिवेशीकरण (colonisation) के लिए उपयुक्त स्थान माना गया था। इसके अतिरिक्त, गुप्त रूप से जर्मनी के पुनर्शस्त्रीकरण का जो काय कुछ वर्षों से चल रहा था, वह अब तेजी से चलने लगा किन्तु उसे गुप्त रखने की अब इतनी परवाह नहीं की जाती थी। सधि निषेध (treaty prohibition) का खुल्लम-खुल्ला उल्लघन करते हुए, वायु सेना की स्थापना की गई थी। केवल एक ही मामले में हिटलर ने हमेशा ही आत्म-नियत्रण बरता। जर्मन नीति की जिस मूलभूत गलती के कारण ग्रेट ब्रिटेन *जर्मनी का शत्रु बन गया था*, उसे ध्यान में रखते हुए, हिटलर ने *ब्रिटेन की नौ* सैनिक शक्ति के साथ प्रतिद्वन्द्विता करने के प्रयत्न की किसी भी पुनरावृत्ति (repetition) का दृढ विरोध किया।

नात्सी क्राति का सारे सभ्य ससार में गहरा प्रभाव पडा। यहप्रभाव दो प्रकार का था। कुछ देशो में, हिटलरी तानाशाही की क्रूरताओं (cruelties) और ज्यादतियो के प्रति नैतिक क्रोध (moral indignation) की भावना सर्वप्रधान थी। अन्य देशों में, इस बात की इतनी ही गहरी चिन्ता थी कि १९१९ के शाति-समझौते को खुली चुनौती दी गई है। दूसरे प्रकार की प्रतिक्रिया पहिले प्रकार की प्रतिक्रिया से अधिक प्रभावपूर्ण प्रतीत होती थी। ग्रेट

ब्रिटेन और अमेरिका मे, जहाँ कि क्रोध—न डर— की ही भावना प्रधान थी, जर्मनी के प्रति नीति में कोई स्पष्ट परिवर्तन (marked change) नहीं हुआ। इटली और सोवियत सघ में, जहाँ की सरकारें स्वय ही हिंसा द्वारा सत्तारूढ हुई थीं, नैतिक भर्त्सना (moral censure) के लिए गुञ्जाइश कम ही थी। हिटलर के सत्तारूढ होने के अन्तर्राष्ट्रीय परिणामो की तीव्र आशका से इन देशो ने एक-एक अपनी नीति बदल दी। अन्य महत्त्वपूर्ण योरोपीय राष्ट्रों के राजनैतिक दृष्टिकोण में नात्सी क्रांति के कारण जो महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए, उनका विवेचन इस अभ्यास में किया जाएगा।

पोलैंड और सोवियत सघ

(Poland And the Soviet Union)

इन (*नात्सी क्रांति द्वारा लाये गए*) परिवर्तनो मे प्रथम एक आश्चर्य जनक विरोध शांति (reconciliation) थी। सन् १९१९ के बाद के योरोप में, जर्मनी और पोलैंड में जितनी कट्टर शत्रुता थी, उतनी योरोप क और किसी भी देश में नहीं थी, शेष जर्मनी से पूर्वी प्रशा (Prussia) को पृथक करने वाले समुद्रगामी पोलिश गलियारे के कारण जर्मन लोगो को वर्सेलीज की सन्धि के विरुद्ध शिकायत करन का सर्वाधिक नाटकीय अवसर मिल गया था। अपने प्रति अन्यायपूर्ण व्यवहार के कारण पोलैंड के जर्मन अल्पसख्यको द्वारा राष्ट्रसघ को जितनी शिकायतें हमेशा ही की जाती थी उतनी अन्य कोई भी अल्प-सख्यक नही करते थे। पोलैंड और डानजिग के बीच विवाद जितनी बार परिषद की कार्यसूची (agenda) में रहते थे, उतना और कोई प्रश्न नहीं रहता था। नात्सी क्रांति के दूसरे ही दिन, इन झगडो में से एक सर्वाधिक गभीर झगड़ा हुआ। उस दिन २०० पोलिश सैनिको को बिना किसी अधिकार के डानजिग बन्दरगाह के एक स्थान पर उतारा गया। किन्तु फिर भी, इस घटना के कुछ ही महीनो के भीतर पुनर्मेल (*rapprochement*) की दिशा मे पहला कदम उठाया गया। हिटलर क प्रधानमन्त्रित्व की प्रथम वर्षगांठ से कुछ ही समय पहिले जनवरी १९३४ मे एक जर्मन पोलिश समझौते पर हस्ताक्षर हो गए जिसके कारण पोलैंड की विदेश नीति और पूर्वी योरोप के कूटनीतिक नक्शे (diplomatic configuration) में आमूल परिवर्तन होगया। इस समझौते के जो परिणाम हुए, उनमें सर्वाधिक स्पष्ट परिणाम ये :—जर्मन और

पोलिश समाचारपत्रों द्वारा पिछले पंद्रह वर्षों से एक दूसरे पर जो विषवमन किया जा रहा था, उसका बन्द हो जाना तथा पोलैंड के जर्मन अल्पसंख्यकों की शिकायतों और डानज़िग संबंधी विवादों का राष्ट्रसंघ की कार्य-सूची पर से हट जाना।

दोनों ही पक्षों ने जिन बातों से प्रेरित होकर इस समझौते पर हस्ताक्षर किए, उनका कुछ स्पष्टीकरण यहाँ देना आवश्यक है। हिटलर ने पश्चिमी योरोप को भयभीत कर अपना शत्रु बना लिया था। और चूँकि उसने कम्युनिस्टों को भी उत्पीड़ित (persecuted) किया था इसलिए रैपेलो संधि (Rapallo) में उसके पूर्वगामी (predecessors) शासकों ने जो मार्ग अपनाया था उसे अपना कर वह सोवियत संघ से संतुलन की पूर्ति करने (redress the balance) की आशा नहीं कर सकता था। उसे यह भय था कि वह बिल्कुल अकेला रह जाएगा। इसके अतिरिक्त, वह इस निर्णय—इस निर्णय पर उसकी अपनी ऑस्ट्रियन उत्पत्ति का संभवत: प्रभाव पड़ा होगा—पर पहुँचा था कि जर्मनी को सबसे पहिले दक्षिण की ओर बढ़ना चाहिए। अपने पूर्वी पड़ौसी से मित्रता कर लेना सभी दृष्टियों से उपयुक्त था। पोलैंड के साथ मित्रता उसने यह वचन देकर की कि आगामी दस वर्षों तक वह पोलैंड के विरुद्ध कोई भी कार्यवाही—चाहे वह प्रचार के रूप में हो या और किसी अन्य प्रकार की—नहीं करेगा।

पोलैंड ने जिन प्रेरणाओं से यह समझौता किया, वे भी इतनी ही प्रबल (cogent) थीं। पन्द्रह वर्षों से वह दो शत्रु-राष्ट्रों के बीच असुविधापूर्वक रहा था। उसका एक साथी, फ्रांस, उससे दूर था। लोकार्नो-संधि से फ्रांस की यह प्रवृत्ति पहिले ही स्पष्ट हो चुकी थी कि फ्रांस अपनी सुरक्षा की चिन्ता पहिले करेगा और पोलैंड के हितों की बाद में। चार राष्ट्र समझौते पर हस्ताक्षर कर अभी हाल ही में उसने पोलैंड की भावनाओं को गहरी चोट पहुँचाई (wounded to the quick) थी। बड़े राष्ट्र के रूप में जर्मनी के पुनरुत्थान के कारण, आपत्ति के समय फ्रांस की सहायता मिल सकना पहिले से भी अधिक अनिश्चित हो गया था। पोलैंड अब अपने दोनों ही बड़े पड़ौसियों से शत्रुता नहीं कर सकता था। उसे दोनों में से किसी एक को मित्र बना लेना आवश्यक था। उसने उसके साथ

ही मित्रता की जिसे उसने अधिक शक्तिशाली और अधिक विश्वसनीय समझा। यह अवश्य ही सत्य था कि जर्मन-पोलिश समझौते से उसे केवल दस ही वर्षों के लिए त्राण मिला था। किन्तु जो स्थिति दस वर्षों तक स्थिर रह सकती हो, वह स्थायी भी बन सकती है। इस दिशा मे भी एक प्रयोग कर देखना उपयोगी हो था।

सोवियत सघ मे इस समझौते के प्रति जो प्रतिक्रिया हुई उसका और अधिक विस्तृत वर्णन देना अभीष्ट है। सन् १९२७ तक सोवियत सरकार ने अमेरिका को छोड सभी मुख्य राष्ट्रो से कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित कर लिए थे। इस वर्ष सोवियत प्रतिनिधि पहिली बार जेनेवा आये थे। सन् २७ मे स्टालिन की "एक ही राज्य मे समाजवाद" (socialism in a single state) नीति की विजय हुई थी। प्रथम पचवर्षीय योजना—जो १ अक्तूबर, १९२८ को अमल मे आई—के स्वीकार किएजाने का अर्थ यह था कि औद्योगीकरण (industrialisation) बडे पैमाने पर प्रारम्भ किया जाएगा और उसके समय क्रांति के शास्त्रीय सिद्धातो की अपेक्षा राज्य के व्यावहारिक हितो पर पहिले ध्यान दिया जाएगा। सोवियत सघ और ग्रेट ब्रिटेन के बीच १९२९ मे पुनः कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित होना सामान्य स्थिति (normal conditions) के निर्माण की दिशा मे एक और कदम था। सोवियत अधिकारियो को अब केवल अमरीकी सरकार और राष्ट्रसघ से ही समझौता करना शेष था।

इस दिशा मे तीन वर्षों तक कोई प्रगति नही की जा सकी। किन्तु १९३२ के शरद मे, सोवियत सघ ने इटली और फ्रास से अनाक्रमण समझौते (non-aggression pacts) किए। अगले वर्ष की प्रथम तिमाही में दो ऐसी घटनाएँ घटित हो गई जिन्होने सोवियत नीति मे बिलकुल ही नया परिवतन ला दिया। हिटलर जर्मनी मे सत्तारूढ हुआ और राष्ट्रसंघ-सभा द्वारा भर्त्सना किए जाने पर, जापान ने राष्ट्र-सघ की सदस्यता त्याग दी। इन घटनाओं की मास्को मे समुचित (appropriate) प्रतिक्रिया हुई। सन् १९३३ के ग्रीष्मकाल में जर्मनी से सामान्य भय (common fear) के कारण सोवियत सघ और फ्रास मे पुनर्मेल तेजी से बढा और संधि-संशोधन के विरुद्ध अनेको वक्तव्य सोवियत समाचारपत्रो में प्रकाशित हुए। इसके साथ ही साथ दो ऐसे राष्ट्रो मे जिन्हें

जापान से सबसे अधिक भय था,—सोवियत सघ और अमेरिका —घनिष्ठता बढ़ी। नवम्बर १९३३ में लिट्विनोव ने वाशिंगटन की यात्रा की और सोवियत सरकार की ओर से इस आशय के समुचित आश्वासन दिये कि अमेरिका में प्रचार-कार्य (propaganda) नहीं किया जाएगा और सोवियत सघ में रहने वाले अमरीकियो को धार्मिक स्वतन्त्रता दी जाएगी। अमरीकी सरकार ने सोवियत सरकार को कूटनीतिक मान्यता भी दे दी। इस प्रकार सोवियत कूटनीतिज्ञों ने दो संभाव्य मित्र (potential allies) प्राप्त कर लिए थे—एक जर्मनी के विरुद्ध; और दूसरा जापान के विरुद्ध।

अब सोवियत सरकार की पुरानी भ्रांत-धारणा (ancient prejudice)—राष्ट्रसघ में उसका प्रवेश—और नष्ट होना शेष थी। फ्रांस इस कदम पर जोर देता था। यदि फ्रांस-सोवियत गुटबन्दी (Franco-Soviet alliance) की जाती तो उसमे युद्ध-पूर्व कूटनीति (pre-war diplomacy) की अत्यधिक गध आती। और यह बात सम्भवतः ग्रेट ब्रिटेन को अच्छी नहीं लगती। जर्मन आक्रमण के विरुद्ध प्रतिरक्षा मे सामान्य हित की अभिव्यक्ति (manifestation) राष्ट्रसघ की सामान्य सदस्यता से ही हो सकती थी। इसलिए जुलाई १९३४ मे फ्रास ने ग्रेट ब्रिटेन और इटली को इस बात के लिए राजी कर लिया कि वे सोवियत सघ को राष्ट्रसघ मे प्रवेश दिलाने के लिए अन्य देशो का समर्थन प्राप्त करने में उसका साथ दें। सितम्बर में राष्ट्रसघ की सभा का जो अधिवेशन हुआ, उस में रूस को विधिवत् राष्ट्रसघ का सदस्य बना लिया गया। इस समय केवल तीन राज्यो—स्विट्जरलैंड, हॉलैंड और पुर्तगाल—ने ही इसके विरोध मे अपना मत दिया। पोलैंड ने सावधानी (precaution) के बतौर दो कदम उठाए। एक तो उसने पृथक रूप से सोवियत सरकार से यह वचन प्राप्त कर लिया कि पोलैंड मे रहने वाले रूसी अल्पसंख्यकों से राष्ट्रसघ को वह न तो कोई याचनापत्र (petition) भिजवाएगी और न हीं किसी ऐसे याचनापत्र का समर्थन करेगी। दूसरे, राष्ट्रसघ में उसने यह खुले आम घोषित कर दिया कि पोलैंड अब यह नही मानता कि पोलिश अल्पसख्यक प्रश्नों पर विचार करने का राष्ट्रसंघ को कोई अधिकार प्राप्त है। पोलैंड की यह घोषणा, वास्तव मे, अल्पसख्यक सधि (minorities treaty) को समाप्त करने की घोषणा ही थी।

हिटलर से सोवियत सरकार को जो भय था, उसे दूर करने के लिए राष्ट्र-

-सघ की सदस्यता से प्राप्त सुरक्षा अपर्याप्त थी, इसलिए सोवियत सरकार फ्रास से सीधा ही समझौता करने के लिए जोर देती रही। फ्रास इस अनुरोध को अस्वीकार नही करना चाहता था किन्तु फ्रास ने पहिले इस बात का पता लगा लिया कि फ्रास और सोवियत सघ के बीच किए जाने वाले गारन्टी-समझौते मे -यदि जर्मनी को भी सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित किया जाए और लोकार्नो पूर्वोदाहरण (precedent) के अनुसार, यदि यह समझौता पारस्परिक आधार पर (in both directions) लागू किया जाये तो ऐसे समझौते पर ग्रेट ब्रिटेन को कोई आपत्ति नही होगी। तदनुसार (accordingly), फ्रासीसी और सोवियत सरकारो ने एक पूर्वीय समझौते (Eastern pact) का प्रारूप तैयार किया जिस के अनुसार फ्रास और सोवियत सघ को न केवल जर्मनी के आक्रमण के विरुद्ध एक दूसरे को गारन्टी देनी थी अपितु जर्मनी को भी उनमे से किसी के भी आक्रमण के विरुद्ध गारन्टी उन दोनो को देनी थी। योजना कुछ कृत्रिम (artificial) प्रतीत होती थी क्योकि ऐसी परिस्थितियो की कल्पना कर सकना कठिन था जिनमे जर्मनी सोवियत सघ के विरुद्ध फ्रास या फ्रास के विरुद्ध सोवियत सघ की सहायता लेता। जो भी हो, फरवरी १९३५ मे ब्रिटिश सरकार ने इस प्रारूप का अनुमोदन कर दिया और अन्य प्रस्तावो, जिनका उल्लेख आगे किया जाएगा, के साथ वह जर्मन सरकार को भेज दिया गया। जर्मनी ने जो आपत्तियाँ उठाई वे प्रस्ताव को अस्वीकार कर देने के बराबर (tantamount to refusal) ही थी। फ्रासीसी और सोवियत सरकारो को इस परिणाम की आशा थी और सभवत. उनकी इच्छा यही थी कि यही परिणाम निकले। इसका लाभ उन्होने एक फ्रास सोवियत समझौते (France-Soviet Pact) पर मई १९३५ मे हस्ताक्षर कर उठाया। इस समझौते के अनुसार उन्होने यह वचन दिया कि यदि किसी योरोपीय राष्ट्र द्वारा आक्रमण किया गया तो वे एक दूसरे की सहायता करेंगे। नात्सी क्रांति के परिणामस्वरूप युद्ध-पूर्व की फ्रास सोवियत मैत्री पुनः हो गई।

ऑस्ट्रिया और इटली
(Austria And Italy)

ऑस्ट्रिया को अपनी विदेशी नीति का प्रथम लक्ष्य (object) बनाने

सम्बन्धी हिटलर का निश्चय कई मार्गों में दुर्भाग्यपूर्ण सिद्ध हुआ[1]। सन् १६१६ से १६३३ तक की अवधि में यह बात संशयहीन थी कि अधिकांश ऑस्ट्रियन जनता जर्मनी के साथ संघ बनाने की इच्छुक थी। किन्तु इस प्रकार के संघ-निर्माण का जो निषेध संधियों में किया गया था, उसकी आलोचना संधियों के और किसी भी अनुच्छेद की अपेक्षा अधिक न्यायोचित रूप से की जा सकती थी। परन्तु नात्सी क्रान्ति के कारण अधिकांश ऑस्ट्रियन लोगों का मत बदल गया था। न तो सोशल-डेमोक्रेट, जो कि ऑस्ट्रियन संसद में सबसे अधिक बहुमत वाली पार्टी के थे, और न ही यहूदी, जो कि काफी अधिक संख्या में थे और विएना में जिनका काफी प्रभाव था, ही यह सोचते थे कि नात्सी जर्मनी में उनके साथियों (comrades) की जो स्थिति हुई है, वैसी ही उनकी भी हालत हो। कैथोलिक धर्माधिकारी (Catholic Curch) जिनका ऑस्ट्रियन राजनीति में काफी भाग था, भी जर्मन नात्सियों द्वारा जर्मनी में उनके अनुयायियों पर किए गए अत्याचारों के कारण नात्सियों के विरोधी बन चुके थे। अविश्वास (mistrust) के इन विशेष कारणों के अतिरिक्त, परम्परा से आरामपसन्द ऑस्ट्रियन जर्मनी के नए शासन की पाशविक और दमनपूर्ण क्षमता को संदेह की दृष्टि से देखता था। यह संभव हो सकता है कि हिटलर के सत्तारूढ होने के बाद किसी भी समय यदि ऑस्ट्रिया में स्वतंत्र मतदान (free vote) होता तो जर्मनी के साथ संघ बनाने के पक्ष में ही बहुमत होता। किन्तु यह बहुमत १६३३ के पहिले, संभव बहुमत के समान अत्यधिक और निर्विवाद (overwhelming and incontestable) किसी भी स्थिति में नहीं होता।

जो भी हो, नात्सी क्रांति की ऑस्ट्रिया में प्रथम प्रतिक्रिया अनुकरण (imitation) की हुई। मार्च १६३३ में, ऑस्ट्रिया के प्रधानमन्त्री डोलफुस (Dollfuss) ने संविधान को स्थगित कर (by suspending the constitution) प्रतिनिधि सभा (Chamber) में सोशल-डेमोक्रेटों के विरोध को अमान्य कर दिया (over-ruled)। इस घटना के बाद से, ऑस्ट्रियन सरकार हीमवेर (Heimwehr) नामक गैर सरकारी सैनिक संगठन की सहायता पर ही अधिक भरोसा करने लगी। यह संगठन सोशल-डेमोक्रेटों की सशस्त्र सेना को

1 "Hitler's decision to make Austria the first object of his foreign policy proved in many respects unfortunate."

संतुलित रखने के लिए कुछ ही वर्षों पूर्व अस्तित्व में आया था। इसके बाद जर्मन सरकार मैदान में उतर आई। ऑस्ट्रियन सरकार के निन्दापूर्ण प्रसारण (broadcasts) म्युनिक (Munich) कार्यक्रम के एक नियमित अंग हो गए। ऑस्ट्रियन क्षेत्र पर जर्मन वायुयानो ने नात्सी प्रचार-पर्चे (propaganda leaflets) गिराये। सीमांत पार कर ऑस्ट्रियन नात्सियों को शस्त्र और अर्थ (money) चोरी से भेजे गये। ऑस्ट्रिया की यात्रा करने के इच्छुक जर्मन लोगों पर निरोधात्मक विसा फीस (prohibitive visa fee) लगाई गई। ऑस्ट्रियन सरकार ने इसका उत्तर, जून १६३३ मे, ऑस्ट्रियन नात्सी पार्टी का दमन कर, दिया।

यदि बडे राष्ट्र हस्तक्षेप नही करते, तो हीमवेर (Heimwehr) एव कुछ जन-प्रतिनिधियों के विरोध के बावजूद भी ऑस्ट्रिया संभवतः जर्मनी के आगे शीघ्र ही घुटने टेक देता। नात्सी शासन की ज्यादतियो के विरुद्ध व्यापक रोष अब अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका था किन्तु ऑस्ट्रिया के विरुद्ध जर्मनी के अभियान (campaign) के कारण वह और भी बढ गया। ऑस्ट्रिया की स्वतन्त्रता को बनाए रखने के प्रश्न पर फ्रासीसी लोकमत की अपेक्षा ब्रिटिश लोकमत बहुत ही कम आग्रहपूर्ण होगया। बर्लिन में कूटनीतिक प्रतिनिधित्व (diplomatic representations) किए गए किन्तु उनका बहुत अधिक परिणाम नही निकला। अगस्त में, ऑस्ट्रिया ने एक और अन्तर्राष्ट्रीय ऋण लिया जिसकी ग्रेट ब्रिटेन, फ्रास, इटली और गारन्टी अन्य अनेक छोटे राष्ट्रों ने दी।

इस घटना के बाद से, इटली ऑस्ट्रिया का प्रमुख संरक्षक बन गया। पिछले कुछ वर्षों तक, वह असतुष्ट और "सशोधनवादी" राष्ट्र रहा था और हाल ही में उसने लगभग सभी महत्त्वपूर्ण प्रश्नो पर जर्मनी के ही समान रुख अपनाया था। नात्सी क्राति से प्रेरणा पाकर अब इटली की विदेश नीति भी सोवियत सघ की नीति की भाँति नाटकीय ढग से बदल गई। इटली अफ्रीका या पूर्वी योरोप सम्बन्धी सधि मे सशोधन की माँग कर सकता था। किन्तु यदि जर्मनी को ऑस्ट्रिया को अपने राज्य मे मिला लेने दिया गया होता तो वह इटली जैसे राष्ट्र के लिए—जिसने दक्षिणी टायरोल (Tyrol) नामक जर्मनी ऑस्ट्रियन प्रात अपने राज्य में मिला लिया था—सभवत. एक खतरनाक पड़ोसी होता। सन् १६३३-३४ के शीतकाल मे, इटली की सरकार

ने हीमवेर को गुप्त आर्थिक सहायता देना प्रारम्भ किया क्योंकि वह हीमवेर को ऑस्ट्रियन स्वतन्त्रता का मुख्याधार (bulwark) मानती थी। इस सहायता के बदले मे, मुसोलिनी ने यह माँग की कि ऑस्ट्रियन सोशल-डेमोक्रेटों का तख्ता उलट दिया जाए जो विएना की नगरपालिका मे इस समय भी अधिकार जमाए हुए थे और ऑस्ट्रिया में फासिस्ट ढंग (fascist lines) की सरकार कायम की जाये। यह माँग फरवरी १९३४ में पूरी कर दी गई। इसका कोई गम्भीर प्रतिरोध नही हुआ। सैंकडो प्रमुख सोशल-डेमोक्रेटो को जेलो में डाल दिया गया और सभी समाजवादी (socialist) संस्थाओ का दमन किया गया। इसके बाद से ही ऑस्ट्रिया की गृह (domestic) और विदेश नीति इटली द्वारा नियंत्रित होने लगी।

इस सारी कार्रवाई का परिणाम यह हुआ कि ऑस्ट्रिया के प्रति ग्रेट ब्रिटेन को जो सहानुभूति अभी तक चली आई थी, उससे ऑस्ट्रिया वंचित होगया यद्यपि ब्रिटिश सरकार यह घोषित करती रही कि ऑस्ट्रिया की स्वतन्त्रता में उसकी दिलचस्पी है। किन्तु नात्सियो को इससे और भी प्रयत्न करने की प्रेरणा मिली। जुलाई २५, १९३४ को, ऑस्ट्रियन नात्सियो के एक दल ने संघीय चासरी (federal chancery) पर अधिकार कर लिया और भाग निकलने के समय डोलफुस पर प्राणघाती प्रहार किया (fatally wounded)। जो भी हो, विद्रोहियो (rebels) को सेना या अधिकाश जनसंख्या का समर्थन प्राप्त नही हुआ। शाम होते-होते, सरकार के नियन्त्रण में वियना पुन. आगया। अन्यत्र (elsewhere) केवल छुटपुट घटनाएँ (sporadic outbreaks) ही घटीं थी। यह समान्यत माना जाता था कि जमन सहायता के बिना यह विद्रोह सगठित नही किया जा सकता था और कई लोग तो हिटलर को डोलफुस की मृत्यु के लिए नैतिक रूप से उत्तरदायी मानते थे। सीमांत पर शीघ्र ही इटालियन कुमुक भेजी गई। इस बारे में भी बहुत अनुमान लगाया था कि विद्रोह (insurrection) सफल हो जाता तो इटालियन कुमुक ऑस्ट्रिया के क्षेत्र मे कूच कर जाती अथवा नही।

जुलाई १९३४ की घटनाएँ ऑस्ट्रिया के इतिहास में दूसरा मोड सिद्ध हुई हैं। ऑस्ट्रिया सबधी नीति असफल हो जाने से जो बदनामी हुई थी, उसका हिटलर पर गहरा प्रभाव पड़ा और सभवत· उसे यह भय था कि यदि वह अपनी उसी

नीति-पर चलता रहता, तो इटली सेना की सहायता से उनका बदला लेता। जर्मनी ने अपना पैंतरा (tactics) बदल दिया। ऑस्ट्रियन नात्सियों को हिंसात्मक कार्य (acts of violence) करने के लिए प्रोत्साहित करना अब बन्द कर दिया गया और ऑस्ट्रियन सरकार की नीति की जर्मनी द्वारा निन्दा अब करीब-करीब बन्द कर दी गई। हिटलर ने अनेक बार यह अस्वीकार किया कि ऑस्ट्रिया की स्वतन्त्रता को खतरा पैदा करने या उसके घरेलू मामलों में हस्तक्षेप करने के उसका कोई विचार है। यह नीति दो वर्षों तक जारी रही। जुलाई १६३६ में, जबकि अबीसीनिया अभियान (Abyssinian Venture) के कारण मध्य योरोप पर इटली का प्रभाव कम हो चुका था, तब ऑस्ट्रिया ने जर्मनी के साथ एक पुनर्मैत्री (pact of reconciliation) किया। इसके थोड़े ही समय बाद, हीमवेर, जिसे अब इटली आर्थिक सहायता नहीं दे सकता था, को विघटित (disbanded) कर दिया गया। इन घटनाओं का परिणाम यह हुआ कि ऑस्ट्रिया पर जर्मनी तथा इटली का एक प्रकार का मिश्र अधिकार (*condominium*) होगया। किन्तु चूँकि इसके साथ ही साथ जर्मनी और इटली के सबंधो मे सुधार हो चुका था, इसलिये कुछ समय तक यह जानने का अवसर ही नहीं आया कि जर्मनी के साथ किसकी मैत्री अधिक थी।

फ्रास, इटली और लघु-मैत्रीसघ

(France, Italy And the Little Entente)

सन् १६३३-३४ के शीतकाल में जर्मनी से इटली के विलगाव (alienation) तथा ऑस्ट्रिया पर इटली का सरक्षण जैसा शासन स्थापित होने के मध्य और दक्षिणी योरोप मे महत्त्वपूर्ण प्रतिघात हुये।

इसमे से प्रथम प्रतिघात फ्रास और इटली के सबधो में तीव्रगति से सुधार होना था। युगोस्लाविया के दावो के समर्थन के कारण युद्ध के बाद, फ्रास और इटली मे प्रतिद्वन्द्विता बढ गई थी। तब म, यह अन्य क्षेत्रो में भी फैल गई। अफ्रीका मे, फ्रास १६१५ की लंदन सधि (London Treaty of 1915) के अनुसार इटली के दावे को सतुष्ट करने मे असफल रहा था, और ट्यूनिस (Tunis) के फ्रासीसी अधीन राज्य (dependency) में इटालियनो की स्थिति के बारे में लगातार सघर्ष चलता रहता था। नौसैनिक मामलो में, *फ्रास द्वारा समानता का दावा रद कर दिए जाने के कारण, इटली अपमानित हो*

चुका था योरोप सम्बन्धी अन्य प्रश्नों पर, इटली हमेशा ही भूतपूर्व-शत्रु राष्ट्रों की शिकायतों का समर्थन करता था और फ्रास के साथी—यूगोस्लाविया—के प्रति बराबर शत्रुता रखता था। सन् १६३३ तक फ्रास और इटली के *सबध विगडते गये। किन्तु ऑस्ट्रिया पर हिटलर की गिद्धदृष्टि* एक ऐसा खतरा था जिससे ये दोनों ही देश समानरूप से भयभीत थे। ऑस्ट्रिया की स्वतन्त्रता में समानहित ने उन्हें शीघ्र ही निकट ला दिया। सितम्बर १६३४ में, यह सभावना प्रचारित की जाती थी (possibility was canvassed) कि शेष (outstanding) कठिनाइयों का समाधान निकालने के लिए फ्रासीसी विदेशमन्त्री बार्थो (Barthou) सरकारी तौर पर भेंट (official visit) के लिए रोम जाएगा।

किन्तु *समाधान जितना सरल प्रतीत होता था, उतना सरल नही था।* दोनों ही पक्षो के मध्य योरोप मे आसामी (clients) थे। चेकोस्लोवाकिया, यूगोस्लाविया और रूमानिया फ्रास के मित्र,राष्ट्र थे। इटली बहुत अधिक समय से हगरी का समर्थन करता चला आरहा था। मार्च १६३४ मे, इटली, ऑस्ट्रिया, *और हगरी के बीच रोम में अर्ध-राजनैतिक, अर्ध-आर्थिक (semi-political,* semi-economic) स्वरूप के अनेक समझौते हुए थे। अतएव जब तक फ्रास या इटली अपने आसामियो को छोडने के लिए तैयार नही हो जाता; तब तक यह आवश्यक था कि फ्रास-इटली पुनर्मेल (*rapprochement*) हो जाने से पहिले मध्य योरोप के प्रतिद्वन्द्वी गुटो मे पुन मैत्री स्थापित की जाये। इटली हगरी और ऑस्ट्रिया पर दबाव डाल सकता था। अब देखना यह था कि फ्रास लघु मैत्रीसघ के साथ क्या कदम उठाता।

फ्रास के चार राष्ट्र *समझौते मे भाग लेने का लघु-मैत्रीसघ ने विरोध* किया था—किन्तु पोलैंड की भाँति तीव्रतापूर्वक नही। इटली के साथ फ्रास की वर्तमान गतिविधि को भी सदेह की दृष्टि से देखा जाता था। किन्तु मैत्रीसघ के तीनो ही सदस्यो को यह सदेह समान रूप से नही था। सच पूछा जाय तो ऑस्ट्रिया को हिटलर की धमकी ने ही इस मैत्री मे पहिली गभीर फूट (serious rift) डाल दी थी। यदि ऑस्ट्रिया को जर्मनी अपने राज्य मे मिला लेता तो चेकोस्लोवाकिया चारो ओर खतरे से घिर जाता। इसीलिए उसने हर ऐसे कदम का स्वागत किया जो कि फ्रास और इटली ने ऐसी स्थिति को रोकने के लिए

उठाया। यदि जर्मनी ऑस्ट्रिया को अपने मे मिला भी ले, तो यूगोस्लाविया को अधिक भय नहीं था। किन्तु यदि इटली ऑस्ट्रिया का स्वामी बन बैठना, तो यूगोस्लाविया अपने को इटली से घिरा हुआ अनुभव कर सकता था। अतएव फ्रास और इटली के बीच पुनर्मैत्री उसे (यूगोस्लाविया को) पसन्द नही थी क्योंकि इस पुनर्मैत्री का उद्देश्य ही ऑस्ट्रिया पर इटली के प्रभाव को मजबूत बना देना था। रूमानिया इतनी दूर था कि उस पर कोई सीधा प्रभाव नही पड सकता था तथा उसे केवल इसी बात का चिन्ता थी कि हंगरी के विरुद्ध लघु-मैत्रीसघ का सगठन बना रहे। सक्षेप मे, लघु-मैत्रीसघ के तीनो ही सदस्य ऑस्ट्रिया की स्वतन्त्रता बनाए रखने के प्रति केवल मौखिक सहानुभूति (lip-service) जता सकते थे। किन्तु यदि यह स्वतन्त्रता अवास्तविक हो जाती और ऑस्ट्रिया अन्य किसी राष्ट्र के निर्देशक प्रभाव (directing influence) में आ जाता तो चेकोस्लोवाकिया यह अधिक पसद करता कि वह राष्ट्र इटली हो, यूगोस्लाविया यह चाहता कि वह राष्ट्र जर्मनी हो।

अक्टूबर १९३४ में जबकि यह प्रश्न निश्चित् ही था, यूगोस्लाविया का राजा अलेक्जेंडर फ्रासीसी सरकार के सामने अपना दृष्टिकोण रखने के लिए सरकारी तौर पर भेंट के हेतु फ्रास पहुँचा। मार्सेलीज (Marseilles) में उसकी बार्थो से मुलाकात हुई। जहाज से उतरकर, ज्योंही वे दोनों एक मोटर मे रवाना हुए, एक क्रोट् (Croat) आतकवादी की पिस्तौल ने उनके प्राण ले लिए। यह कुख्यात था ही कि इटली और हगरी दोनो ही ने असतुष्ट (dis-affected) यूगोस्लावो को आश्रय और सहायता तक दे दी थी ताकि इन लोगों का उपयोग किसी दिन विद्रोह उभाडने (fomenting rebellion) मे किया जा सके। मार्सेलीज अपराघ मे इटली या हगरी का सीधा हाथ है यह सिद्ध करना कठिन था। किन्तु यूगोस्लाविया ने राष्ट्रसंघ में विरोध प्रदर्शित करने का निश्चय किया। यदि दोनो ही सबधित बडे राष्ट्र—फ्रास और इटली—यह दृढ निश्चय नही करते कि इस दुखद घटना को उनके बीच प्रारम्भ हुए पुनर्मेल (incipient rapprochement) में बाधा न बनने दिया जाए, तो स्थिति सभवतः सकटपूर्ण हो जाती। इस अवसर पर एक गुप्त सौदा (tacit bargain) कर लिया गया। यूगोस्लाविया को इस बात पर राजी कर लिया गया कि वह केवल हगरी पर ही आरोप लगाए और जेनेवा मे अपने विरोध के समय

इटली का कोई उल्लेख (mention) न करे। इसके बदले मे इटली हगरी—इटली की सहायता के बिना जो कि असहाय (helpless) था—को इस बात के लिए राजी कर लेगा कि वह इतनी भर्त्सना (censure) स्वीकार करले जितनी कि युगोस्लाव रोष को सतुष्ट करने के लिए पर्याप्त हो। जेनेवा में इस योजना के अनुसार कार्रवाई हुई। श्रमपूर्ण चर्चाओ (arduous negotiations) के बाद, परिषद् निर्विरोध यह घोषित कर सकी कि, "कुछ हगेरियन अधिकारियो (authorities) ने, मार्सेलीज अपराध की तैयारी से सबधित कृत्यो (acts) सबधी कुछ जिम्मेदारियाँ जो चाहे असावधानी के कारण हो, अपने ऊपर ली होगी" और हगेरियन सरकार का यह कर्त्तव्य है कि वह जिन अधिकारियो का दोष सिद्ध हो जाए, उन्हे दण्ड दे।

फ्रासीसी भूमि पर शासक अलेक्जेंडर की हत्या के तीन मुख्य परिणाम हुए। उससे इटली के प्रति युगोस्लाविया का सदेह बढ गया। उससे युगोस्लाविया और फ्रास में कुछ अनबन होगई। किन्तु फ्रास और इटली के बीच पुनर्मैत्री स्थापित होने मे उससे शीघ्रता हुई। जनवरी १६३५ के आरभिक दिनो मे, बार्थो का *उत्तराधिकारी लावाल (laval) रोम गया और उसने मुसोलिनी से अनेक सम*झौते किए जिनके साथ ही लम्बे समय से चला आरहा फ्रास और इटली के बीच का बैर समाप्त होगया। जहाँ तक जर्मनी का सबध है, दोनो ही राष्ट्रो ने यह समझौता किया कि यदि जर्मनी ने पुनर्शस्त्रीकरण की नीति अपनाई तो वे "उसके (जर्मनी के) प्रति अपनाए जाने वाले अपने रुख मे तालमेल (concert upon) रखगे।" वैसे ही *मध्य योरोप के बारे में उन्होने ऑस्ट्रिया* और उस के सभी पडौसियो (स्विट्जरलेंड को छोडकर) से यह सिफारिश करने का समझौता किया कि वे इस आशय का समझौता करें कि एक दूसरे के मामलो मे वे हस्त-क्षेप नही करेंगे तथा अपने देशो की स्वतन्त्रता को नष्ट करने या "राजनैतिक अथवा सामाजिक व्यवस्था" ("political or social regime") को उलट देने के *प्रयत्नो को* किसी प्रकार की सहायता नही पहुँचाएँगे। (सच पूछा जाय तो इस प्रस्तावित समझौते की चर्चा चलाने का कभी कोई प्रयत्न ही नही किया गया, इसी बीच उन्होने यह वचन दिया कि यदि *ऑस्ट्रिया की स्वतन्त्रता को किसी* प्रकार का खतरा हुआ, तो वे ऑस्ट्रिया से तथा उसके अन्य इच्छुक (willing) पडौसियो से परामर्श करेंगे। जहाँ तक अफ्रीका का प्रश्न है, लदन सधि के अत-

र्गत अपने दावे को सल्टाते हुए फ्रास ने इटली को भूमध्यरेखा के समीप स्थित फ्रासीसी अफ्रीका (French Equatorial Africa) की एक पट्टी (strip) जो कि इटली के अधीनस्थ लीबिया (Libya) प्रात से लगी हुई थी तथा इरिट्रिया (Eritrea) के समीपस्थ फ्रासीसी सोमालिलेन्ड का एक त्रिकोणाकार (triangle) क्षेत्र सौंप दिए। ट्यूनिस में इटलीवासियों की स्थिति का विनियमन कर दिया गया तथा लावाल ने मुसोलिनी को यह आश्वासन दिया, कि यदि इटली को अबीसोनिया में कोई सुविधाएँ प्राप्त हो तो फ्रास को उनसे कोई सरोकार नहीं होगा। आगे चलकर फ्रासीसियो की ओर से यह कहा गया कि इस आश्वासन, जिसकी शर्तें गुप्त रखी गई थी, का सम्बन्ध केवल आर्थिक सुविधाओ से था।

हिटलर के सत्तारूढ होने से जो कूटनीतिक उथल-पुथल (volte-face= complete change of front in argument or opinion-Tr.) हुई उनमें अन्तिम महत्त्वपूर्ण उथल पुथल फ्रास और इटली में पुनर्मैत्री थी। इस सारे घटनाचक्र के परिणामो को यहाँ अब संक्षेप मे दिया जा सकता है। पोलैंड अब फ्रास से अलग हो गया था (यद्यपि पोलिश-फ्रासीसी मैत्री को अभी विधिवत् समाप्त घोषित नहीं किया गया था) तथा जर्मनी से उसके निकट सबध स्थापित हो चुके थे। सोवियत सघ ने अपना परपरागत (traditional) सशोधनवादी रुख (revisionist attitude) त्याग दिया था तथा वर्सेलीज सधि का समर्थन करने की फ्रांसीसी नीति को सहर्ष स्वीकार कर लिया था। इटली भी जर्मन-विरोधी मोर्चे (anti-German front) मे सम्मिलित हो चुका था। वह मध्य योरोप मे अपनी चौकियो (outposts) के रूप मे ऑस्ट्रिया और हंगरी का उपयोग करता रहा। जहाँ तक लघु मैत्रीसघ का सबध है चेकोस्लोवाकिया फ्रास और इटली जैसी स्थिति मे था तथा वह ऑस्ट्रिया के निकट आ चुका था (किन्तु हगरी के निकट नहीं, जिसने कि सशोधनवादी दावे (claims) अभी नहीं त्यागे गए थे)। इसके विपरीत यूगोस्लाविया इटली से उलटा मार्ग अपना रहा था, वह फ्रास से अलग होगया था, तथा जर्मनी के निकट सम्पर्क में तेजी से आता जा रहा था। मई १९३५ मे, चेकोस्लोवाकिया और सोवियत सघ में एक समझौता—जिसकी शर्तें एक पक्ष (fortnight) पूर्व हुए फ्रास-सोवियत समझौते के ही समान थी—हो जाने से राष्ट्रो का यह

पुनर्विभाजन समाप्त हो गया। इस समझौते ने लघु मैत्रीसघ में बढती जा रही फूट को सामने ला दिया, क्योंकि रूमानिया ने इसी प्रकार का समझौता करने का अनुरोध अस्वीकार कर दिया तथा युगोस्लाविया उन कतिपय योरोपीय राज्यो में से था जो कि अब भी सोवियत सरकार को मान्यता नही देना चाहते थे।

बालकन मैत्रीसघ
(The Balkan Entente)

सन् १६३४ में बालकन देशो मे नए सघ बने किन्तु यहाँ उनका कारण नात्सी क्राति नही थी। युद्ध के बाद हगरी से सामान्य भय (common fear) के कारण जिस प्रकार चेकोस्लोवाकिया, युगोस्लाविया और रूमानिया परस्पर निकट आगए थे, उसी प्रकार बलगेरिया के प्रति सामान्य शत्रुता (common hostility) के कारण युगोस्लाविया, रूमानिया और यूनान सयुक्त हो गए थे। सन् १६१३ के बालकन युद्ध के बाद बलगेरिया के विभाजन का चौथा लाभग्राही (beneficiary) राष्ट्र, टर्की, स्वय भी १६१८ मे पराजित राष्ट्रो की श्रेणी मे आ चुका था। कई वर्षों तक वह अपने पुराने बालकन साथियों से अलग रहा और केवल सोवियत सघ से ही निकट सम्बन्ध बढाता रहा। किन्तु १६३० में उसने यूनान से जो उसका कट्टर शत्रु था, अपनी शत्रुता समाप्त करदी। सन् १६३२ मे, वह राष्ट्रसघ का सदस्य बन गया। टर्की, युगोस्लाविया, रूमानिया और यूनान ने १६३४ में एक समझौते पर हस्ताक्षर किए जिसमें उन्होने एक दूसरे के बालकन सीमान्तो की परस्पर गारन्टी दी। बलगेरिया ने इस समझौते में शामिल होन से इन्कार कर दिया क्योंकि उसमे ऐसे सीमान्तो की पुष्टि की गई थी जिनका वह हमेशा ही विरोध करता रहा था। अलबानिया को जिसके मामलों मे इटली प्रमुख भाग लेता रहा था, को इस समझौते मे शामिल होने का निमन्त्रण ही नही दिया गया।

किन्तु इस समझौते द्वारा स्थापित "बालकन मैत्रीसघ" बहुत कमजोर ढाँचा साबित हुआ। युगोस्लाविया के लिए इस समझौते का प्रमुख लक्ष्य बालकन मामलो मे इटली के हस्तक्षेप के विरुद्ध अपनी सुरक्षा प्राप्त करना था। इसके विपरीत, यूनान ने इटालियन नौसेना से सघर्ष करने की हिम्मत नही होने के कारण समझौते के अनुसमर्थन के साथ ही साथ यह घोषणा भी की कि इस समझौते का स्वीकार करने मे वह किसी भी गैर बालकन राष्ट्र से युद्ध करने

का अपना कोई कर्त्तव्य नही मानता है। इस घोषणा के परिणामस्वरूप यूनान और *यूगोस्लाविया में अनबन हो गई।* इसी बीच, *यूगोस्लाविया और बलगेरिया* के सम्बन्धो में सुधार होना प्रारम्भ हुआ। यूगोस्लाविया से सहानुभूति रखने वाली एक बलगेरियन (प्रभाव) सरकार ने अपने आपको इटालियन प्रभाव (influence) से मुक्त कर लिया जो सोफिया में अभी तक स्थायी रूप से चला आरहा था; और युद्ध के बाद पहिली बार, उसने (बलगेरिया) उन मेसिडोनियन आतंकवादियो के विरुद्ध सख्त कदम उठाए जो यूगोस्लाविया सीमान्त मे छाए हुए थे। इसके बाद, बालकन देशों में स्थिति अस्थिर और अनिश्चित (fluid and undefined) बनी रही। बालकन मैत्रीसघ कायम रहा। किन्तु यूगोस्लाविया मैत्रीसघ के सदस्य यूनान की अपेक्षा बलगेरिया के अधिक निकट आ गया जो कि मैत्रीसघ का सदस्य भी नही था। मार्च १९३५ में यूनान मे हुए एक गृहयुद्ध और उसके बाद राजतन्त्र की पुनर्स्थापना से सामान्य शाति (general tranquility) *भग नही हुई।*

जून १९३६ में माट्रेक्स (Montreux) मे एक सम्मेलन हुआ। टर्की के अनुरोध पर, इस सम्मेलन मे लुसाने सधि पर प्रमुख हस्ताक्षरकर्त्ताओ (principle signatories) ने यह समझौता किया कि जलडमरूमध्य (the Straits) के असैनीकरण सम्बन्धी लुसाने सधि के अनुच्छेदो में परिवर्तन किया जाए। परिवर्तनो के अनुसार, टर्की को जलडमरूमध्य में किलेबन्दी करने की स्वतन्त्रता मिल गई और शाति तथा युद्ध काल में जलडमरूमध्य मे से युद्धपोतो के आवागमन (passage of warships) सम्बन्धी विनियम (regulations) निर्धारित किए गये।

---

११. संधियों का परित्याग

(Repudiation of Treaties)

पिछले अध्याय मे वर्णित कहानी से स्पष्ट है कि सारे ससार ने यह कितनी जल्दी अनुभव कर लिया कि नात्सी क्राति का अर्थ जर्मनी का पन्द्रह वर्षो तक पृष्ठभूमि मे रहने के पश्चात् बडे राष्ट्रो की 'पक्ति' मे पुनः आ जाना था। मार्च १६३५ से प्रारम्भ होने वाली पन्द्रह महीनो की अल्प किन्तु नाटकीय अवधि मे युद्धोत्तर इतिहास मे अज्ञात पैमाने पर, अन्तर्राष्ट्रीय समझौतो का खुले आम उल्लघन किया गया। शाति सधियो के जिन उपबन्धो को अभी तक अमान्य किया गया था वे या तो आपसी समझौते द्वारा या मौन स्वीकृति से, अथवा अप्रकट उल्लघन (silent evasion) द्वारा अमान्य किए गये थे। जर्मनी की स्थिति अब इतनी सुदृढ थी कि वह सधियो को विधिवत् अस्वीकार करने (formal repudiation) का मार्ग अपना सकता था। उसने वर्सेलीज की आरोपित शाति (dictated peace) और स्वेच्छा से की गई लोकार्नो सधि को भी अस्वीकार किया। इसी बीच योरोप के एक और बडे राष्ट्र ने बिना किसी बहाने (with an absence of excuse)–इस राष्ट्र की यह कार्रवाई १६३१ में जापान की सैनिक कार्रवाई से इस माने मे ही भिन्न थी—राष्ट्र सघ के एक दूसरे सदस्य पर आक्रमण किया और उसके क्षेत्र को अपने राज्य में मिला लिया, इस प्रकार शाति समझौते तथा उसके अगभूत अनुबधपत्र पर दोनो ही क्षेत्रो से एक साथ घातक प्रहार किए गये। इन पन्द्रह महीनो मे यह स्पष्ट हो गया कि सन् १६१६ के राजनीतिज्ञ पराजित राष्ट्र पर लम्बे समय तक दाडिक निर्बन्धन (penal restriction) लगाने और स्थिति को बनाए रखने (status quo) के लिए सामान्य कार्रवाई (common action) के आधार पर नई विश्व-व्यवस्था स्थापित करने के प्रति आवश्यकता से बहुत अधिक आशावान रहे थे।

जर्मनी द्वारा परित्याग

(The German Repudiation)

वर्सेलीज सधि पर प्रहार करने से पहिले, हिटलर को एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न

के समाधान की प्रतीक्षा करनी पड़ी। वर्सेलीज की संधि के अमल में आने के पन्द्रह वर्षों बाद, सार (Saar) के भाग्य का निर्णय जनमत द्वारा किया जाना था। पन्द्रह वर्षों की यह अवधि जनवरी, १६३५ में समाप्त हो गई। जनमत यथारीति (duly) लिया गया। उसके समय व्यवस्था बनाए रखने और स्वतन्त्र मतदान की गारन्टी के लिए ब्रिटिश सेनापतित्व में एक अन्तर्राष्ट्रीय सेना सम्बन्धित क्षेत्र मे रखी गई थी। सार निवासियों को वापस जर्मनी मे शामिल होने, या फ्रास में मिलने, या राष्ट्रसंघ प्रशासन में ही रहने के प्रश्न पर अपना मत देना था। इस समय जो ५०० ००० मत पड़े उनमें ६० प्रतिशत जर्मनी के पक्ष मे थे और ६ प्रतिशत से भी कम राष्ट्रसंघ प्रशासन में ही रहने के पक्ष में थे। पहिला मार्च को यह क्षेत्र जर्मनी को वापस लौटा दिया गया। अब जर्मनी की, जैसा कि हिटलर अनेक बार घोषित कर चुका था, पश्चिम में और अधिक क्षेत्रिक महत्वाकांक्षाएं (territorial ambitions) नहीं थी। वर्सेलीज की संधि से भी जर्मनी को अब और कोई आशा नहीं थी।

फरवरी के प्रारम्भ में, ब्रिटिश और फ्रांसीसी मन्त्री लन्दन मे एकत्रित हुये और उन्होंने जर्मन सरकार तथा अन्य सम्बन्धित सरकारों की जानकारी (information) के लिए एक नीति-वक्तव्य (statement of policy) प्रकाशित किया जिसमे उन्होंने यह आशा प्रकट की कि जर्मन सरकार प्रस्तावित पूर्वी और मध्य योरोपीय समझौतों (Eastern and Central European Pacts—मे सहयोग देगी। इसके अतिरिक्त उन्होंने यह सुझाव भी रखा था कि लोकार्नो संधि के अतिरिक्त एक वायुसेना समझौता (Air Pact) भी किया जाये जिसके अन्तर्गत लोकार्नो राष्ट्र यह वचन दें कि उनमे से किसी पर भी यदि हवाई हमला किया गया तो वे अपनी वायुसेना द्वारा उसकी सहायता करेंगे। इस सुझाव की प्रमुख विशेषता यह थी कि ग्रेट ब्रिटेन न कवल एक गारन्टीदाता (guarantor) के रूप में सामने आता—जैसा कि वह लोकार्नो संधि मे इस रूप में सामने आया था—अपितु जर्मनी के हवाई हमले के विरुद्ध फ्रास और बेल्जियम की गारन्टी मिल जाती तथा फ्रास और बेल्जियम के विरुद्ध जर्मनी को।

जर्मन सरकार ने वायुसेना समझौते का स्वागत किया और अपने को वचन-बद्ध न करते हुए (non committally) यह आश्वासन दिया कि वह अन्य

प्रस्तावों पर विचार करेगी तथा यह सुझाव रखा कि सारी बातों पर विचार करने के लिए ब्रिटिश सरकार के साथ सम्मेलन का आयोजन किया जाये। फ्रांसीसी सरकार को कुछ आश्चर्यान्वित करते हुए, ब्रिटिश सरकार ने यह सुझाव मान लिया तथा विदेश मन्त्री साइमन (Simon) और राष्ट्रसंघ-मामलों के मन्त्री (Minister for League of Nations Affairs) ईडन ने बर्लिन आने का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया किन्तु भेंट होने से पहिले ही बहुत सी घटनाएँ घट गईं। संसद (Parliament) के सामने अपने पुन-र्शस्त्रीकरण कार्यक्रम के स्पष्टीकरण के लिए ब्रिटिश सरकार को एक स्मरणपत्र प्रकाशित करना पडा। इस स्मरणपत्र (memorandum) में अन्य किसी भी कारण की चर्चा नही करते हुए, इस बात पर जोर दिया गया था कि जर्मनी के शस्त्रीकरण से खतरा पैदा हो गया है। इस आक्षेप के प्रति जर्मनी मे बहुत अधिक रोष प्रकट किया गया। कुछ अस्वस्थ होने का बहाना बनाकर हिटलर ने ब्रिटिश मत्रियों की भेंट की तारीख रद्द कर दी। इसी समय फ्रास की प्रतिनिधि सभा मे भी फ्रास की सेना मे वृद्धि करने के प्रश्न पर विचार किया जारहा था। हिटलर ने नाटकीय प्रति-प्रहार (dramatic counter-stroke) करने का निश्चय किया। मार्च १६, १९३५ को उसने यह घोषणा की कि जर्मनी अब वर्सेलीज सधि की सैनिक धाराओं से अपने को बद्ध नही मानता तथा भविष्य मे जर्मनी की शातिकालीन सैन्य सख्या छत्तीस डिवीजन या ५५०,००० सैनिक रहेगी एव इतने सैनिकों की पूर्ति अनिवार्य भर्ती (conscription) द्वारा की जाएगी।

इस घोषणा से फ्रास मे काफी व्याकुलता फैल गई। ग्रेट ब्रिटेन में, लोकमत बहुत पहिले से ही इस बात पर जोर देता रहा था कि जर्मनी के पुनर्शस्त्रीकरण को निःशस्त्रीकरण सम्मेलन की असफलता का अवश्यभावी (inevitable) परि-णाम बताना संपूर्ण सत्य नहीं हैं। हिटलर ने अब साइमन और ईडन को फिर निमत्रण दिया। हिटलर के उक्त निश्चय से फ्रासीसी, इटालियन और सोवियत क्षेत्रों मे जो चिन्ता उत्पन्न हो गई थी, वह इसलिए कुछ कुछ कम हो सकी थी कि ईडन वारसा (Warsaw), मास्को और प्रेग (Prague) की भी यात्रा करने वाले थे। मार्च १५ को बर्लिन-भेंट यथा समय हुई। किन्तु उसके व्यावहा-रिक परिणाम बहुत ही कम हुए। हिटलर ने वायुसेना समझौते के स्वागत की

बात पुनः दोहराई और पूर्वी एवं, कुछ कम मात्रा में मध्य योरोप समझौतों के प्रति अपनी अनिच्छा प्रकट की। उसने अपने शांतिपूर्ण इरादों (pacific intention) की पुनः पुष्टि की। जर्मन सेना की संख्या अपरिवर्तनीय रूप से (irrevocably) निश्चित कर दी गई। किन्तु उसने यह सुझाव रखा कि थल-सेना के मामले में जर्मनी अन्य राष्ट्रों द्वारा स्वीकार किया गया कोई भी सामग्री-सीमन (limitation of material) स्वीकार कर लेगा। वायुसेना के मामले में, उसने फ्रांस के साथ बराबरी का दावा किया, यद्यपि सोवियत वायु-सेना में शीघ्र वृद्धि को देखते हुए, जर्मनी को अपने इस दावे पर पुनर्विचार करने के लिए बाध्य हो सकना संभव था। नौसेना के बारे में, जर्मनी को यह स्वीकार था कि ब्रिटिश नौसेना के ३५ प्रतिशत के बराबर सभी प्रकार के जहाज उसे रखने दिए जाएँ।

इसी बीच, जर्मनी की कार्रवाई पर विचार करने के लिए, फ्रांस ने अप्रैल में राष्ट्रसंघ परिषद् का विशेष अधिवेशन बुलाने की मांग की थी। इस अधि-वेशन की तैयारी के रूप में, ब्रिटिश, फ्रांसीसी और इटालियन राजनीतिज्ञ स्ट्रेसा (Stresa) में एकत्रित हुए। *स्ट्रेसा सम्मेलन ने प्रस्तावित पूर्वी और मध्य* योरोप समझौतों संबंधी अपने अनुमोदन की पुन. पुष्टि की। उसने इस बात पर भी अनिर्णायक चर्चा (inconclusive discussion) की कि छोटे-छोटे भूतपूर्व शत्रु-राज्यों (lesser ex-enemy states) को पुनर्शस्त्रीकरण की विधिवत् अनुमति (permission) दी जाए अथवा नहीं। इटली (ऑस्ट्रिया और हंगरी द्वारा उकसाए जाने के कारण) इस कदम के पक्ष में था जबकि फ्रांस(लघु मैत्रीसंघ देशों की प्रेरणा पाकर) उसके विरोध में था। किन्तु इस सम्मेलन का प्रमुख कार्य राष्ट्रसंघ परिषद् में प्रस्तुत किए जाने वाले एक ऐसे प्रस्ताव का प्रारूप तैयार करना था जिसमें वर्सेलीज संधि के अन्तर्गत अपने कर्त्तव्यों को अस्वीकार करने के कारण जर्मनी की निन्दा की गई थी। तीनों राष्ट्रों ने यह प्रस्ताव परिषद् में यथाविधि रखा और वह निर्विरोध स्वीकृत भी हो गया। मतदान के समय अनु-पस्थित रहकर केवल डेन्मार्क ने यह अभिव्यक्त किया कि जर्मनी के आरोपकों (accusers) के साथ जो कुछ हुआ है, उसका दोष जर्मनी के सिर पर भी है। प्रस्ताव केवल धौंस (empty gesture) ही था क्योंकि उसके बाद न तो कोई कार्रवाई की गई और न कोई कार्रवाई किए जाने का इरादा ही था। किन्तु

उससे जर्मनी में बहुत रोष फैला। विशेषकर जर्मनी को इस बात पर आश्चर्य था कि जिस ग्रेट ब्रिटेन ने अपने विदेशमन्त्री को बर्लिन भेजकर जर्मनी की कार्रवाई को क्षमा कर दिया प्रतीत होता था वही अब जेनेवा मे बिना शर्त भर्त्सना प्रस्ताव (unqualified vote of censure) रखने मे अगुआ बना हुआ था।

किंतु अभी तो और भी आश्चर्यजनक बात होनी शेप थी। राष्ट्रसघ परिषद् मुश्किल से ही विसर्जित हुई होगी कि बर्लिन को यह सूचना भेजी गई कि ब्रिटिश सरकार हिटलर का यह प्रस्ताव स्वीकार करने के लिए तैयार है कि सभी प्रकार के जहाजो के रूप मे जर्मनी की नौसैनिक शक्ति ब्रिटेन की शक्ति का ३५ प्रतिशत रहे और इस आधार पर किए जाने वाले किसी भी समझौते का ब्रिटिश सरकार स्वागत करेगी। जर्मन प्रतिनिधि यथासमय लंदन आए और जून मे एक आग्ल-जमन नौ-सैनिक समझौते (Anglo-German naval agreement) पर हस्ताक्षर हो गए। इस प्रकार ब्रिटिश सरकार ने वर्सेलीज सधि के नि.शस्त्रीकरण सबधी उपबधो को अमान्य करने के कारण, जर्मनी की कडे शब्दो में निन्दा करने के बाद, अब स्पष्ट रूप स यह मान लिया जर्मनी को सधि द्वारा लगाए गए नौसैनिक निर्बन्धनो (naval restrictions) की अवहेलना (ब्रिटिश शक्ति के ३५ प्रतिशत तक) करने और कुछ ऐसे प्रकार के जहाजो को रखने जिनमे पनडुब्बियाँ—जिनका सधि मे बिलकुल निषेध कर दिया गया था—भी शामिल थी, का अधिकार है। यह समझौता ब्रिटिश सामान्य बुद्धि (common sense) की एक खूबी प्रतीत होती थी। क्योंकि जहाँ एक ओर फ्रास ने किसी भी प्रकार का समझौता करने से इन्कार कर जर्मनी को थल-सेना का असीमित पुनर्शस्त्रीकरण (unlimited rearmament on land) करने के लिए उत्साहित किया था, वही दूसरी ओर ग्रेट ब्रिटेन ने समझौता करने की तत्परता दिखाकर, जर्मन नौसैनिक शक्ति का एक महत्त्वपूर्ण सीमन करा लिया था। किन्तु पहिले जो कुछ हो चुका था, उससे यह समझौता इतना असगत (inconsistent) मालूम पडता था कि फ्रास, इटली और सोवियत सघ में उससे इतनी हैरानी (bewilderment) हुई जितनी ब्रिटेन द्वारा जेनेवा प्रस्ताव का अगुआ बनने के समय भी जर्मनी मे नही हुई थी।

सन् १९३५ के प्रथम छः महीनो मे जर्मनी के प्रति ब्रिटिश नीति इतनी ढुलमुल (vacillating) रही थी कि उसकी आलोचना होना अनिवार्य था। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि दो विरोधी नीतियों (conflicting

policies) पर एक साथ चला जा रहा था। नात्सी क्रांति के बाद प्रथम दो वर्षों मे, कुल मिलाकर (on the whole) नात्सी अतियों (excesses) का ब्रिटिश लोकमत पर इतना गहरा प्रभाव पडा था कि जर्मनी की शिकायतो और महत्त्वाकाक्षाओं के प्रति उसकी सहानुभूति नही रह गई थी। ब्रिटिश सरकार, यद्यपि किसी प्रकार के वचन (commitments) देने के लिए तैयार नही थी, तदपि उसने फ्रासीसी, इटालियन और सोवियत सरकारो को पूर्वस्थिति—विशेषकर मध्य योरोप मे जहाँ कि उसे सबसे अधिक सीधा खतरा प्रतीत होता था—बनाए रखने के लिए प्रतिरक्षात्मक गुटबदियाँ (defensive alliances) करने के उनके प्रयत्नो को प्रोत्साहित किया था। किन्तु जनवरी १९३५ तक, जबकि फ्रास और इटली मे पुनर्मैत्री (reconciliation) से ये गुटबदिया लगभग पूरी हो चुकी थी, तब नात्सी शासन के विरुद्ध रोष ग्रेट ब्रिटेन मे कम होने लगा। अधिकाश लोकमत इसी दृष्टिकोण का समर्थक हो गया था कि इटली और सोवियत सघ के साथ फ्रास के समझौते का केवल यही परिणाम हुआ था कि जर्मनी अकेला (isolated) पड गया था और चारो तरफ से घिर गया था (encircled) तथा वर्सेलीज सधि में समाविष्ट असमानताएँ यथावत् बनी हुई थी—सक्षेप मे, वे ही परिस्थितियाँ भविष्य मे भी बनी रहे जो कि नात्सी क्राति के लिए अधिकाशतः जिम्मेदार थी। जिन लोगो का यह मत था, वे इस बात से तो इन्कार नहीं करते थे कि जर्मनी किसी दिन शाति के लिए खतरा हो सकता है किन्तु उनका यह विश्वास था कि फ्रासीसी, इटालियन और सोवियत नीति उस खतरे को केवल बढा ही रही हैं। इसलिए ब्रिटिश सरकार का प्रथम लक्ष्य जर्मनी के चारो तरफ डाले गए घेरे (ring) को तोडना, जर्मनी की शिकायतो पर मित्रतापूर्ण चर्चा करना तथा उसे पुनः राष्ट्रसघ में ले आना होना चाहिये। साइमन की बर्लिन यात्रा इस विचारधारा के लोगो के मत को स्वीकार कर लेना ही था। किन्तु दूसरा मत, अर्थात् जर्मन खतरे का सामना करने के लिए ग्रेट ब्रिटेन द्वारा अपनाया जाने वाला सही मार्ग उन राष्ट्रो को हर सभव सहायता देना है जिन्हे जर्मनी से खतरा प्रतीत होता है, अब भी अनेक क्षेत्रो मे दृढतापूर्वक प्रतिपादित किया जाता था। स्ट्रेसा और जेनेवा में ब्रिटिश प्रतिनिधिमडलो के रुख मे इस मत की ही प्रधानता रही। उसके बाद आँग्ल जर्मनी नौसैनिक समझौता होने पर जर्मनी से समझौता कर लेने की नीति पुन. सर्वोपरि (uppermost) हो गई। इस कारण ब्रिटेन की नीति में जो अनिश्चितता आई

उसने फ्रांस और उसके साथियों को ब्रिटिश इरादों के प्रति बहुत अधिक सदेहशील (suspicious) बना दिया तथा जर्मनी को ब्रिटिश नीति पुनः बदल जाने की आशा करने के लिए प्रोत्साहित किया किन्तु इस नीति में यह उलट फेर हुआ ही नहीं ।

इटली द्वारा परित्याग
(The Italian Repudiation)

लन्दन सधि के अन्तर्गत इटली के दावो का जो अन्तिम समाधान निकाला गया था, उससे इटली की औपनिवेशिक महत्त्वाकाक्षाए अब भी पूरी नहीं हुई थी। ग्रेट ब्रिटेन या फ्रास से अब और अधिक आशा नही की जा सकती थी। किन्तु मुसोलिनी कुछ समय से इस सभावना पर विचार कर रहा था कि इटली स्वय ही अपनी सहायता कर सकता है अथवा नहीं। उसने फ्रांस की ईर्ष्या और विरोध पर ही अभी तक हमेशा भरोसा किया था। यह सत्य जान पडता है कि जर्मनी को प्रोत्साहित करने और उसकी सहायता करने की इटालियन नीति का आशिक कारण इटली की यह इच्छा रही हो कि फ्रास योरोप में ही इतनी चिन्ताओ मे पडा रहे कि वह अन्य स्थानो मे इटली की योजनाओ में बाधक न हो सके। किन्तु घटनाओ ने दूसरा ही रूप धारण कर लिया। सन् १९३५ के प्रारम्भ में, फ्रास को योरोप मे इटली की मित्रता की इतनी आवश्यकता थी कि वह अफ्रीका मे इटली को कोई भी सुविधा देने के लिए तैयार था। मुसोलिनी ने शीघ्र ही अवसर का लाभ उठाया और रोम भेंट के समय उसने अबीसोनिया में अग्रगामी इटालियन नीति (forward Italian policy) (जिसका विस्तार सम्भवत. इस समय ठीक-ठीक निश्चित नही किया गया था) के प्रति लावल की मौन सम्मति (acquiescence) प्राप्त कर ली।

अबीसीनिया का चुनाव कई कारणो से किया गया था। लिबेरिया (Liberia) को छोड, अबीसीनिया ही अफ्रीका में स्वतन्त्र देशी राज्य (native state) के रूप मे बचा था। वह सोमालिलैंड और इरिट्रिया (Eritiea) नामक वर्तमान इटालियन उपनिवेशो के बीच में स्थित था। उसके बारे मे यह विख्यात था कि उसके अन्तर्प्रदेश मे, जिसका विकास अभी तक नहीं किया गया था, खनिज सम्पत्ति (mineral wealth) विद्यमान है। इसके अतिरिक्त वहाँ एक ऐसी घटना इटली के आक्रमण से पूर्व घट गई, जो इटली की

योजनापूर्ण उत्तेजना के कारण सम्भवतः घटी हो या इटली का उससे कोई सम्बन्ध न भी रहा हो—जिसके कारण इटली को अबीसीनिया में कार्रवाई करने का एक बहाना मिल गया। दिसम्बर १९३४ मे, वालवाल (Walwal) ग्राम के निकट अबीसीनियन सैनिक टुकडी और इटालियन सोमालिलैंड के एक सैन्य-दल मे मुठभेड हो गई। इस मामूली भिडन्त (skirmish) में कुछ इटलीवासियो की मृत्यु हो गई। इस पर इटली की सरकार ने अबीसीनिया से क्षमा-याचना (apology) और क्षतिपूर्ति के रूप में भारी रकम की माँग का। अबीसीनिया ने राष्ट्रसघ से अपील की और यह अनुरोध किया कि अनुबन्धपत्र के ग्यारहवें अनुच्छेद के अधीन यह मामला परिषद् की कार्यसूची मे शामिल किया जाये।

अनुबन्धपत्र और पेरिस समझौते (Pact of Paris) के अतिरिक्त दो ऐसी सन्धियाँ थीं जिनके कारण इटली युद्धसम कार्रवाई (warlike action) नही कर सकता था। सन् १९०६ में ग्रेट ब्रिटेन, फ्रास और इटली ने एक समझौता किया था जिसके अनुसार उन्होने यह घोषित किया था कि "अबीसीनिया की अखडता को अखड (intact) बनाए रखने" ("maintain intact the integrity of Abyssinia") में उनका सामान्य हित है। इटली ने भी १९२८ मे अबीसीनिया से एक सन्धि की थी जिसके अनुसार दानो ही पक्षो ने एक दूसरे को यह वचन दिया कि वे "सदा शाति और मित्रता" ("constant peace and perpetual friendship") बनाए रखेंगे तथा अपने सभी विवादो को "समझौते और पचनिर्णय द्वारा" ("procedure of conciliation and arbitration") सुलझाएँगे। सन् १९२३ में जब अबीसीनिया को राष्ट्रसघ का एक सदस्य बनाया गया था, तब इटली अबीसीनिया को प्रवेश दिलाने वाले प्रमुख समर्थको में से एक था। अतएव, जब जनवरी १९३५ में परिषद् के सामने अबीसीनिया की अपील आई, तब इटली के प्रतिनिधि ने अनुबधपत्र के ग्यारहवें अनुच्छेद के अधीन वालवाल घटना पर विचार किए जाने को अनावश्यक बताया क्योकि उनकी राय मे, "इस घटना से दोनो देशो के शातिपूर्ण-सम्बन्धो पर किसी प्रकार का प्रभाव पडने की आशा नही थी"। इसके साथ ही उसने इस बात की भी इच्छा प्रकट की कि १९२८ की सधि के अधीन वह समझौते और पचनिर्णय द्वारा इस समस्या का

समाधान निकालने के लिए तैयार है। परिषद् ने इस आश्वासन पर आगे किसी समय विचार के लिए इस प्रश्न को स्थगित कर दिया।

अगले तीन माह तक, इटालियन सरकार ने पचों (arbitrators) की नियुक्ति में विलंब किया। इसी अवधि मे इरिट्रिया और इटालियन सोमालिलैंड स्थित इटालियन सैनिक टुकडियो के लिए इटली से सैनिक और युद्ध-सामग्री की जो कुमुक भेजी गई, उससे यह प्रतीत होता था कि गम्भीर सैनिक कार्रवाई की जाने वाली है। तीन सप्ताह बाद स्ट्रेसा में ब्रिटिश, फ्रांसीसी और इटालियन मन्त्रियो का एक सम्मेलन हुआ। किन्तु अफ्रीका की स्थिति गम्भीर होते हुए भी, किसी भी प्रतिनिधि ने उसकी ओर सकेत तक नही किया। सम्मेलन द्वारा जो "अन्तिम घोषणा" की गई थी उसमें कहा गया था कि "योरोप की शान्ति को खतरा उपस्थित करने वाले सन्धियो के किसी भी एक पक्षीय अस्वीकरण (unilateral repudiation) का यह सम्मेलन विरोध करता है। जहाँ तक मुसोलिनी का सम्बन्ध है, प्रथम दो शब्दो का जोडा जाना मुश्किल से अप्रासगिक (accidental) था। योरोप के ही मामलो मे उलझे होने के कारण ब्रिटिश प्रतिनिधि अरुचिकर (unwelcome) अबीसीनियन समस्या का उल्लेख कर निश्चय ही असामजस्यपूर्ण बात नही करना चाहते थे। किन्तु इटली द्वारा खुले आम युद्ध की तैयारियो पर उनके मौन का मुसोलिनी ने यह अर्थ लगाया कि फ्रास की भाँति ग्रेट ब्रिटेन भी उसकी अफ्रीकी कार्रवाई के प्रति उदारतापूर्ण (benevolent) या कम से कम उदासीनतापूर्ण (indifferent) रुख अपना कर सतोष कर लेना चाहता है।

स्ट्रेसा सम्मेलन के बाद हुए राष्ट्रसघ परिषद् के अधिवेशन मे भी अबीसीनिया की अपील पर इसलिए विचार नही किया जा सका कि इटली सरकार ने यह आश्वासन फिर दिया कि वालवाल घटना के सबध मे पचनिर्णय कराने के लिए वह तैयार है। इस बार सचमुच ही पचो की नियुक्ति की गई। अन्ततः, सितबर ३ को, पच एकमत निष्कर्ष (unanimous conclusion) पर पहुँचे। उनका निष्कर्ष यह था कि वालवाल घटना के लिए किसी भी सरकार को उत्तरदायी नही ठहराया जा सकता। सच पूछा जाए तो यह घटना गभीर महत्त्व (intrinsic importance) की नही थी। भारी सख्या मे इटालियन सेना इकट्ठी करने का बहाना प्रस्तुत कर उसने अपना उद्देश्य पूरा कर दिया था और अब उसे एक ओर रखा जा सकता था।

इसी बीच, वास्तविक समस्या अर्थात् अबीसीनिया को इटली से सैनिक खतरा (military threat) पर विचार करने लिए प्रयत्न किए गये थे। जून १६३५ में, ईडन रोम गए और उन्होंने यह प्रस्ताव रखा कि ग्रेट ब्रिटेन अबीसीनिया को ब्रिटिश सोमालिलैंड में स्थित जीला बन्दरगाह (port of Zeila) दे और उसके बदल मे अबीसीनिया ओगडन (Ogaden) का अपना दक्षिणी प्रात इटली को दे। मुसोलिनी ने इस प्रस्ताव को दो कारणो से अस्वीकार कर दिया। एक तो यह कि इटली को सौंपा जाने वाला क्षेत्र एक दम अपर्याप्त है और दूसरे अबीसीनिया को समुद्र तक पहुँच का मार्ग मिल जाने से अबीसीनिया की स्थिति सुदृढ हो जाएगी। अगस्त मे ग्रेट ब्रिटेन, फ्रास और इटली के प्रतिनिधि १६०६ के समझौते से सबधित पक्षो की हैसियत से पेरिस मे एकत्रित हुए। इस सम्मेलन का परिणाम फ्रास-ब्रिटेन का यह प्रस्ताव था कि अबीसीनिया के "आर्थिक विकास और प्रशासनिक पुर्नसगठन (administrative reorganisation) मे सहायता का अनुरोध राष्ट्रसघ से करने के लिए अबीसीनिया से कहा जाए तथा इस प्रकार की सहायता पहुँचाते समय, राष्ट्रसघ "इटली के विशेष हितो" का "विशेष रूप' से ध्यान रखे। इस प्रस्ताव को भी इटालियन सरकार ने अस्वीकार कर दिया। इसलिए जब ४ सितम्बर को—वालवाल पचो द्वारा अपना प्रतिवेदन प्रकाशित किए जाने के दूसरे दिन—आखिर जब राष्ट्र-सघ परिषद् ने १६ मार्च को अबीसीनिया की अपील पर विचार करना प्रारम्भ किया, तब मामला इतना बढ चुका था कि जेनेवा मे होने वाली किसी भी कार्रवाई का इस समस्या पर प्रभाव नही पड सकता था। ब्रिटेन के नए विदेश मन्त्री सर सेम्युअल होर (Sir Samuel Hoare) ने राष्ट्रसघ-सभा में यह अप्रत्याशित एव जोरदार घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार अनुबधपत्र के अधीन अपने कर्त्तव्यो को कार्यान्वित करने (to carry out) का विचार रखती है। परिषद की एक समिति ने अबीसीनिया की "सहायता-योजना" ("scheme of assistance") तथा इटली और अबीसीनिया के बीच "क्षेत्रिक पुन. समायोजन (territorial readjustments) सम्बन्धी योजनाएं तैयार की जिन्हे परिषद् ने बाद में स्वीकार भी कर लिया। किन्तु अक्टूबर २ को इटली का अबीसीनिया पर आक्रमण प्रारम्भ होगया।

राष्ट्रसघ-सभा में ब्रिटिश विदेशमन्त्री ने जो भाषण दिया था, और जेनेवा में छोटे-छोटे राज्यो तथा ग्रेट ब्रिटेन के लोकमत ने उसका जो उत्साहपूर्ण

स्वागत (enthusiastic reception) किया, उससे यह स्पष्ट हो चुका था कि मुसोलिनी का यह आशा करना गलत था कि राष्ट्रसघ अक्रियाशील (quiescent) रहेगा। अबीसीनिया के मामले में युद्ध (hostilities) प्रारम्भ होते ही शीघ्रतापूवक परिषद् द्वारा की गई कार्रवाई व उससे पहिले वास्तविक समस्या को टालने के उसके प्रयत्नो और मचूरिया के मामले में जापान के विरुद्ध विपरीत निर्णय (adverse verdict) देने की परिषद् की अनिच्छा (reluctance) में कितना अन्तर था। अक्टूबर ७ को, परिषद् की एक समिति ने एक प्रतिवेदन तैयार किया, जिसमें यह निर्णय दिया गया था कि इटली ने ' अनुबधपत्र के बारहवें अनुच्छेद के अधीन अपने अनुबधनो (covenants) की अवहेलना करते हुए युद्ध का आश्रय लिया हैं।" दूसरे दिन परिषद् के सदस्यो ने इस प्रतिवेदन को स्वीकार कर लिया, केवल इटली ने ही उसका विरोध किया। दो दिनों के बाद, राष्ट्रसघ सभा ने अनुच्छेद सोलह के अधीन सदस्यो को अपने कर्त्तव्यों का पुन: स्मरण कराते हुए, उनसे यह सिफारिश की कि उनके द्वारा उठाए जाने वाले कदमो में साम्प्रक्त लाने के लिए वे एक समिति गठित करें। अक्टूबर १६ तक साम्प्रक्त समिति (co-ordinating committee) ने राष्ट्रसघ के सभी सदस्यों से यह अनुरोध किया कि वे (१) अपने-अपने देशो से सभी प्रकार के ऋण या साख (loans or credits) इटली को देना बन्द कर दें, (२) हर प्रकार की युद्ध सामग्री और युद्ध प्रयोजनो (war purposes) के लिए विशेष रूप से आवश्यक कुछ वस्तुओ के इटली को निर्यात किए जाने पर रोक (embargo) लगा दें, तथा (३) इटली से आयातो (imports) पर भी रोक लगावें। ऑस्ट्रिया, हगरी और अलबानिया को छोड राष्ट्रसघ के सभी योरोपीय सदस्यो तथा कुछ अमहत्त्वपूर्ण अपवादो (insignificant exceptions) को छोड, राष्ट्रसघ के गैर योरोपीय सदस्यो ने इन कदमो का अनुमोदन किया था। फ्रास बडी विचित्र स्थिति मे था कि उसे अपने ऐसे नए साथी के विरुद्ध अनुशास्तियाँ लगानी पडी थी जिसे उसने एक वर्ष से भी कम समय पहिले अपना मित्र बनाया था। किन्तु उसने इतने अधिक समय तक राष्ट्रसघ के प्रति अपनी निष्ठा प्रकट की थी और सोलहवें अनुच्छेद को वास्तविक बनाने की इतनी इच्छा व्यक्त की थी कि वह अब इन कदमो का विरोध नही कर सकता था। नवम्बर १८, १६३५ को, राष्ट्रसघ के इतिहास में पहिली बार अनुशास्तियाँ—

यद्यपि उनका स्वरूप केवल आर्थिक था और वे भी पूर्णरूपेण नहीं लगाई गई थी—लागू हो गई।

जैसी कि आशा की गई थी, उसके विपरीत युद्ध के प्रथम तीन मास इटली के लिए इतने अच्छे नहीं रहे। इटली की सेनाएँ अबीसीनिया मे दूर तक प्रवेश कर गईं और बमवर्षक वायुयानों की सहायता से, हर स्थान पर अबीसीनिया का मुकाबला करती रही। किन्तु मुख्य अबीसीनियन सेना का कुछ भी नही बिगडा। सैनिक विशेषज्ञो को इसमें संदेह ही था कि इरिट्रिया और इटालियन सोमालिलैंड को ओर से आगे बढने वाली दोनों ही इटालियन सैनिक टुकडियाँ अबीसीनिया को एक मात्र रेलवे [एडिस अबाबा (Addis Ababa) से समुद्र तट (coast) तक की रेलवे लाइन] तक जून में वर्षाऋतु प्रारम्भ होने से पहिले पहुँच कर मिल सकेंगी।

दिसम्बर में फ्रास को यह आशका हो गई कि यदि इटली अबीसीनिया मे असफल हुआ तो मध्य योरोप की स्थिति पर उसकी प्रतिक्रिया हो सकती है। ब्रिटिश सरकार को सभवतः यही भय था। वह तो यहाँ तक डरती थी कि निराशा की स्थिति में, कही मुसोलिनी ग्रेट ब्रिटेन पर आक्रमण न कर बैठे, क्योंकि अनुशास्तियाँ लगवाने में ग्रेट ब्रिटेन का ही प्रमुख हाथ था। होर लावल से मिलने के लिए पेरिस गये। इटली और अबीसीनिया की सरकारों के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए उन्होंने शाति की शर्तें तैयार की। उनका प्रमुख उद्देश्य यह था कि शाति की शर्तें इतनी आकर्षक हो कि मुसोलिनी युद्ध बन्द करने के लिए तैयार हो जाए। यह प्रस्तावित (proposed) किया गया था कि इटालियन सेनाओ ने अभी तक जितने अबीसीनियन क्षेत्र पर आक्रमण किया था, उससे भी काफी अधिक क्षेत्र इटली को दिया जाये। इधर अबीसीनिया को यह प्रलोभन दिया गया कि उसे ब्रिटिश सोमलिलेन्ड में समुद्रातक गलियारा दिया जाएगा। ये प्रस्ताव जब प्रकाश में आए तब ग्रेट ब्रिटेन में बहुत रोष फैल गया। लोकमत का यह विश्वास था कि इस योजना का उद्देश्य सकटपूर्ण स्थिति से ससम्मान छुटकारा पा जाने मे इटली की सहायता करना है। और ग्रेट ब्रिटेन का लोकमत यह अनुभव करता था कि राष्ट्रसघ के सदस्य के नेता ग्रेट ब्रिटेन का यह कर्त्तव्य नही है कि वह एक आक्रमणकर्त्ता राष्ट्र को अपने आक्रमण का लाभ उठाने में सहायता पहुँचाये। होर ने त्यागपत्र दे दिया; और उसके स्थान में ईडन मत्री

हुये। इस घटना के बाद होर-लावाल योजना की और कोई चर्चा सुनाई नही पडी।

मार्च १९३६ से पहिले तक अबीसीनिया में इटली का और भी तीव्र गति से आगे बढना स्पष्ट रूप से अनुभव नही हुआ था। अप्रैल की समाप्ति से पहिले इरिट्रियन सेना रेलवे और राजधानी के बिलकुल समीप आ गई। आन्तरिक व्यवस्था (internal order) भंग हो गई और पहिली मई को अबीसीनिया के सम्राट (Emperor) देश छोडकर भाग गये। उनके पलायन (flight) से सगठित मुकाबिलो (organised resistance) का अंत हो गया। कुछ ही दिनो के बाद एडिस अबाबा पर इटालियन सेनाओ ने अधिकार कर लिया। मई की नवी तारीख को इटली के शासक को सम्राट् घोषित कर दिया गया और सारे अबीसीनिया को इटली मे सरकारी तौर पर (officially) मिला लिया गया।

इटली की विजय राष्ट्रसघ के लिए गभीर आघात तथा ग्रेट ब्रिटेन के लिए बडी उलझन का विषय थी। अनुशास्तियो के कारण यद्यपि इटली का व्यापार ठप्प हो चुका था और उनका कुप्रभाव उसकी स्वर्ण सचिति (gold reserve) पर पडा था, तदपि उसे इतनी क्षति नही पहुँची थी कि इटली की सैनिक कार्रवाई में किसी प्रकार की रुकावट आये। अब यह स्पष्ट था कि इटली युद्ध के अतिरिक्त और किसी भी उपाय से अपने शिकार को नही छोडेगा। फास के समान ग्रेट ब्रिटेन भी अपने इस निश्चय पर दृढ़ था कि इटली से युद्ध मोल नही लिया जाये। जुलाई में राष्ट्रसघ सभा का जो विशेष अधिवेशन हुआ, उसमें ब्रिटिश सरकार ने यह प्रस्ताव रखा कि अनुशास्तियाँ हटा ली जाएँ। सम्राट् की व्यक्तिगत अपील के बावजूद भी, यह प्रस्ताव निर्विरोध स्वीकृत हो गया। सभा ने एक प्रस्ताव स्वीकार कर राष्ट्रसघ के सदस्यो से यह अनुरोध किया कि सभा के अगले अधिवेशन मे वे इस बात पर अपने विचार प्रस्तुत करें कि "अनुबधपत्र के सिद्धान्तो को लागू करने (application of the principles) के तरीके मे सुधार" के लिए सर्वोत्तम उपाय कौन से हो सकते हैं।

लोकार्नो का अंत (The End of Locorno)

इटली के प्रति अन्य बडे राष्ट्रो के दब्बू रुख (pusillanimous attitude) का आशिक कारण यह था कि अबीसीनियन युद्ध की अंतिम अवस्थाओं के समय ही जर्मनी ने एक और अस्वीकरण कर दिया। मई १९३५ में

किए गए फ्रास-सोवियत समझौते को जर्मनी प्रारम्भ से ही केवल उसके विरुद्ध की गई सैनिक गुटबदी, तथा इस कारण लोकार्नो सधि से असंगत (incompatible) मानता था—फ्रासीसी और ब्रिटिश सरकारो का यह मत नही था। जर्मनी ने इसका और भी जोरो से विरोध किया। सन् १९३६ के प्रारम्भ मे, जब यह समझौता अनुसमर्थन के लिए प्रस्तुत किया गया, तब हिटलर ने पुन. साहसपूर्ण प्रति प्रहार (counter-stroke) करने का निश्चय किया।

वर्सेलीज की सधि के अनुसार जर्मनी राइनभूमि मे न तो सशस्त्र सेना रख सकता था और न ही किलेबदी कर सकता था। लोकार्नो सधि के समय, हस्ताक्षरकर्त्ताओ ने "सामूहिक रूप से और पृथक रूप से" ("collectively and severally") इस बात की गारटी दी थी कि इन उपबधो का पालन किया जाएगा। मार्च १९३५ मे, हिटलर ने आरोपित (dictated) वर्सेलीज सन्धि को अस्वीकार किया था, किन्तु स्वेच्छापूर्वक की गई लोकार्नो सन्धि के प्रति पुन अपनी निष्ठा घोषित की थी। ७ मार्च १९३६ को, जर्मन सरकार ने ब्रिटिश, फ्रासीसी और बेल्जियम सरकारो को सूचित किया कि चूँकि फ्रास ने फ्रांस सोवियत समझौते के अन्तर्गत ऐसे कर्त्तव्य स्वीकार कर लिए हैं, जोकि लोकार्नो सधि के अन्तर्गत फ्रास द्वारा स्वीकार किए गए कर्त्तव्यो से असंगत हैं, इसलिए वह सन्धि "आतरिक आशय" ("inner meaning") से रहित हो चुकी है। इस कारण जर्मनी इस सन्धि से अपने आपको अब बाध्य नही मानता और उसी दिन जर्मन सेनाएँ राइनभूमि पर पुन अधिकार कर रही हैं। जिस ज्ञापन (memorandum) में यह सूचना दी गई थी, उसमें अनेक प्रस्ताव भी थे। जर्मनी ने यह प्रस्तावित किया कि वह सीमान्त के दोनो ओर समान दूरी तक एक नया असैनीकृत क्षेत्र स्थापित करने, (चूँकि यह सवविदित था कि फ्रास और बेल्जियम अपने क्षेत्र के किसी भी भाग को असैनीकृत करने क लिए तैयार नही हैं, जमनी का यह प्रस्ताव प्रस्ताव न होकर, विवाद का विषय (debating point) ही था, लोकार्नो सन्धि के ढग का एक ऐसा नया समझौता करने, जिसमें राइनभूमि सम्बन्धी धाराएँ न हो; अपने पूव के पडोसी देशो (और जैसा कि हिटलर ने बाद मे घोषित किया, ऑस्ट्रिया और चेकोस्लोवाकिया से भी) से अनाक्रमण समझौते करने, तथा राष्ट्रसघ मे पुनः शामिल होने के लिए राजी है।

फ्रांस में यद्यपि आशंका व्यक्त की गई, तदपि अनुशास्तियाँ लगाने या बदला लेने (sanctions or reprisals) के लिए कोई गंभीर प्रस्ताव नहीं रखे गए। स्वेच्छापूर्वक की गई एक सन्धि को इस प्रकार अस्वीकार कर देने से ब्रिटिश लोकमत (public opinion) को बडा दुःख हुआ किन्तु, कुल मिलाकर वह हिटलर के पिछले कृत्यों (past actions) की भर्त्सना करने की अपेक्षा भविष्य में हिटलर द्वारा किए जाने वाले प्रस्तावों पर विचार करना ही अधिक पसंद करता था। ब्रिटिश, फ्रांसीसी और बेल्जियन सरकारों में मार्च में वार्ताएं चलीं। राष्ट्रसंघ परिषद् ने, जिसका अधिवेशन लंदन में विशेष रूप से बुलाया गया था, यह निर्णय दिया कि जर्मनी ने "असेनीकृत क्षेत्र में सेना को प्रविष्ट कराकर तथा वहाँ उन्हें स्थायी रूप से रखकर" वर्सेलीज संधि का उल्लंघन किया है। फ्रांस और बेल्जियम का भय दूर करने के लिए, ब्रिटिश सरकार इस बात पर राजी हो गई कि यदि फ्रांस और बेल्जियम पर जर्मनी ने आक्रमण किया, तो क्या कदम उठाए जाएं। इस विषय की चर्चा सेनापति सहायकगण (General Staffs) चलायें। जर्मनी और फ्रांस ने "शांति योजनाएं" ("peace plans") बनाई। किन्तु ये दोनों ही दस्तावेज इतने अस्पष्ट और विस्तृत (comprehensive) थे कि उनका व्यावहारिक महत्त्व बहुत ही कम था। फ्रांसीसी सरकार से परामर्श करने के बाद, मई के प्रारम्भ में, ब्रिटिश सरकार ने एक प्रश्नावली (questionnaire) जर्मनी के पास इस आशा से भेजी कि जर्मनी के प्रस्तावों का और भी स्पष्टीकरण प्राप्त हो सके। हिटलर ने इस प्रश्नावली का कोई उत्तर नहीं दिया। संभवतः प्रश्नावली की भाषा ने उसे अप्रसन्न कर दिया हो। पूरे ग्रीष्म भर, राजनैतिक जगत अबीसीनिया पतन में उलझा रहा और लोकार्नों वार्ताओं की ओर उसका ध्यान नहीं गया। सितंबर में, जब इन वार्ताओं को पुनः प्रारम्भ करने का प्रयत्न किया गया, तब कठिनाइयाँ अजेय (insuperable) प्रतीत हुईं। जर्मनी इस बात के लिए तो तैयार था कि पश्चिम के लिए नया गारन्टी समझौता किया जाये। किन्तु वह सोवियत संघ से किसी भी प्रकार का समझौता नहीं करना चाहता था। बिना किसी प्रकार के पूर्वी समझौते के पश्चिमी समझौता फ्रांस को अस्वीकार्य (unacceptable) था।

इसी बीच एक नई परेशानी पैदा होगई। अधिकांश अन्य छोटे छोटे राष्टों की भाँति, सामूहिक सुरक्षा (collective security) की असफलता और

जर्मनी की शक्ति में वृद्धि का बेल्जियम पर गहरा प्रभाव पड़ा। उसे यह अनुभव हुआ कि फ्रांस-बेल्जियम गुटबन्दी और लोकार्नो संधि के अन्तर्गत उसने जो वचन (commitments) दिए हैं, वे सरक्षण (safeguard) के बजाय खतरे ही अधिक सिद्ध हो सकते है, विशेषकर उस स्थिति में जबकि फ्रांस-सोवियत समझौते के परिणामस्वरूप फ्रांस जर्मनी के साथ किसी लड़ाई में उलझ जाए। अक्टूबर १४,१६३६ को उसकी ओर से एक घोषणा की गई, जिसमें यह कहा गया था कि भविष्य में बेल्जियम केवल बेल्जियन नीति पर ही चलेगा और किसी गुटबन्दी में शामिल नहीं होगा तथा अपने पड़ौसियो के विवादो के संबंध में, स्विटजरलैंड और हालैंड की भाँति, पूर्ण तटस्थता (complete neutrality) पूर्ण रुख अपनाएगा। इस प्रकार अपने पुराने रूप मे लौकार्नो के नवकरण (renewal) की अब सम्भावना नहो रह गई थी। बेल्जियम गारटियाँ प्राप्त करने के लिए तो तैयार था, किन्तु अब स्वयं किसी प्रकार की गारन्टियाँ नही देना चाहता था। नवम्बर मे, ईडन ने यह स्पष्ट घोषणा की कि "यदि बेल्जियम पर अकारण आक्रमण किया गया तो वह हमारी सहायता पर भरोसा कर सकता है।" और कुछ दिन पश्चात् इसी प्रकार का विश्वास उसने फ्रांस को भी दिलाया। फ्रांसीसी विदेशमन्त्री ने इसका उत्तर प्रतिनिधि सभा मे यह घोषणा कर दिया कि, ऐसी ही परिस्थितियो में, फ्रांस ग्रेट ब्रिटेन या बेल्जियम को सहायता करेगा। इन घोषणाओ को उस पश्चिमी समझौते के अभाव की पूरक माना जा सकता है जो अब अस्तित्व में नही आ सकता था।

---

१२. गैर-योरोपीय संसार
(The Non-European World)

सन् १६३६ के अन्त तक यह स्पष्ट हो चुका था कि प्रथम विश्व युद्ध के बाद जो व्यापक समझौता लादा गया था, उसका अब कोई स्वीकृत आधार (accepted basis) नहीं रह गया था। अब हमें यह विचार करना है कि संधियों का परित्याग किए जाने के बाद किस प्रकार की आश्चर्यकारक कार्रवाई द्वारा उस व्यवस्था को उलट देने के प्रयत्न किए गए जो संधियों द्वारा स्थापित करने की कोशिश की गई थी। किन्तु चूंकि अपने विषय की लगभग हर अन्य पुस्तक की भाँति यह पुस्तक भी असमान अनुपात मे योरोपीय मामलो का ही विवेचन करती प्रतीत होती है, इसलिए सभवतः इस अध्याय से इस कमी की पूर्ति होने मे सहायता मिले। इस अध्याय के बाद हम अपने मुख्य विषय पर पुन: विचार करेंगे। क्योंकि अन्य किसी भी क्षेत्र की अपेक्षा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति मे नेतृत्व योरोप के ही हाथो मे, भले या बुरे के लिए, रहा है। यहाँ जिन कुछ देशो का विवेचन किया जायगा, उनका इन पृष्ठो मे अभी तक उल्लेख मात्र ही किया गया है। जिन अन्य देशो का विस्तृत विवेचन पहले ही किया जा चुका है उनके सम्बन्ध मे केवल इतना ही आवश्यक होगा कि उनकी कहानी को भी अद्यावधिक (up-to-date) बना लिया जाये।

मध्य पूर्व
(The Middle East)

पूर्वीय भूमध्यसागर (Eastern Mediterranean) से लेकर भारत के उत्तर पश्चिम सीमात तक देशो का जो जाल फैल हुआ है तथा जिन्हे सुविधा की दृष्टि से "मध्य पूर्व" कहा जाता है, वे सन् १६१६ के बाद, अविराम उथल पुथल (constant effervescence) तथा कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों के केन्द्र बन गये। इन देशों मे से टर्की ने जानबूझकर इस्लाम धर्म और परम्परा का त्याग कर दिया तथा मुस्लिम जगत से अपना संबंध तोड़कर मध्य पूर्वी और एशियाई राष्ट्र (Asiatic Power) होने की अपेक्षा निकट पूर्वी और योरोपीय

राष्ट्र होने की अपनी महत्त्वाकांक्षा पूरी करली। ईरान जिसके पास पूर्वी गोलार्ध (hemisphere) में सबसे अधिक तैल खदानें थी, अपने प्रभावशाली (masterful) शाह रिजा खाँ (Riza Khan)—जिसने १६२५ में तख्त पर जबर्दस्ती अधिकार कर लिया था—के शासन में समृद्धिशाली हो रहा था। प्राकृतिक संपदा से शून्य (devoid of natural wealth) तथा सोवियत

मध्य पूर्व

मध्य एशिया और ब्रिटिश भारत के बीच स्थित अफगानिस्तान कुछ अनिश्चित स्वतन्त्रता (precarious independence) का उपभोग करता चला आरहा था, किन्तु १६३४ मे उसे राष्ट्रसंघ मे प्रवेश मिल जाने से उसकी स्वतन्त्रता किसी प्रकार सुदृढ़ होगई।

मध्य पूर्व के अन्य देश तुर्की साम्राज्य के वे भूतपूर्व अरब प्रान्त थे जिनके भाग्य का विवेचन पहिले ही किया जा चुका है। इन सभी देशों में, अरब राष्ट्रवाद (nationalism) ही, दोनो विश्व युद्धों के बीच के वर्षों की, प्रमुख समस्या थी।[1] प्रमुख अरब क्षेत्रों का ब्रिटिश और फ्रांसीसी सरक्षित-राज्यो मे विभाजन हो जाने से उन अरब नेताओ को बडी निराशा हुई जो कि एक सयुक्त अरब राजतन्त्र (United Arab Kingdom) स्थापित करने का स्वप्न देख रहे थे। इस निराशा को कम करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने कुछ प्रयत्न किया। हदजाज (Hedjaz) के शासक हुसैन का एक लडका ईराक का शासक होगया और दूसरा ट्रासजोर्डानिया (Transjordania) का अमीर Emir)। किंतु समस्या इसलिए जटिल थी कि विभिन्न अरब लोगो में परम्परा तथा विकास (tradition and development) का बहुत बडा अन्तर था। उनमें सभ्य शहरवासियो से लेकर आदिमजातीय खानाबदोश (primitive nomads) भी पाए जाते थे। इसलिए अरब राजनैतिक एकता (political unity) इस समय भी एक स्वप्न ही थी। किंतु अरब राष्ट्रवाद, जिसे युद्धकाल मे मित्रराष्ट्रो ने टर्की को पराजित करने की दृष्टि से जानबूझकर बढावा दिया था, के कारण युद्ध के बाद अनेक अवसरो पर अरब लोगो का सघर्ष संरक्षक राष्ट्रो और अरब जनता के बीच रहने वाले गैर अरब अल्पसख्यको (non-Arab minorities) से हो जाया करता था।[2]

ब्रिटेन के सरक्षण (mandated territory) के प्रथम राज्य—ईराक—की स्थिति प्रारम्भ से ही विषम (anomalous) थी। उस पर सरक्षण अधिकार विधिवत् कभी भी प्रदान नही किया गया था। किन्तु उसके स्थान में ग्रेट ब्रिटेन और ईराक में एक सधि हुई थी—राष्ट्रसघ ने इसका अनुमोदन किया था—जिसके अनुसार ग्रेट ब्रिटेन ने ईराक को यह वचन दिया था कि वह उसे

---

1. "In all these countries Arab nationalism was the principle problem of the years between the wars"

2. "But Arab nationalism, deliberately fostered by the Allies during the war for the discomfiture of the Turk, on many occasions after the war brought the Arab peoples into conflict both with the Mandatory Powers and with non Arab minorities living in their midst"

"आवश्यक सलाह और सहायता··· उसके (ईराक के) राष्ट्रीय सप्रभुता पर विपरीत प्रभाव डाले बिना ही (without prejudice to national sovereignty") देगा। ग्रेट ब्रिटेन के लिए ईराक की महत्ता कुछ अ शो मे उसके समृद्ध तेल कुओ (rich oil wells) और किसी सीमा तक योरोप तथा भारत के बीच सीधे वायु पथ (air route) पर ईराक की अनुकूल स्थिति (favourable position) के कारण थी। जो भी हो, अधिकाश ब्रिटिश लोकमत, इस बात के विरुद्ध था कि एशिया के एक लगभग भू-वेष्टित (land-locked) क्षेत्र पर अनिश्चित काल तक ब्रिटेन का शासन जारी रहे। ईराक को उस समय की प्रतीक्षा करने के लिए प्रोत्साहित किया था, जबकि वह, अनुबंध-पत्र (Covenant) के शब्दो में, "अपने पैरो पर स्वय खडा (able to stand alone)" हो सकेगा। यह घडी १६३२ में आई। उस समय सरक्षण-शासन समाप्त कर दिया गया, ईराक ने ग्रेट ब्रिटेन से पच्चीस वर्षों के लिए मैत्री सधि (treaty of alliance) कर ली तथा वह राष्ट्रसघ का सदस्य बन गया। उसकी स्वतन्त्रता से जो समस्याएँ उठ खडी हुई, उनमे सबसे कठिन समस्या उसके गैर अरब अल्पसख्यको की थी जिनमें कुर्द और असीरियन (Kurds and Assyrians) सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण थे। दुर्भाग्य से, ईराक के राष्ट्रसघ में प्रविष्ट होने के एक वर्ष के भीतर ही, असीरियनो मे उत्पात (disturbances) हुए जिनके परिणामस्वरूप ईराकी सैनिक टुकडियो ने पाँच सौ असीरियनों को मौत के घाट उतार दिया। स्वतन्त्र राष्ट्रो के परिवार में शामिल हुए इस नए सदस्य—ईराक ही राष्ट्रसघ का प्रथम अरब सदस्य था—की सतत स्थिरता (continued stability) अनुभवी ब्रिटिश सलाहकारो, जो कि प्रशासन कार्यो मे ईराकी सरकार की सहायता करते रहे, को पूर्ववत् ईराकी सरकार की सेवा में रखे रहने पर काफी हद तक निर्भर करती प्रतीत होती थी।

एशिया में ब्रिटेन का दूसरा सक्षरण-क्षेत्र भौगोलिक और प्रशासनिक दृष्टि से, जोर्डन नदी (River Jordan) द्वारा विभाजित था। पैलेस्टाइन (Palestine) इस नदी के पश्चिम में था तो ट्रासजोर्डानिया (Transjordania) इसके पूर्व मे। ट्रासजोर्डानिया शुद्ध अरब राज्य था। उसका अन्तर्राष्ट्रीय इतिहास केवल इतना ही था कि अपने पडौसियो के साथ कभी-कभी उसके सीमात

विवाद हो जाया करते थे। इसके विपरीत, पैलेस्टाइन की समस्या अन्य किसी भी सरक्षित राज्य की समस्या से अधिक गम्भीर थी।

पैलेस्टाइन मे सरक्षण-राज्य करने की शर्तों (जो कि ब्रिटिश सरकार द्वारा १६१७ मे यहूदियो को दिए गए एक वचन की पूर्ति (fulfilment) थी, के अनुसार सरक्षक राष्ट्र का यह कर्त्तव्य निर्धारित किया गया था कि वह, "उस देश को ऐसी राजनैतिक, प्रशासनिक और आर्थिक स्थिति में रखे कि यहूदियो के लिए मातृभूमि (national home) स्थापित करना सभव हो सके तथा इसके साथ ही साथ पैलेस्टाइन के सभी निवासियो के नागरिक (civil) और धार्मिक अधिकार (rights) सुरक्षित रहे।"[1] यदि युद्धकाल में मित्रराष्ट्र सरकारो ने राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए अरबो की महत्त्वाकांक्षाओ को प्रोत्साहन नही दिया होता, तो भी इस कर्त्तव्य को पूरा करना कठिन हो सकता था। किन्तु यहूदियों को दिए गए वचन और अरबो को दिए गए अस्पष्ट आश्वासन (vague undertaking) (जिसमे गलती से या उचित रूप से ही पैलेस्टाइन को भी शामिल मान लिया गया था) में परस्पर विरोध (contradiction) ने भविष्य के लिए गम्भीर आपत्ति खडी कर दी। सन् १६१६ मे पैलेस्टान की आबादी लगभग बिलकुल अरब थी तथा उसकी जनसख्या ७००,००० से कुछ ही कम अनुमानित की गई थी। सरक्षण-शासन की स्थापना से पैलेस्टाइन विश्व के यहूदियो का राष्ट्रीय गतिविधि-केन्द्र बन गया तथा यहूदी आप्रवासन (immigration) के लिये उसके द्वार खुल गये। यहूदियो का आगमन (influx), जो प्रथम वर्षों में तुलनात्मक दृष्टि से कम था, योरोप मे आर्थिक सकट के प्रारम्भ होने के समय तेजीसे बढ गया किन्तु नात्सी क्राति के बाद जब जर्मनी से यहूदियों की भगदड (exodus) शुरू हुई, तब तो उसमे और भी वृद्धि हो गई। सन् १६३४ के अन्त तक, पैलेस्टाइन में यहूदियो की सख्या ३००,००० तक पहुँच गई थी और यदि अधिकारीगण (authorities) आप्रवासन को कठोरतापूर्वक सीमित नही करते, तो यह सख्या और भी अधिक

---

1. " place the country under such political, administrative and economic conditions as will secure the establishment of the jewish national home while at the same time safeguarding the civil and religious rights of all the inhabitants of *Palestine*."

बढ जाती । यहूदी आप्रवासी (immigrants) एक पिछड़ी हुई पूर्वीय (Oriental) भूमि मे पाश्चात्य सभ्यता अपनें साथ लाये । जमीरी नीबू (citrus-fruit) की खेती आधुनिक रीति से सगठित एक उन्नतिशील (flourishing) बड़ा उद्योग होगया । ऐसा प्रतीत होने लगा कि पेलेस्टाइन मध्य पूर्व का वाणिज्य केन्द्र बन जाएगा । यहूदी नगर तेल-अबीब (Tel-Aviv) का निर्माण और हैफा (Haifa) बन्दरगाह का विकास आधुनिक ससार के आश्चर्य बन गये । आर्थिक संकट की पूरी अवधि में पेलेस्टाइन ही केवल एक ऐसा देश था, जिसका घरेलू और विदेशी व्यापार दिन-दूना रात-चौगुना बढा ।

समृद्धि की इस लहर में गैर यहूदी जनता ने भी लाभ उठाया। सन् १६१६ और १६३४ के बीच उसकी सख्या बढकर ६००,००० होगई। इस कारण यहूदियो और गैर-यहूदियो का अनुपात इस समय भी एक और तीन का था। किन्तु अरब किसान, जो कि अशिक्षित, अमितव्ययी और पूँजीहीन (improvident and devoid of capital) था, यहूदी की बराबरी नहो कर सकता था । इस कारण अपने ही देश में वह भयकर हीनता (galling inferiority) की स्थिति मे आ गया । सन् १६२१, १६२६ और १६३६ मे छोटी-छोटी घटनाओ के अतिरिक्त शान्तिनाशक गंभीर उपद्रव भी हुए जिनमें सैंकडो व्यक्तियो के प्राण गये । इस घटनाओं के समय हर बार अरब लोग यहूदियो पर पहिले आक्रमण करते थे और उसके बाद व्यवस्था बनाए रखने के लिए रखी गई ब्रिटिश पुलिस तथा सेना पर । इन उपद्रवो के बारे मे सर्वाधिक गभीर तथ्य यह होता था कि उनकी जड में, यहूदी आप्रवासन के कारण अरब हितो पर आ पडी प्रासगिक कठिनाइयाँ (incidental hardships) नही होती थी बल्कि पेलेस्टाइन को यहूदियो की मातृभूमि बनाने के सिद्धान्त का ही विरोध उनके मूल में हुआ करता था ।

सन् १६३६ के अन्त मे एक शाही आयोग (Royal Commission) की नियुक्ति अरबो द्वारा उपद्रव प्रारभ किए जाने के कारणों का पता लगाने और सिफारिशें करने के लिए की गई । जुलाई १६३७ में इस आयोग का जो प्रति-वेदन प्रकाशित हुआ, उसमें यह प्रस्ताव रखा गया था कि पेलेस्टाइन का त्रिपक्षीय विभाजन (tripartite division) किया जाये । प्रस्ताव के अनुसार

धार्मिक स्थान (holy places) स्थायी रूप से ब्रिटेन के अधिकार में रहने थे, गेलिली (Galilee) तथा समुद्रतटीय मैदानों (coastal plains) को मिलाकर यहूदी सम्प्रभुतासम्पन्न राज्य (sovereign state) का निर्माण किया जाना था, तथा शेष भाग अरब राज्य ट्रांसजोर्डानिया में मिला दिया जाना था,। (Mandates Commission)—इस योजना की सभी ने आलोचना की तथा राष्ट्रसंघ के संरक्षण-राज्य आयोग—जिसे यह प्रतिवेदन प्रस्तुत किया गया था—ने भी इसे नापसंद किया। इसी बीच उपद्रव होते रहे। न केवल यहूदियों और ब्रिटिश लोगों की ही अपितु उन अरबों की भी हत्याएँ की गई, जिन्हें समझौते के पक्ष में समझा गया। इस योजना की व्यावहारिकता (practicability) पर विचार करने के लिए एक और आयोग की नियुक्ति की गई। किन्तु १९३८ के दौरान में इस आयोग ने विभाजन का इतना निश्चित विरोध किया था कि इस योजना को ही त्याग देना पड़ा और लन्दन में एक सम्मेलन बुलाया गया। प्रतिनिधि यहूदियों और अरबों को ब्रिटिश सरकार के सामने अपना मामला पृथक् रूप से रखने के लिए आमन्त्रित किया गया। ब्रिटिश सरकार के सामने अपना मामला, रखने के बाद, यदि संभव दिखाई देता, तो एक संयुक्त सभा (joint assembly) में समाधान निकालने का प्रयत्न किया जाना था। किन्तु कोई समझौता नहीं हो सका और ब्रिटिश सरकार ने अपना ही हल लादने का निश्चय किया। इस हल से, जिसमें कि यह व्यवस्था की गई थी कि पाँच वर्षों तक केवल १०,००० तक यहूदी आप्रवासी प्रतिवर्ष पेलेस्टाइन आ सकते हैं, समझौते की नींव पड़ी। इस बीच, और भी अधिक कठोर सैनिक नियन्त्रण के कारण पुन. व्यवस्था स्थापित करने में सफलता मिल चुकी थी। और कुछ हद तक सामान्य मुस्लिम जगत् सन्तुष्ट हो चुका था। उनके लिए पेलेस्टाइन अरब पितृभूमि (father land) का एक आवश्यक भाग था। किन्तु फिर भी, पश्चिमी जगत् के कई लोग और विशेषकर प्रोटेस्टेंट धर्मानुयायी अंग्रेजी भाषी राष्ट्रों (Protestant English-speaking nations) के कुछ लोगों, जो प्राचीन और अर्वाचीन बाइबिल के इतिहास से तो परिचित थे, किन्तु पॉन्टियस पाइलेट (Pontius Pilate) के बाद के एशिया माइनर के घटनाचक्र के बारे में कम जानकारी रखते थे, का भी इतना ही विश्वास था कि पेलेस्टाइन पर वास्तव में यहूदियों का ही अधिकार है। इसके अतिरिक्त, यहूदी जाति को जिस भयंकरता से अधिकाधिक सताया जा रहा था,

उसे देखते हुए उसके लिए कोई आश्रय स्थान (place of refuge) होना एक अतर्राष्ट्रीय आवश्यकता थी।

फ्रास के सरक्षण-शासन का क्षेत्र सरक्षण के समय से ही दो भागो में विभाजित था। ये दो भाग सीरिया (Syria) और लेबनान (Lebanon) थे। लेबनान में, जो कि सीरिया और पेलेस्टाइन की सीमा पर एक समुद्रतटीय प्रदेश है, अरब ईसाई (Arab Christians) लोग बहुसख्यक थे। इस क्षेत्र मे एक प्रकार की गणतन्त्रीय सरकार थी जो कि समय-समय पर सरक्षक राष्ट्र के हस्तक्षेप की सहायता से अपना कार्य करती रही। लेबनानी ईसाई (Lebanese Christians) जो अपने धर्म के कारण अरब राष्ट्रीय आदोलन में अलग पड गए थे, छोटी-मोटी शिकायतो के होते हुए भी फ्रासीसी सरक्षण स प्राप्त सरक्षण से सतुष्ट प्रतीत होते थे।

इसके विपरीत, सीरिया में अरब राष्ट्रीयतावाद उतना ही प्रबल था जितना ईराक और पेलेस्टाइन में। ईराक मे ग्रेट ब्रिटेन ने अल्पसख्यको की बलि चढाते हुए एकीकृत राज्य (unified state) की स्थापना की थी। सीरिया मे, फ्रास ने इससे उलटी नीति अपनाई और सीरिया से उन तीन क्षेत्रो को पृथक् कर दिया जिनमें मुख्यत गैर-अरब बसत थे। उनमें से दो क्षेत्रो—समुद्रतटीय लटेकिया (Latakia) और दक्षिण का जेबेल ड्रूज क्षेत्र (Jebel Druse territory) को फ्रासीसियों के सीधे ही प्रशासन में रखा गया था। तीसरा क्षेत्र—उत्तर मे अलेक्जाड्रिटा (Alexandretta) का तुर्की जिला—सीरियन सरकार के नाममात्र क प्रभुत्व (suzerainty) के अधीन एक स्वायत्तशासी प्रात हो गया। अपनी सामान्य भूमध्यसागरीय नीति के अग के रूप में जून १६३६ में, फ्रास ने एक समझौता किया, जिसके अनुसार इस जिले का अधिकाश भाग—अलेक्जाड्रिटा का सेन्डजाक (Sandjak)—टर्की का इस शर्त पर सौंप दिया गया कि तुर्की लोग सीरिया पर अपने अन्य सभी दावो का परित्याग (abandon) कर देंगे तथा उस देश में प्रचार नहीं करेंगे। विखडन (dismemberment) की इस नीति के प्रति सीरियन अरबो ने गभीर रोष प्रकट किया। समय समय पर गभीर विद्रोह भी होते रहे जिनमें प्रमुख १६२५ का विद्रोह था, जबकि फ्रासीसी सैनिक टुकडियो ने दमस्कस (Damascus) पर बम वर्षा की थी। सन् १६३३ के बाद से तो सीरियन सविधान को बिलकुल ही

स्थगित (suspended) कर दिया गया था। सन् १९३६ में सीरियन नेताओं और फ्रासीसी सरकार मे नए सिरे से वार्ताएँ चली जिनके परिणामस्वरूप नवबर में आग्ल-ईराकी सधि (Anglo-Iraqi Treaty) के ढग की एक सधि हुई। इस सधि के अनुसमर्थन (ratification) के बाद, फ्रास के समर्थनपूर्वक सीरिया द्वारा राष्ट्रसघ की सदस्यता के लिए आवेदन किया जाना था। किन्तु अनुसमर्थन में इतना विलम्ब होगया कि १९३९ के प्रारम्भ में दमस्कस में राष्ट्रीय उत्पात हुए और उच्च आयुक्त (High Commissioner) ने सीरियन ससद को विघटित कर दिया तथा कार्यकारिणी शक्ति (executive power) पाँच सचालको की एक परिषद् (Council of Directors) के हाथो मे सौंप दी—सैनिक प्रतिरक्षा (military defence) का नियत्रण फ्रास से ही किया जाना था।

अरेबिया में, इस अवधि की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना इब्न सऊद (Ibn Soud) का उदय (rise) थी, जो कि पहिले नेज्द का सुल्तान (Sultan of Nejd) था। प्रथम विश्व युद्ध के समय इब्न सऊद ने तुर्की के विरुद्ध मित्र राष्ट्रो की सहायता की थी और मित्र राष्ट्र उसे आर्थिक सहायता (subsidy) देते थे। शाति समझौते में उसे मान्यता नही दी गई थी। किंतु खानाबदोश आबादी (nomadic populations) तथा अस्पष्ट सीमान्तो (undefined frontiers) के इस प्रदेश मे उसने अपने राज्य का विस्तार धीरे धीरे अतिक्रमण (encroachment) कर तथा कठोर शासन द्वारा किया। सन् १९२६ में हदजाज (Hedjaz) के शाह हुसैन को पराजित कर और उसे निकाल बाहर कर, उसने उसके क्षेत्र को भी अपने राज्य में मिला लिया तथा अपने आपको हदजाज एव नेज्द का शाह घोषित कर दिया। आगे चलकर सारे देश का नाम बदल कर साउदी अरेबिया (Saudi Arabia) रख दिया गया। स्पष्ट ही है कि इब्न सऊद ने अपने को एक शक्तिशाली स्वतन्त्र अरब शासक माने जाने का दावा सुस्थिर कर लिया था। साउदी अरेबिया ने राष्ट्रसघ की सदस्यता के लिए आवेदन नही किया किन्तु १९३६ में ईराक ट्रासजोर्डानिया और मिस्र से सधियाँ कर अपनी स्थिति सुदृढ बना ली। अरब ऐक्य (solidarity) के इन प्रदर्शनों का आशिक कारण अबीसीनिया में इटली की सफलता के बाद इटली की महत्त्वाकाक्षाओं से भय था। इसी परिस्थिति के कारण ग्रेट ब्रिटेन और अरब राज्यो के सबंध और भी मित्रतापूर्ण होगये।

मिस्र की गणना यद्यपि "मध्य पूर्व" में नहीं की जाती है, तदपि अरबी-भाषी (Arab-speaking) देशो के इस सक्षिप्त विवेचन में उसका भी उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है। स्वेज नहर के निर्माण से ब्रिटिश साम्राज्य के सैनिक अड्डो (British Imperial communications) की दृष्टि से मिस्र का एक महत्त्वपूर्ण स्थान होगया। युद्ध से पहिले तीस वर्षों तक मिस्र-यद्यपि नाम के लिए वह टर्की के प्रभुत्व मे था—ब्रिटेन के अधिकार में था। दिसम्बर १९१४ में जब टर्की युद्ध में सम्मिलित हुआ, तब तुर्की सम्प्रभुता समाप्त कर दिया और ब्रिटिश रक्षित राज्य (protectorate) की घोषणा कर दी गई। युद्ध के बाद राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रचडता के कारण रक्षित राज्य कायम रखना कठिन होगया। मिस्र के राष्ट्रीय नेताओ से समझौता करने की निष्फल चेष्टा के बाद, १९२२ में ग्रेट ब्रिटेन ने एक घोषणा जारी कर मिस्र की स्वतन्त्रता को मान्यता द दी। किन्तु देश की प्रतिरक्षा विदेशियो और अल्पसख्यको का सरक्षण अपने हाथो में रखा तथा सूडान पर ग्रेट ब्रिटेन एव मिस्र का सयुक्त सार्वभौमत्व (joint sovereignty) स्थापित कर दिया गया। इस घोषणा के बाद, उसने विदेशी राष्ट्रो को पत्रों द्वारा यह सूचित किया कि मिस्र के मामलो में यदि किसी भी विदेशी राष्ट्र ने हस्तक्षेप किया तो ग्रेट ब्रिटेन उसे अपनी ही सुरक्षा के लिए खतरा मानेगा।

इस घोषणा से जो विषम (anomalous) स्थिति उत्पन्न हुई, वह दोनों ही पक्षो के लिए उलझनपूर्ण (full of embarrasment) थी। अनेक बार यह प्रयत्न किया गया कि एक सधि कर इस स्थिति को विनियमित कर लिया जाये। किन्तु ये प्रयत्न १९३६ से पहिल तब तक सफल नहीं हो सके जब तक अबीसीनिया मे इटली की सफलता ने ग्रेट ब्रिटेन और मिश्र दोनो ही में अपने आपसी सम्बन्धो को सुधारने की तीव्र इच्छा उत्पन्न नही कर दी। अगस्त १९३६ मे हस्ताक्षरित सन्धि के अधीन ग्रेट ब्रिटेन ने यह वचन दिया कि कुछ शर्तों पर वह मिस्र के अन्तर्प्रदेश (interior) से अपनी सैनिक टुकडियाँ हटा लेगा और उन्हे केवल नहर क्षेत्र (Canal Zone) मे ही सीमित रखेगा। विमोक (Capitulation) अर्थात् प्रमुख विदेशी राष्ट्रो के निवासियो द्वारा मिस्र में उपभोग किये जाने वाले क्षेत्रेतर अधिकारो (extra-territorial rights) का अन्त करने में मिस्र की सहायता करेगा; राष्ट्रसघ की सदस्यता

के लिये मिस्र के दावे का समर्थन करेगा; तथा सूडान के प्रशासन में मिस्री (Egyptian) अधिकारियो को भी शामिल करेगा।

ये वचन उस समय पूरे हो गये, जबकि ८ मई १६३७ को मान्ट्रेक्स (Montreux) में हुए एक सम्मेलन में मिस्र में हित रखने वाले राष्ट्रो ने विमोक (Capitulation) के अधीन अपने अधिकार त्याग दिए तथा २६ मई को एक सार्वभौम राज्य (sovereign state) की हैसियत से मिस्र को राष्ट्र-सघ का सदस्य बना लिया गया। सन् १६३८ मे ग्रेट ब्रिटेन के साथ उन ब्रिटिश सैनिक टुकडियो की स्थिति के बारे में एक समझौता किया गया जो पिछले समझौते के अधीन स्वेज नहर की रक्षा के लिए रखी गई थी। मिस्र अपनी स्वतन्त्र स्थिति की रक्षा करते हुए भी ग्रेट ब्रिटेन के प्रति अपने कर्त्तव्यो के प्रति पूरी तरह ईमानदार रहा।

सुदूर पूर्व (The Far East)

मार्च १६३३ मे जापान के राष्ट्रसघ से हट जाने के कारण सुदूर पूर्व में ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई कि तनाव (tension) बढता ही गया। जापान ने अपनी मंचूरिया-विजय को शीघ्र ही सुदृढ बना लिया पूर्वी एशिया के प्रमुख राष्ट्र (dominant power) सी अपनी स्थिति बना ली। जापानी विदेश विभाग (Japaneese Foreign Office) ने अप्रैल १६३४ में समाचार पत्रो को एक वक्तव्य प्रकाशित करने को दिया, उसमें जापान की प्रथम महत्त्व-पूर्ण नीति-घोषणा (declaration of policy) का समावेश था। इस वक्तव्य में, "पूर्वी एशिया में (जापान की) विशेष जिम्मेदारियो" ("special responsibilities in East Asia) का उल्लेख करने के बाद यह स्पष्ट रूप से घोषित किया गया था कि "चीन के अतिरिक्त ऐसा कोई भी देश नही है जो पूर्वी एशिया में शाति बनाए रखने की जिम्मेदारी का जापान के साथ दावा कर सके।" तथा विदेशी राष्ट्रो द्वारा चीन की सहायता पहुँचाने सम्बन्धी पृथक् अथवा सयुक्त (singly or jointly) कार्रवाई पर भी जापान को "आपत्ति" है। इन आपत्तियो का सम्बन्ध "प्राविधि अथवा वित्तीय (technical or financial) सहायता (जैसी कि राष्ट्रसघ ने चीन को हाल ही मे देना स्वीकार किया था) के नाम पर" की जाने वाली कार्रवाई तथा युद्ध-सामग्री भेजने या अनुदेशकों या सलाहकारो (instructors or advisers) की सेवाएं उधार

देने के रूप में दी जाने वाली सैनिक सहायता से भी था। इस घोषणा को जो "जापान के मुनरो सिद्धांत" ("Monroe Doctrine") के नाम से विख्यात हुई, अनेक परवर्ती अवसरों (subsequent occasions) पर दोहराया गया। सन् १६३५ के ग्रीष्म मे शेष चीन से उसके अनेक उत्तरी प्रान्तो को पृथक् कर देने के लिए किया गया। एक प्रयत्न चीनियो के सत्याग्रह के सामने विफल हो गया। किन्तु मंचूरिया के समीप के चीनी क्षेत्र मे, जापानी सैनिक अधिकारियो को पूर्वी होपै स्वायत्तशासी सरकार (East Hopei Autonomous Government) नामक एक कठपुतली सरकार (puppet administration) की स्थापना मे सफलता मिल गई। इसके अतिरिक्त आगे चलकर उन्होने चीनी चुंगी अधिकारियो के कार्य मे जानबूझकर हस्तक्षेप किया तथा इस महत्त्वपूर्ण क्षेत्र में से चोरी से माल लाने-लेजाने वालो को काफी प्रोत्साहित किया। अनुचित लाभ को जापानी व्यापारियो की जेबो में पहुँचाने और चीनी सरकार के माली साधनों तथा प्रतिष्ठा को धक्का पहुँचाने के लिए यह एक बड़ी चतुराईपूर्ण चाल थी। सन् १६३६ में चीन के अनेक भागो मे की गई जापानियो की छुटपुट हत्याएँ (sporadic murders) इस बात का प्रमाण थी कि जापानियो के प्रति कटु भावनाएँ उत्पन्न हो चुकी थी।

स्वयं चीन में, जापान के भय ने चीनियो को एकता के सूत्र मे बाँधने का काम किया, यद्यपि उसके परिणाम आशा के विपरीत बहुत धीमे हुए तथा वे आंशिक (partial) थे। बारोडीन के चले जाने के काफी समय बाद भी मध्य चीन (Central China) मे अनेक स्थानीय सोवियतें नानकिंग सरकार की पसली का दर्द बनी रही तथा विस्तृत क्षेत्र (extensive areas) तथाकथित चीनी सोवियत सरकार के नियन्त्रण में ही रहे। सन् १६३३ के बाद, इनमें से अनेक क्षेत्रो को नानकिंग सरकार ने पुनः अपने क्षेत्र में मिला लिया। उत्तर-पश्चिम चीन में सुसगठित कम्युनिस्ट सेनाएँ अब भी विद्यमान थीं, किंतु अन्तर्राष्ट्रिक कम्युनिस्ट (Communist International) सगठन की महासभा (congress) के १६३५ के अधिवेशन मे निर्धारित की गई नीति के अनुसार, इन सेनाओं का लक्ष्य अब नानकिंग सरकार को उलटना नहीं था, बल्कि उत्तर चीन में जापान से मुकाबिले को सुदृढ बनाना तथा उसकी सहायता

करना था। दक्षिण चीन में, १९३६ के ग्रीष्म में नानकिंग सरकार के विरुद्ध एक सैनिक विद्रोह (military rebellion) हुआ किन्तु उसे कोई सहायता नही मिली। उसके परिणामस्वरूप केन्टन की अर्घ स्वतन्त्र (semi-independent) सरकार का दमन किया गया। हाल ही के इन वर्षों में नानकिंग और केन्टन के बीच सहयोग और किसी भी समय की अपेक्षा अधिक निकट जाना पड़ा। इस प्रकार १९३६ के अन्त में, नानकिंग स्थित चीनी सरकार—जिसे सेनापति च्यांग काई-शेक का योग्य नेतृत्व प्राप्त था—का मध्य और दक्षिण चीन मे धीरे-धीरे अधिकार दृढ होता गया तथा उत्तर चीन में जापान के विरुद्ध वह अपने प्रभाव को सुदृढ बनाए रही। दिसम्बर मे उत्तर-पश्चिम सीमांत पर अल्प-कालीन (short-lived) विद्रोह हुआ। विद्रोही सेना ने स्वय च्यांग काई शेक को ही अनेक दिनो तक बदी बनाए रखा। जो भी हो, च्यांग को बदी बनाने वालो द्वारा समर्पण से च्यांग की स्थिति सुदृढ होगई और चीन एकता के रास्ते की ओर अग्रसर होता दिखाई दिया। यह एकता जापान के आक्रमण के विरुद्ध हुई थी।

किन्तु जुलाई १९३७ मे पेकिंग से कुछ निकट चीन और जापानी सैनिक टुकडियों मे मुठभेड हो जाने के कारण और भी अधिक घटनाएँ घटित हो गईं तथा युद्ध की घोषणा किए बिना ही, युद्ध आरम्भ होगया। पेकिंग खाली कर दिया गया (evacuated) और चीनी जो अब भी मुकाबिला कर रहे थे, धीरे-धीरे येलो नदी (Yellow River) तक खदेड दिए गए जबकि नौसेना और वायु सेना शघाई पर आक्रमण करती रही। इस वर्ष के अन्त तक जापानियो ने न केवल इस नगर पर अपितु राजधानी नानकिंग पर भी अधिकार कर लिया था। हवाई बमबाजी के कारण बचाव के साधनो से हीन जन-समुदाय का वध ही अधिक हुआ और उसके साथ ही साथ, चाहे सयोग से हो या गलत उत्साह के कारण हो (by accident or mistaken zeal), चीन में ब्रिटिश राजदूत घायल हो गया तथा अपर यॉंगट्सी (Upper Yangtse) मे एक अमरीकी और एक ब्रिटिश जहाज को क्षति पहुँची। किन्तु योरोप मे कुछ ऐसा घटनाचक्र चल रहा था कि ग्रेट ब्रिटेन को कूटनीतिक विरोध तक ही अपना रोष सीमित रखना पडा। इस प्रकार अमेरिका ने जापान से क्षमा-याचना (apology) प्राप्त करके ही संतोष मान लिया। इसी बीच, राष्ट्रसघ ने, जिसके

सामने तथ्य (facts) चीनी प्रतिनिधियों द्वारा रखे गए थे, जापान की कार्रवाई को सन्धि-कर्त्तव्यो का अन्याय्य भंग (unjustifiable breach) बताकर उसकी विधिवत् निन्दा की तथा अपने सदस्यो से इस बात पर विचार करने के लिए अनुरोध किया कि वे आक्रमण के शिकार (victim of aggression) राष्ट्र की किसी सीमा तक सहायता कर सकते हैं।

सामग्री और अनुशासन (equipment and discipline) में श्रेष्ठ होने के कारण यद्यपि जापानी सेनाएँ हर स्थान पर आगे बढने में सफल हो सकी, तदपि चीनी उनका मुकाबिला बराबर करते रहे। सबसे पहिले हकाऊ—जो अस्थायी राजधानी बन चुका था तथा उसके अनुयायी नगर (satellite cities) जुलाई १६३८ मे विजित कर लिए गए। अक्टूबर में केन्टन पर भी अप्रत्याशित सरलतापूर्वक अधिकार कर लिया गया। धीरे-धीरे जापान ने सभी बदरगाहो पर अधिकार कर लिया और चीनी सेनाओं को उस रसद (supplies) पर निर्भर बना दिया, जो उन्हे भूमि के रास्ते सोवियत सघ से, या रेलमार्ग द्वारा फ्रासीसी हिन्द-चीन (Indo-china) से या नवनिर्मित मोटर सडक से वर्मा के ब्रिटिश साधनो द्वारा प्राप्त हो सकती थी। सन् १६३६ के अन्त तक, हिन्द-चीन रेलमार्ग को काट दिया गया। मोटर सडक पर बहुत अधिक भार पडने लगा तथा सोवियत सहायता पर और अधिक निर्भर नही रहा जा सकता था। किन्तु चीन मुकाबिला करता ही रहा।

जहाँ तक सोवियत सघ का प्रश्न है, जापान द्वारा मचुकुओ (Manchukuo) विजय के कारण रूस मे गभीर आशका (serious apprehension) फैल गई थी और सोवियत संघ ने इस कारण कई प्रति-उपाय (counter measures) किये थे। ये अनेक प्रकार के थे। सबसे पहिले तो, सोवियत सरकार ने अमरीकी सरकार द्वारा कूटनीतिक मान्यता प्राप्त करने की चेष्टा की और उसमे उसे सफलता भी मिल गई। दूसरे, उसने जापान को (या नाम के लिए, मचूकुओ को) मचूरिया से होकर जाने वाली चीनी पूर्वी रेलवे में रूसी हित (Russian interest) बेचकर संघर्ष (friction) के अवसरो मे कमी करने का प्रयत्न किया। तीसरे, मध्य एशिया में उसने सोवियत प्रभाव बढाया। चीन के बिलकुल पश्चिम मे स्थित सिंकियांग (Sinkiang) प्रान्त या चीनी तुर्किस्तान (Chinese Turkistan), जिसमें अनेक मूल जातियो

की मिश्रित आबादी बसती है, बहुत समय से नानकिंग सरकार से लगभग स्वतन्त्र चला आ रहा था तथा वहाँ पर प्रतिद्वन्द्वी अधिकारियों (rival authorities) में समय-समय पर गृह युद्ध होते रहते थे। सन् १९३३ में सोवियत सेना और वायुयानों ने ऐसे ही एक स्थानीय संघर्ष (local struggle) में हस्तक्षेप किया तथा नानकिंग सरकार द्वारा मान्य स्थानीय चीनी राज्यपाल (Governor) को पुन: व्यवस्था तथा अपना शासन स्थापित करने में सहायता की। कुछ समय तक *सिंकियांग में, राजनैतिक तथा आर्थिक सोवियत प्रभाव सर्वोपरि* (paramount) हो गया। मार्च १९३६ में बहिर् मंगोलिया (Outer Mongolia) — यद्यपि वह नाममात्र के लिए चीन के सार्वभौमत्व में था—जोकि वास्तव मे १९२१ से एक सोवियत गणतन्त्र (Soviet Rupublic) रहा था, ने सोवियत संघ से एक मैत्री-संघ की, जिसके अनुसार हर पक्ष ने यह वचन दिया कि विदेशी आक्रमण के समय वह एक-दूसरे की सहायता करेगा। लगभग इसी समय स्टालिन ने एक अमरीकी पत्रकार को सूत्र रूप मे यह जानकारी दी की यदि बहिर् मंगोलिया में, जापान ने किसी प्रकार का हस्तक्षेप किया, तो उसका अर्थ सोवियत संघ से युद्ध लगाया जाएगा। इस प्रकार जापान द्वारा मंचूरिया मे कायम की गई चौकियों (outposts) की ही तरह सोवियत संघ ने भी सिंकियांग *और बहिर् मंगोलिया में चौकियाँ कायम कर रखी थी, किन्तु उनके स्थानीय* प्रशासनो में सोवियत नियन्त्रण इतना प्रत्यक्ष (direct) नही था, जितना कि मंचूकुओं में जापान का।

अमेरिका और विश्व राजनीति
(America And World Politics)

सन् १९३०-३३ के आर्थिक संकट के जितने विनाशकारी (disastrous) परिणाम अन्य देशों में हुए थे उतने अमेरिका मे नहीं हुए थे। किंतु राज्य के कर्त्तव्य (functions of the state) सम्बन्धी वर्तमान धारणा (conception) में और कहीं भी इतना प्रत्यक्ष एवं क्रांतिकारी (direct and radical) परिवर्तन नहीं हुआ जितना कि अमेरिका में। संकट से पहिले, अमेरिका ने लैसी फेरी (*laissez faire*) तथा निर्बन्धनहीन निजी व्यापार (unrestricted individual enterprise) के सिद्धान्तो का लगभग पूरी तरह—आयात निर्यात कर-संरक्षण (tariff protection) ही केवल

एक अपवाद था—पालन किया था। उद्योग और वाणिज्य में राज्य के हस्तक्षेप को अब भी अधिकांशतः अवांछनीय, अमरीकी परम्परा के विरुद्ध (undesirable un-American), और यहाँ तक कि अनैतिक (immoral) माना जाता था। संकट ने इस दृष्टिकोण की भ्रांति (fallacy) को उसके सच्चे स्वरूप मे ला दिया। जब उद्योग और अर्थव्यवस्था का सारा ढाँचा ढहढहाने लगा तथा अमरीकी जनसंख्या का दसवाँ हिस्सा बेकार (unemployed) हो गया, तब पूँजी और श्रम (capital and labour) दोनों ही मुक्ति के लिए राज्य का मुँह ताकने लगे। राष्ट्रपति रूजवेल्ट का प्रशासन-काल नए आधार पर अमरीकी आर्थिक जीवन के पुनर्निर्माण के लिए किए गए लम्बे प्रयत्नो की एक कहानी है। स्थिति में जब पुनः सुधार होने लगा, तब प्रतिक्रियावादी शक्तियो (forces of reaction) ने उस समय "नए कार्यक्रम" ("New Deal") के नाम से विख्यात अमरीकी नीति के विरुद्ध सिर उठाने का प्रयत्न किया। अमरीकी संविधान द्वारा अमरीकी कांग्रेस को "विदेशो से तथा विभिन्न राज्यो के बीच वाणिज्य का विनियमन करने" (to regulate Commerce with foreign Nations and among the several States)" की शक्ति दी गई है। कुछ खींचतान करके ही इस व्यवस्था का यह अर्थ लगाया गया कि मूल्य नियन्त्रण (price-control) तथा श्रम स्थिति निर्धारण (fixing of labour conditions) जैसे विषय भी इसी व्यवस्था के अन्तर्गत आते हैं। उद्योग और कृषि को नियन्त्रित करन तथा श्रमिको को संरक्षण (protection of labour) प्रदान करने सम्बन्धी सरकार के और अधिक क्रांतिकारी कदमो को सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) न अवैधानिक ठहरा दिया तथा इस कारण उन्हे वापस लेना पडा। नवम्बर १९३६ मे जिस अत्यधिक बहुमत से राष्ट्रपति रूजवेल्ट का निर्वाचन हुआ, उससे स्पष्ट था कि राज्य द्वारा विनियमन (state regulation) के नए सिद्धान्त को अमरीकी जनता ने किस प्रकार सहर्ष स्वीकार कर लिया है।

सन् १९३३ के बाद के वर्षो मे, इस शांतिपूर्ण गृह-क्रान्ति (peaceful domestic revolution) में ही अमरीकी सरकार की शक्ति लगी रही तथा विदेशी मामलो का इस समय गौण स्थान (second place) हो गया। जापान को मचूरिया कार्रवाई का प्रथम प्रभाव अमेरिका को राष्ट्र संघ के साथ सह-

योग करने के लिए प्रेरित करना हुआ था। सन् १६३२ के ग्रीष्मकाल में, रिपब्लिकन (Republican) और डेमोक्रेटिक (Democratic) दोनो ही पार्टियों ने यह घोषणा की कि यदि पेरिस समझौते (Pact of Paris) का भग (breach) किया जाए अथवा उसके भग किए जाने की आशका हो तो वे इस पक्ष मे हैं कि अमरीकी सरकार और अन्य सरकारें परस्पर परामर्श करें। मई १६३३ में, निःशस्त्रीकरण सम्मेलन में अमरीकी प्रतिनिधि यह ने घोषित कियाकि यदि कोई निःशस्त्रीकरण समझौता किया गया, तो अमरीकी सरकार इस बात के लिए सहमत हो जाएगी कि, भविष्य में सकट के समय (in future emergencies) यह अन्य सरकारो स परामर्श करेगी तथा वे जो कार्रवाई करना चाहेंगी, उसमें अमरीकी सरकार बाधा नही डालेगी। किन्तु जब सम्मेलन असफल हो गया और जब योरोप तथा प्रशात सागर में स्थिति अधिक दुर्भाग्यपूर्ण तथा अधिक भयपूर्ण (darker and more menacing) हो गई, तब अमरीकी लोकमत तेजी से पृथक्करण (isolation) की नीति पर चलने का पक्षपाती होने लगा। दिसम्बर १६३५ में, लदन मे एक नौसैनिक सम्मेलन यह विचार करने के लिए हुआ कि वर्ष के अन्त मे लदन नौसैनिक सधि समाप्त हो जाने पर क्या स्थिति होगी। सन् १६३४ के अन्त मे जापान ने १६२१ में की गई वाशिंगटन पाँच-राष्ट्र सघ को समाप्त करने के लिए आवश्यक दो वर्ष की सूचना दे दी थी। जापान को हमेशा के लिए वाशिंगटन अनुपात या ऐसा अन्य कोई अनुपात स्वीकार करने लेने के लिए राजी कर लेना असभव प्रतीत हुआ था जो उसकी समुद्री बेडे का सीमन ब्रिटिश और अमरीकी बेडे से कम सीमा पर निश्चित करना। लदन सम्मेलन का परिणाम ग्रेट ब्रिटेन, अमेरिका और फ्रास में केवल यही समझौता हुआ कि इन देशो ने जो जहाज निर्मित किए हो या प्राप्त (acquired) किए हो, उनके बारे में वे एक और अग्रिम सूचना दें तथा विभिन्न प्रकार के युद्ध-पोतो का अधिकतम टन परिणाम (maximum tonnage) निश्चित किया जाए। और सभी बातो में, १६३६ के अन्त में सभी पक्षो को पुनः स्वतन्त्रता मिल गई।

अन्तर्राष्ट्रीय मामलोमे, सन् १६३५ के प्रारम्भ से ही अमरीकी सरकार का प्रमुख उद्देश्य युद्ध में घसीटे जाने की समावना से भी बचना रहा था।[1]

---

1. 'Since the beginning of 1935 the principal aim of the

उस वर्ष, अपने वचनों को कम करने की नीति (policy of reducing its commitments) का अनुसरण करते हुए उसने फिलिपाइन (Philippines)—जो पश्चिमी प्रशान्तसागर में एकमात्र अमरीकी सैनिक अड्डा था—से हट जाने (to withdraw) तथा इन द्वीपों को दस वर्षों की परीक्षावधि (probationary period) के बाद, पूरा स्वतन्त्रता दन का निश्चय किया। सन् १६३५ के ग्रीष्मकाल मे स्वीकृत तटस्थता अधिनियम (Neutrality Act) भी इस निश्चय के समान ही महत्त्वपूर्ण था। इस अधिनियम के अनुसार युद्ध भडक उठने की स्थिति में, अमरीकी राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया था कि वह युद्धरत दोनों ही पक्षों को युद्ध सामग्री तथा आवश्यक उत्पादन (key products) निर्यात किए जाने पर रोक लगाये। अमरीकी राष्ट्रपति ने इस अधिकार का उपयोग इटली-अबीसीनिया युद्ध मे किया भी था। फरवरी १६३६ मे इस अधिनियम में किए गये सशोधन के अनुसार यह रोक भावी युद्धो मे, न केवल ऐच्छिक (optional) अपितु बाध्यकर (obligatory) होगई। सशोधन में युद्धरत पक्षो को ऋण दिए जाने पर भी रोक लगादी गई। किन्तु महत्त्व की बात यह थी कि इस अधिनियम से अमरीकी गणतन्त्रो (republics) को मुक्त रखा गया था।

योरोप तथा सुदूर पूर्व के बखेडो से अपने आपको पृथक् रखने के सयुक्त राज्य अमेरिका (United States of America) क इस प्रयत्न के साथ ही साथ अन्य अमरीकी देशों (American countries) के अधिकाधिक निकट आने की सयुक्त राज्य अमेरिका की इच्छा भी इतनी हा प्रबल थी। मध्य और दक्षिणी अमेरिका के देशो में अमेरिका के प्रति परम्परागत अविश्वास कई वर्षो से चल रहा था। मुनरो सिद्धान्त का यह व्यापक अर्थ लगाया गया था कि व्यवस्था बनाए रखने और विदेशी जान-माल की रक्षा करने के लिए, आवश्यकता पडने पर मध्य और दक्षिणी अमेरिका के मामलो में हस्तक्षेप करना सयुक्त राज्य अमेरिका का अधिकार एव कर्त्तव्य है।[१] इस प्रकार १६०३ में

American Government in international affairs had been to avoid any possibility of becoming involved in war "

१. "The Munroe Doctrine was widely interpreted as implying that the United States had the right and duty to intervene in Central and South America, where necessary in order to maintain order and protect foreign lives and property."

क्यूबा (Cuba) और संयुक्त राज्य अमेरिका के बीच की गई संधि द्वारा संयुक्त राज्य अमेरिका को स्पष्ट ही यह अधिकार दिया गया था कि वह इन प्रयोजनों के लिए हस्तक्षेप करे। अमरीकी जहाज निकारागुआ (Nicaragua) में थोड़े समय को छोड़कर १९१२ से ही तथा हैटी (Haiti) में १९१५ से ही रहे थे, तथा अन्य देशों में कुछ कम स्थायी हस्तक्षेप (less permanent interventions) किया गया था। समय-समय पर होने वाली अखिल अमरीकी महासभाओं (Pan-American Congresses)—जिनमें से प्रथम १८८९ में हुई थी—के कारण वह दुर्भावना (ill will) दूर नहीं हो सकी थी जो कि "महा दण्ड" (Big Stick) और "डॉलर साम्राज्यवाद (Dollar Imperialism)" के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई थी ऐसा खुले आम कहा जाता था।

सन् १९३० के लगभग, किसी सीमा तक आर्थिक सकट के कारण, अमरीकी लोकमत मध्य और दक्षिणी अमेरिका में हस्तक्षेप की नीति से विमुख होने लगा। सन् १९३३ के प्रारम्भ मे, निकारागुआ से अमरीकी जहाज हटा लिए गए और इसी वर्ष के मार्च में जब राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने अपने उद्घाटन भाषण मे यह कहा कि, "यह राष्ट्र अच्छे पड़ोसी (Good Neighbour) की नीति पर चलेगा।" तब इन शब्दों का यह अर्थ लगाया गया कि अमेरिका का अभी तक जो रुख रहा है वह निश्चित रूप से बदल चुका है। इसी वर्ष में, अर्जेन्टाइना गणतन्त्र ने एक नया समझौता किया, जिसके अनुसार उसने आक्रमणात्मक युद्ध का त्याग किया तथा शक्ति के प्रयोग से उत्पन्न स्थितियों को अमान्य करने की घोषणा की। संयुक्त राज्य अमेरिका ने इसका स्वागत किया और कई अमरीकी तथा कुछ योरोपीय राज्यों ने इस पर हस्ताक्षर किए। सन् १९३३ के अन्त में मोन्टेविडो (Montevideo) में हुई सातवीं अखिल-अमरीकी महासभा (The Seventh Pan American Congress) में संयुक्त राज्य अमेरिका के विदेश मन्त्री ने समझौतापूर्ण घोषणा की। अगले वर्ष संयुक्त राज्य के जहाज हटी से अन्तिम रूप से हट गए और १९०३ मे क्यूबा से की गई संधि भी रद्द कर दी गई। दिसम्बर १९३६ में, अपने पुनर्निर्वाचन (re-election) के तुरन्त बाद ही, राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने ब्यूनो एयर्स (Buenos Aires) में हुई आठवीं अखिल-अमरीकी महासभा मे स्वय उपस्थित होकर

लेटिन अमेरिका को अनुगृहीत किया। इस महासभा मे एक सन्धि स्वीकार की गई, जिसके अनुसार यह व्यवस्था की गई कि यदि किसी भी अमरीकी गणतन्त्र की शांति को कोई खतरा उत्पन्न हुआ, तो हस्ताक्षरकर्त्ता (signatories) "शांतिपूर्ण सहयोग के कदम उठाने पर परस्पर परामर्श करेंगे"। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त मे हुए उन दो युद्धो के बावजूद भी, जिन्होंने कि दक्षिण अमेरिका को विकृत (disfigured) कर दिया, अमरीकी महाद्वीप मे अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध इतने मित्रतापूर्ण कभी नही रहे थे जितने कि वे इस समय हो गये थे।

इसी बीच, अमरीकी गणतन्त्रो का अधिकाधिक मेल कराने और उन्हे अन्य राष्ट्रो प्र युद्धो मे फँसने से बचाने की दोहरी प्रवृत्ति सयुक्त राज्य अमेरिका के नेतृत्व में जारी रही, जहाँ कि तटस्थता (neutrality) बनाए रखने के उद्देश्य की पूर्ति के लिए बनाए गए विधान (legislation) मे और अधिक प्रगति की जा चुकी थी। सन् १६३५ के अधिनियम के उपलब्ध (provisions) और उसके बाद के सशोधन केवल दो वर्षों के लिए ही स्वीकार किए गए थे। इसलिए १६३७ में एक नया तटस्यता अधिनियम स्वीकृत हुआ। उसने शस्त्रा-शस्त्रों के निर्यात और ऋणों पर पुनः रोक लगा दी। उसके अनुसार वाणिज्य-पोतों (merchant men) पर शस्त्राशस्त्र रखने तथा अमरीकी नागरिकों को किसी भी युद्धरत राष्ट्र के जहाज में यात्रा करने को मनाह भी कर दी गई—नागरिको को नुकसान पहुँचने से सयुक्त अमेरिका को सम्भवत युद्ध में शामिल होना पड सकता था। अधिनियम के अनुसार, राष्ट्रपति को इस बारे मे स्वविवेक (discretion) के अनुसार यह निर्णय करने का अधिकार मिल गया कि युद्धरत राज्यो को अमरीकी जहाजो में माल निर्यात करने का निषेध किया जाए अथवा नही। किन्तु "दाम चुकाओ और ले जाओ (cash and carry)" सिद्धान्त के आधार पर अन्य देशों के राष्ट्रवासी सामग्री का मूल्य चुकाकर यह निर्यात कर सकें तो उन्हे छूट थी। राष्ट्रपति को "सयुक्त राज्य अमेरिका की सीमा पर स्थिति भूमि"—दूसरे शब्दो में, कनाडा को—माल का परिवहन (transport of goods) करने की अनुमति देने का अधिकार भी दे दिया गया, क्योंकि मार्ग में (*en route*) रुकने से सघर्ष का कोई कारण उपस्थित नही हो सकता था।

जो भी हो, योरोप में राजनैतिक वायदो से बचने के सकल्प (determi-

nation) का आशय पूर्ण पृथक्करण (complete isolation) नहीं था अन्य महाद्वीपों के समान योरोप से आर्थिक सहयोग (economic collaboration) की नीति पर चलने के लिए अमरीकी लोकमत लगभग निर्विरोध रूप से पक्ष में था। सन् १६३४ मे प्रथम बार स्वीकृत तथा १६३७ मे तीन और वर्षों के लिए नवकृत (renewed) पारस्परिक व्यापार समझौता अधिनियम (Reciprocal Trade Agreement Act) का लाभ मन्त्री कॉर्डेल हल (Secretary Cordoll Hull) ने सर्वाधिक-अनुग्रहीत राष्ट्र (most-favoured nation) आधार पर—जिसमें पारस्परिक आधार पर आयात-निर्यात कर में कमी तथा व्यापार पर लगाए गए अन्य बंधनो को सीमित करना शामिल था—बाइस राष्ट्रों, जिनसे अमेरिका का अधिकाश विदेश-व्यापार होता था, से व्यापारिक समझौते कर उठाया। उसका यह विश्वास था कि राजनैतिक सकट उत्पन्न करने मे आर्थिक राष्ट्रवाद (economic nationalism) एक बडा कारण रहा है और यदि न्याय्य आयात-निर्यात-कर सरक्षण (tariff protection) के साथ सुसगत यथासम्भव निर्बाध (freest possible) आधार पर बहुपक्षीय व्यापार (multilateral trade) पुनः प्रारम्भ किया जाए, तो वह केवल राजनैतिक और क्षेत्रिक पुनर्व्यवस्थापन (rearrangements) की अपेक्षा तानाशाही, आक्रमण और युद्धों की पुनरावृत्ति (recurrence) रोकने मे अधिक सक्षम हो सकेगा।

इसके अतिरिक्त सुदूर पूर्व मे अमेरिका ने अल्पीकृत वचनों (reduced commitments) सम्बन्धी १६३४-३७ की नीति के विरुद्ध प्रतिक्रिया के आसार प्रकट किये।[1] अमरीकी राष्ट्रपति ने जानबूझ कर यह स्वीकार करने से बचने का प्रयत्न किया कि चीन में जापान की कार्रवाई "युद्धस्थिति" (state of war) है, क्योंकि यदि वह इस कार्रवाई को युद्धस्थिति स्वीकार कर लेता, तो तटस्थता अधिनियम (Neutrality Act) के उपबन्ध लागू हो जाते और चीन को अमरीकी सहायता बन्द कर देनी पडती। सघर्षरत चीनियो के प्रति स्पष्ट रूप से अधिमान (preference) दर्शाया गया तथा आयात-निर्यात बैंक

1. "In the Far East, moreover, the United States showed signs of a reaction against the 1934-37 policy of reduced commitments"

(Import-Export Bank) के जरिये उन्हे ऋण दिए गये। अमरीकी सरकार ने चीन में अपने किन्हीं भी परम्परागत अधिकारो को छोडने से दृढ़तापूर्वक इकार कर दिया तथा चीनी सधि-बन्दरगाहो तथा समुद्र (treaty ports and waters) में अपनी नौसेना एव थलसेना को पूर्णतः बनाए रखा। जुलाई १६३६ में उसने जापान अमेरिका वाणिज्यिक सधि को रद्द किए जाने (denunciation) की सूचना प्रकाशित की। यह सधि अत मे जनवरी १६४० में समाप्त कर दी गई। अमेरिका और जापान के बीच वाणिज्यिक सम्बन्ध दैनदिन आधार (day-to-day basis) पर चलते रहे तथा जापान न इस कारण अमरीकी अधिकारों का और अधिक अतिक्रमण (encroachment) नही किया कि अमरीकी कांग्रेस तथा अमेरिका क प्रभावशाली दलों द्वारा जापानी आयातो पर रोक या विभेदात्मक चुगी (discriminatory duties) लगाने की जो जोरदार मांग की जा रही है, वह कही पूरी न कर दी जाये। सन् १६४६ मे जो पूर्ण स्वतत्रता विधित (legally) दी जाने वाली थी, उसके विरुद्ध भी फिलिपाइन द्वीपो तथा अमेरिका में आदोलन जोर पकड रहा था। जिस अवधि तक फिलिपाइन-व्यापार (Philippine trade) को अधिमानात्मक सुविधाएं (preferential advantages) दी जानी थी, उसमें वृद्धि कर दी गई तथा राजनैतिक एव सैनिक शासन की समाप्ति सम्बन्धी अधिनियम (Act) में सशोधन करने की चर्चा प्रायः की जाती थी।

ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल

(The British Commonwealth of Nations)

ग्रेट ब्रिटेन और स्वशासी अधिराज्यो (self governing dominions) के आपसी सम्बन्ध वास्तव मे अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध नही कहे जा सकते और वे इस पुस्तक क बाहर के विषय हैं। किन्तु चूंकि अधिराज्य राष्ट्रसघ के सदस्य (जैसा कि भारत भी है) हैं तथा उनकी अपनी विदेश नीति है, इसलिए उनकी स्थिति का यहां कुछ उल्लेख किया जा सकता है।

सन् १६१६ मे वर्सेलीज की सधि पर जब कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैड, दक्षिण अफ्रीका, और भारत ने स्वय अपनी पृथक हैसियत से हस्ताक्षर किये, तब वे प्रथम बार अन्तर्राष्ट्रीय समाज के सदस्यो के रूप में सामने आये। सधि पर हस्ताक्षरकर्त्ताओं की वर्णक्रमानुसार (alphabetical) सूची में उनका नाम

नही था बल्कि उन्हे "ब्रिटिश साम्राज्य" शीर्षक (rubric) के अन्तर्गत ही रखा गया था। यह तथ्य इस बात को स्पष्ट करता था कि उन्हे स्वतन्त्र सप्रभुतासम्पन्न (sovereign) राज्य नही माना गया था। अनुबन्धपत्र का पहिला अनुच्छेद जिसके अनुसार "कोई भी पूर्णत. स्वशासी राज्य, अधिराज्य या उपनिवेश" राष्ट्रसघ का सदस्य हो सकता था, स्पष्ट ही उनकी विशेष स्थिति को ध्यान मे रखते हुए रखा गया था। सन् १९२३ मे जब आयरिश स्वतन्त्र राज्य (Irish Free State) ने राष्ट्रसघ की सदस्यता के लिए आवेदन किया, तब उसके आवेदन-पत्र को राष्ट्रसघ सभा ने जिस आधार पर स्वीकार किया वह यह था "जो अधिराज्य पहिले से ही राष्ट्रसघ के सदस्य हैं, उनकी ही भांति आयरिश स्वतन्त्र राज्य भी उन्ही शर्तों पर ब्रिटिश साम्राज्य का ही एक अधिराज्य है।" अधिराज्यो की स्थिति स्पष्ट करने के लिए १९२६ से पहिले और कोई प्रयत्न नही किया गया। इस वर्ष साम्राज्यिक सम्मेलन (Imperial Conference) ने ग्रेट ब्रिटेन तथा स्वशासी अधिराज्यो की परिभाषा इस प्रकार की कि वे "ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वायत्तशासी समुदाय हैं (autonomous communities), उनकी स्थिति बराबरी की है ...यद्यपि वे ब्रिटिश सम्राट् (Crown), के प्रति सामान्य निष्ठा के कारण सयुक्त हैं और स्वेच्छा से ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के सदस्य है।" ("autonomous Communities within the British Empire equal in status ...though united by a Common allegiance to the Crown, and freely associated as members of the British Commonwealth of Nations")। स्टेट्यूट आव् वेस्टमिनिस्टर (Statute of Westminster), जिसमें इस स्थिति को वैधिक तथा सावैधानिक आधार (legal and constitutional basis) दिया गया था, ब्रिटिश ससद (Parliament) द्वारा स्वीकार किया गया तथा अधिराज्यो ने भी उसे स्वीकार कर लिया।

इस परिभाषा से जो अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति उत्पन्न हुई वह सदिग्धता (ambiguities) से मुक्त नही थी। ब्रिटिश सरकार [सन् १९२६ के बाद जिसका सरकारी नाम "ग्रेट ब्रिटेन और उत्तरी आयरलैंड के सयुक्त राज्य की सम्राट की सरकार ("His Majesty's Government in the

United Kingdom of Great Britain and Northern) Ireland) होगया था] हमेशा इस बात पर जोर देती थी कि न तो अनुबन्धपत्र ही और न ही ऐसा कोई अन्तर्राष्ट्रीय समझौता जो कि राष्ट्रसंघ के सदस्यों द्वारा आपस में किया जाए, ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के सदस्यों के आपसी सम्बन्धों पर लागू होते हैं। जो भी हो, आयरिश राजनीतिज्ञ इस मत की सदा ही आलोचना करते थे। *अन्य अधिराज्य सैद्धांतिक प्रश्न पर अपना निर्णय देने से अधिकांशतः बचते* थे। सन् १६२६ में राष्ट्रसंघ के सभी सदस्यों ने जब स्थायी न्यायालय के विधान की ऐच्छिक धारा (optional clause of the Statute) पर हस्ताक्षर किए, *तब यह मतभेद बिलकुल सामने आ गया। ग्रेट ब्रिटेन, जिसका अनुकरण* आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड ने भी किया, ने हस्ताक्षर के समय यह शर्त रखी कि ब्रिटिश राष्ट्रमडल के सदस्यों के आपसी विवाद न्यायालय द्वारा स्वीकार नही किए जाएँगे। कनाडा और दक्षिण अफ्रीका ने भी यही शर्त रखी किन्तु उसके साथ ही इस आशय का वक्तव्य भी दिया कि वे यह मत मानने के लिए तैयार नही है कि इस प्रकार के विवाद स्वतः से ही (*ipso facto*) न्यायालय के अधिकार के बाहर है। आयरिश प्रतिनिधि ने इन विवादो सम्बन्धी कोई शर्त नहीं रखी। इसी समस्या का एक और पहलू [जो कि सौभाग्य से शास्त्र विषयक (academic) ही रहा] यह था कि यदि ब्रिटिश राष्ट्रमंडल का कोई सदस्य अनुबधपत्र का उल्लंघन करते हुए युद्ध का आश्रय ले, तो क्या राष्ट्रमडल के अन्य सदस्य सोलहवें अनुच्छेद के अधीन अपने कर्त्तव्यो का पालन करने के लिए बाध्य होगे।

इन सैद्धांतिक कठिनाइयो के साथ ही साथ, मूलभूत प्रश्नो (fundamental issues) पर कुछ महत्त्वपूर्ण दृष्टि विभिन्नताएँ (divergencies of opinion) भी थी। वास्तव मे, उन विदेशियो के मत उचित नही थे जो यह सोचते थे कि राष्ट्रसंघ के सविधान (constitution) के कारण ब्रिटिश सरकार को छः मत प्राप्त हो गए हैं। क्योकि विषय-विस्तार पर (point of detail)—केवल इन्ही पर जेनेवा में बहुमत से निर्णय किया जाता था—ब्रिटिश राष्ट्रमडल के सदस्य कदाचित ही एक पक्ष में पाये जाते थे। वित्तीय और आर्थिक मामलों मे, अधिराज्य और भारत ग्रेट ब्रिटेन के विरुद्ध रहकर भी अपने राष्ट्रीय हितो का पक्ष लेते थे। राजनैतिक क्षेत्र में, भारत स्वतन्त्र कार्रवाई नहीं कर सकता था। ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के अन्य सदस्यों के बीच

मतभेद विषय की अपेक्षा महत्व सम्बन्धी मतभेद (differences of emphasis rather than of substance) सिद्ध होते थे। कनाडा जो स्वयं सुरक्षित था तथा अपने पड़ोसी संयुक्त राज्य अमेरिका से प्रभावित था, यह *इस इच्छा व्यक्त करता था कि राष्ट्रसंघ के अन्य सदस्यों की प्रतिरक्षा (defence)* करने सम्बन्धी उसके कर्त्तव्य कम से कम रहें। आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड इतने दूर प्रतीत होते थे कि अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में इनका लगातार रुचि दिखाना कठिन था। लेकिन समय-समय पर उन्हें जापान का भय लगा रहता था, और अब कभी भी परदेश आप्रवासियों (coloured immigrants) को अपने देश में नहीं आने देने सम्बन्धी उनकी नीति की आलोचना की जाती थी, वे हमेशा ही उसे नापसन्द करते थे। दक्षिण अफ्रीका संभवतः सुरक्षा-समस्याओं में अधिक रुचि दिखाता था। वह उन इने-गिने देशों में से था, जिसने जुलाई १६३६ में इटली के विरुद्ध अनुशास्तियां वापस लेने के प्रति अनुमोदन (disapproval) *प्रकट किया था। आयरिश (Irish) लोग अपनी किसी* अन्तर्राष्ट्रीय नीति पर चलने की अपेक्षा स्वतन्त्रता का सिद्धान्त स्थिर करने के प्रति ही अधिक चिन्तित प्रतीत होते थे। तीन अधिराज्यों—आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड और दक्षिणी अफ्रीका—का कुछ क्षेत्रों पर संरक्षण-राज्य था, जिनके विषय में वे राष्ट्रसंघ को प्रतिवर्ष प्रतिवेदन देते थे। सन् १६२७ के बाद से, परिषद् (Council) में एक अस्थायी स्थान (non permanent seat) हमेशा ही किसी न किसी अधिराज्य को प्राप्त रहा।

सन् १६३६ में युद्ध आरम्भ होने पर यह अन्तिम रूप से स्पष्ट होगया कि अधिराज्य ग्रेट ब्रिटेन का नेतृत्व स्वतः ही स्वीकार करने के लिए अपने आपको बाध्य नहीं मानते थे तथा उनमें से प्रत्येक ही अपने अधिकारपूर्वक तथा अपनी प्रतिष्ठा एवं हित का विचार करते हुए कार्य करता था।

१३. पुनः युद्ध की लपटों में
(Relapse Into War)

यह हम पहले ही देख चुके हैं कि १६१६ क समझौते से असन्तुष्ट राष्ट्रों ने १६३६ के अन्त तक इस समझौते के अन्तर्गत अपने कर्त्तव्यों से मुक्त होने का अपना अधिकार जता दिया था। अब वे अपनी हानि-पूर्ति (satisfaction) का दावा कर रहे थे जिसका अर्थ यह हानि पूरी नहीं होने पर कवल युद्ध ही हो सकता था। इस खतरे के कारण, ब्रिटिश सरकार ने स्वय उदाहरण प्रस्तुत कर निःशस्त्रीकरण करने का अपना प्रयत्न पूर्णतः छोड़ दिया। मार्च १६३७ में नेविल चेम्बरलेन (Neville Chamberlain) ने वित्तमन्त्री (Chancellor of Exchequer) की हैसियत से यह घोषणा की कि प्रतिरक्षा-व्यय की पूर्ति अब केवल कर लगाकर ही नहीं की जाएगी। चेम्बरलेन ने यह प्रस्ताव रखा था कि इस प्रयोजन के लिए चालीस करोड़ पौंड का ऋण लिया जाएगा तथा पांच वर्षों की अवधि में प्रतिरक्षा पर डेढ़ अरब पौंड व्यय किए जाएँगे। प्रधान मन्त्री बाल्डविन (Baldwin) ने इन प्रस्तावों का समर्थन यह कह कर किया था कि ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य आक्रमण को रोकना है तथा कुछ वर्षों तक सीमित व्यय करने के बाद, जीवन स्तर या समाजोपयोगी सेवाओं (social services) पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना ही ब्रिटेन प्रतिरक्षा पर यह व्यय कर सकता है। बाल्डविन और विदेश मन्त्री ईडन दोनों ही ने यह स्वीकार करने से इन्कार किया कि ग्रेट ब्रिटेन ने राष्ट्रसंघ छोड़ दिया है। *बाल्डविन ने यह आशा प्रकट की कि राष्ट्रसंघ की कार्रवाई के साथ ही साथ* "प्रादेशिक समझौते" ("regional pacts") भी किए जाएँगे जिनमें कुछ क्षेत्रों के लिए कुछ राष्ट्रों से गारन्टी दी जाएगी। किन्तु ईडन को यह स्वीकार करना पड़ा कि इस दिशा में बहुत कम प्रगति हो सकी है। और उन्होंने ब्रिटिश शस्त्रीकरण का समर्थन यह कह कर किया कि यह शस्त्रीकरण ही शांति की सर्वोत्तम गारन्टी है।

उस समय युद्ध का खतरा अनिश्चित था; जर्मनी की पूरी शक्ति फ्रांसीसी

मैगीनाट लाइन (French Maginot Line) के विरुद्ध प्रतिरक्षा-निर्माण करने में लगी हुई थी। इस "सिगफ्रीड लाइन (Siegfried Line)" के पूर्ण हो जाने पर, जर्मनी सयुक्त ताकत (united force) से पश्चिमी सीमात को अपने अधिकार मे रख सकता था और पूर्व को ओर अपने प्रयत्न केन्द्रित कर सकता था। किन्तु सारा योरोप, विशेषकर फ्रास और ग्रेट ब्रिटेन, युद्ध की इस नई अभिनयशाला (theatre of war) में कब क्या घटित हो जाए, यह अनिश्चित ही मानते थे।

स्पेनिश गृह-युद्ध
(Spanish Civil War)

सन् १९३६ के उत्तरार्ध (latter half) की सबसे महत्वपूर्ण घटना एक ऐसे देश मे घटी जिसका अन्तर्राष्ट्रीय मामलों मे अनेक वर्षों से अमहत्त्वपूर्ण भाग रहा था। स्पेन में १९२३ मे जो तानाशाही स्थापित हुई थी वह १९३० में उलट दी गई। अगले वर्ष वहाँ के शासक अलफोन्जो तेरहवें (Alfonso XIII) ने राजगद्दी त्याग दी तथा स्पेन मे प्रजातान्त्रिक गणतन्त्र (democratic republic) की स्थापना की गई। सन् १९३१ से १९३६ तक इस प्रजातन्त्र मे दक्षिणपथी राजवादियो (royalists) और अन्य प्रतिक्रियावादियो (reactionaries) तथा वामपथी अराजकतावादियो एव कम्युनिस्टों मे कुछ अनिश्चित सतुलन (precarious balance) बना रहा। राज्य को अर्थव्यवस्था अव्यवस्थापूर्ण (chaotic) हो गई तथा सार्वजनिक व्यवस्था (public order) को प्राय: खतरा उत्पन्न हो जाता था। जुलाई १९३६ में, स्पेनिश मोरक्को (Morocco) स्थित सेना के सेनापति फ्राको (General Franco) ने सैनिक विद्रोह की घोषणा कर दी और मुख्यत मूरिश (Moorish) सेना को सहायता से स्पेन में कूच कर दिया। अधिक विरोध के बिना ही, उसने स्पेन के बिलकुल दक्षिणी भाग (extreme south) पर अधिकार कर लिया तथा सारे पश्चिमी स्पेन पर धीरे-धीरे विजय पा ली। नवम्बर के मध्य तक, विद्रोही मेड्रिड के उपनगरो (suburbs of Madrid) तक पहुँच गये; स्पेनिश सरकार हट कर वेलेन्शिया (Valencia) चली गई तथा राजधानी का पतन निकट प्रतीत होने लगा। इस समय के बाद से, सरकारी सेना का मुकाबिला कडा होने लगा। वर्ष के अन्त तक, तीन सभव हल—वामपथियो की

विजय, दक्षिण पंथियो की विजय या उनमे गतिरोध (stalemate)—लगभग समान रूप से संभव प्रतीत होने लगे।

वैसे अन्य परिस्थितियो मे, स्पेनिश गृह युद्ध अन्तर्राष्ट्रीय घटना नही हुआ होता। जिन कारणो से वह अन्तर्राष्ट्रीय घटना हो सका, वे दो प्रकार के थे। एक तो, इटली—अबीसीनिया मे हाल ही मे उसकी विजय ने भूमध्यसागर के सामरिक महत्त्व (strategic importance) को सामने ला दिया था—ने पश्चिमी भूमध्यसागर मे अपनी स्थिति सुदृढ बनाने के अवसर का स्वागत किया। दूसरे, प्रथम विश्व-युद्ध के बाद से, यह विचार जोर पकड रहा था कि किसी देश विशेष का आन्तरिक संगठन जिस राजनैतिक सिद्धान्त पर आधारित हो, अन्य देशो में उस सिद्धान्त की विजय के लिए उस देश को प्रोत्साहन तथा सहायता देना चाहिये। सन् १६२७ से पहिले सोवियत संघ ने यह नीति अपनाई थी और आगे चलकर अन्य देशो ने भी उसका अनुकरण किया था। जर्मनी ने १६३३ ३४ मे आँस्ट्रियन, नात्सियो को आर्थिक और शस्त्रास्त्रो की सहायता दी थी। जर्मनी से भी अधिक सफलतापूर्वक इटली ने इस बात पर जोर दिया कि आँस्ट्रिया में फासिस्ट शासन की स्थापना की जाये। १६३६ में इटली और जर्मनी ने स्पेनिश गृह-युद्ध को फासिज्म और कम्युनिज्म के बीच संघर्ष माना—यद्यपि उनके कारण उचित प्रतीत नही होते थे—तथा विद्रोहियो की सहायता करना ठीक समझा। इस प्रकार के लगभग सभी मामलो में, हस्तक्षेपकर्ता देश (intervening country) के राष्ट्रीय हितो और किसी राजनैतिक सिद्धान्त के कल्पित हितो (supposed interests) में भेद कर पाना कठिन प्रतीत होता है।

इसमें संदेह की गुंजाइश कम ही है कि इटली, किसी न किसी रूप मे, सेनापति फ्रांको द्वारा किए गए विद्रोह का गुप्त सहकारी (privy) था, क्योकि फ्रेंको की सेना को मोरक्को से लाने के लिए इटालियन वायुयानो की सहायता प्रारम्भ से ही प्राप्त हुई थी[1]। कुछ ही सप्ताहों में, स्पेनिश गृह-युद्ध के कारण सारे

1. "There can be little doubt that Italy, at any rate, was privy to General Franco's rebellion; for the help of Italian aeroplanes was forthcoming at the very outset to transport his troops from Morocco"

योरोप के ही दो खेमो (camps) मे बँट जाने की आशंका होने लगी। इटली, जर्मनी, और पुर्तगाल खुले आम विद्रोहियो के प्रति सहानुभूति जताते थे जबकि सोवियत सघ स्पेन सरकार के साथ सहानुभूति रखता था। किसी भी कीमत पर (at all costs) तटस्थ बने रहने के लिए उत्सुक ब्रिटिश सरकार ने ग्रेट ब्रिटेन से स्पेन को युद्ध-सामग्री भेजे जाने पर १५ अगस्त को रोक लगा दी। फ्रास ने भी ब्रिटेन का अनुसरण किया। तत्पश्चात् इन दोनो देशो ने योरोप के सभी देशो से इस आशय का एक समझौता करने का अनुरोध किया कि वे किसी भी पक्ष को युद्ध सामग्री नही भेजेंगे तथा इस समझौते पर किस प्रकार अमल किया जा रहा है इसकी देखरेख करने के लिए लदन मे एक अहस्तक्षेप-समिति (non-intervention committee) गठित की जाएगी। मुख्यतः पुर्तगाल की आनाकानी (reluctance) के कारण, कुछ विलब के पश्चात, यह समझौता हो गया। इस समझौते के कारण कुछ सप्ताहो तक स्पेन को शस्त्रास्त्र का भेजा जाना रुक गया था—ऐसा प्रतीत होता है। किन्तु उसके कुछ समय बाद ही, स्पेनिश और सोवियत सरकारें समझौते का उल्लघन करने के लिए, इटली, जर्मनी तथा पुर्तगाल की निंदा करने लग गई। इन आरोपो का उत्तर सोवियत सरकार पर आरोप—जो शीघ्र ही उतने ही ठोस हो गये—लगाकर दिया गया। अक्टूबर के बाद से, इटली और जर्मनी, न्यूनाधिक प्रकट रूप से विद्रोहियो को शस्त्रास्त्र भेज रहे थे, तथा सोवियत सरकार स्पेन की सरकार को। नवम्बर मे, जब मेड्रिड का पतन निकट दिखाई देता था, इटली और जर्मनी ने सेनापति फ्रेंको द्वारा स्थापित सरकार को सरकारी तौर पर मान्यता दे दी। काफी सख्या मे इटली और जर्मन सैनिक विद्रोहियो के साथ मिलकर युद्ध लड रहे थे। इसी प्रकार स्पेनिश सरकार की ओर से रूसी सैनिक टुकडियाँ तथा फासिस्ट-विरोधी इटलीवासी और नात्सी-विरोधी जर्मन लोग लड रहे थे। स्पेनिश गृह-युद्ध यद्यपि स्पेन की भूमि पर हुआ था तदपि उसने योरोपीय गृह-युद्ध के कई लक्षण धारण कर लिए थे।[1]

राष्ट्रों की प्रतिद्वंद्वात्मक गुटबंदी
(Rival Grouping of the Powers)

सन् १९३६ के अन्तिम महीनो की दूसरी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना जर्मनी

1. "The Spanish Civil War assumed many of the aspects of European civil war fought on Spanish territory."

भ्रौर जापान के बीच एक समझौता थी। राजनैतिक दृष्टि से, यह समझौता फ्रास-सोवियत समझौता का ही परिणाम भ्रौर प्रतिरूप (consequence and counterpart) था। इसमें ग्राश्चर्य की बात केवल इतनी ही है कि यह समझौता भ्रौर भी जल्दी नही हो सका था। किन्तु उस समय की विशेषता के अनुसार, यह मैत्री समझौता (pact of alliance) न होकर कम्युनिज्म को रोकने के लिए परस्पर सहायता सम्बन्धी समझौता था।

इस प्रकार १९३६ की समाप्ति तक ससार का काफी भाग दो गुटो मे बँट चुका था। एक का नेतृत्व जर्मनी, इटली भ्रौर जापान करते थे तो दूसरे का फ्रास तथा सोवियत सघ। पहिले गुट को कभी-कभी फासिस्ट राष्ट्र कहा जाता था किन्तु इसमे सदेह ही है कि यह शब्द जापान के लिए भी प्रयुक्त करना उचित था। दूसरे गुटो को इतनी सरलता से कोई नाम नही दिया जा सकता था। सोवियत सघ ने १९३६ में जो सविधान स्वीकार किया था, उसमे यद्यपि प्रजातन्त्र के कुछ वाह्य रूपो (external forms) को स्थान दिया गया था, तदपि पाश्चात्य प्रजातत्र उसके लिए उतनी ही पराई चीज थी जितनी कम्युनिज्म फ्रास के लिए। उस समय प्रचलित यह सिद्धात कि किसी भी देश का वर्गीकरण उस राजनैतिक सिद्धात के अनुसार किया जाए जिसे वह मानता है, भ्रामक (misleading) हो गया। ये प्रतिद्व द्वात्मक गुटबँदियाँ होने का प्रमुख कारण किसी सामान्य राजनैतिक सिद्धात में विश्वास नही था। प्रथम गुट, कई कारणो से, १९१९ मे किए गए विश्व के क्षेत्रिक समझौते से असनुष्ट था जबकि दूसरा गुट उसे बनाए रखना चाहता था। मूलभूत मतभेद मुख्यतः उन लोगो में था जो कि विश्व व्यापार के तत्कालीन अन्तर्राष्ट्रीय वितरण (international distribution) से सतुष्ट भ्रौर असनुष्ट थे।[1]

इस समय ब्रिटिश सरकार ने किसी भी गुट में शामिल होने से इकार कर दिया तथा सतर्कतापूर्ण तटस्थता का रुख (attitude of cautious neutrality) तब तक अपनाए रखा, जब तक कि अन्य राष्ट्रों की अशातिकारक कार्रवाई के कारण उसे यह रुख त्याग देने के लिए विवश नही हो जाना पडा। यह अफ-

---

१ "The fundamental division was between those who were in the main satisfied with the existing international distribution of the world's goods and those who were not."

बाद उड जाने कारण कि स्पेनिश मोरक्को में जर्मन सेनाएँ जमा हो गई हैं, १६३७ के प्रारम्भ में चिन्ता का कारण उपस्थित हो गया। भय इस बात का था कि सेनापति फ्रेंको इस क्षेत्र को किसी की सहायता के बदले में उसे दे सकता है। फ्रासीसी सरकार ने १६२२ के समझौते—जिनके अनुसार रिफ युद्ध (Riff war) में फ्रासीसी सहायता प्राप्त करने के बाद, स्पेन ने यह वचन दिया था कि वह सामरिक (strategic) महत्त्व के इस क्षेत्र का स्वत्वान्तरण (alienation) नहीं करेगा—का सार्वजनिक रूप से स्मरण कराया। जो भी हो, जर्मनी ने ऐसी किसी महत्त्वाकाक्षा से इन्कार किया। सेनापति फ्रेंको ने भी यह घोषणा की कि स्पेनिश क्षेत्र को अखड बनाए रखने के लिए वह कृतसकल्प (determined) है। जैसे जैसे समय बीतता गया, वैसे-वैसे जर्मनी ने इटली को मुख्य भूमिका करने के लिये छोड दिया। जर्मनी की सहायता मुख्यतः सामग्री और टेकनिसियनो (technicians) तक ही सीमित थी जबकि इटली की सेनाएँ पृथक् और स्पष्ट सेना के रूप में लडती थीं तथा उनकी सफलताओं का रोम मे विजय के रूप में स्वागत किया जाता था। जहाँ तक स्पेनिश सरकार का प्रश्न है उसकी अन्तर्राष्ट्रीय ब्रिगेड (International Brigade) को स्पष्ट ही किसी देश विशेष का कहा जा सकता था, किन्तु सामग्री—जिसका अधिकाश भाग सभवतः रूस से आता था—अधिकाशतः फ्रास से होकर आती थी।

जून १६३६ में, ल्यों ब्लूम (Leon Blum) के नेतृत्व में लोक मोर्चा (*Front Populaire*)—क्रातिवादियों (Radicals), समाजवादियों और कम्युनिस्टो की गुटबन्दी—की सरकार बन जाने से फ्रास में गम्भीर राजनैतिक सकट उपस्थित हो जाने के कारण, योरोप की सामान्य स्थिति पर और भी गहरा प्रभाव पडा था। इस सरकार ने श्रमिको और मालिको के सबधों मे परिवर्तन सम्बन्धी विधियाँ (laws) इतनी तेजी से बनाई कि धनिक वर्गों (wealthier classes) ने उन्हें क्रातिकारी माना। सम्पन्न और सुशिक्षित यहूदी, ब्लूम को इन क्षेत्रो में मास्को का दलाल (agent) माना जाता था। स्पेन मे विजय उस पक्ष की हुई जिसका तथाकथित फासिस्ट राष्ट्रो ने पक्ष लिया था। इसका मुख्य कारण यह था कि जर्मनी और इटली ने—स्पेन मे किसी प्रकार का हस्तक्षेप न हो यह देखने के लिए वचनबद्ध अन्तर्राष्ट्रीय समिति के सदस्य होते हुए भी—स्पेनिश सरकार का पासा पलट देने के लिए आवश्यक

सीमा तक सामग्री और कुमुक (reinforcements) द्वारा उसकी सहायता की थी। किन्तु ब्लूम—स्पेनिश प्रश्न पर उसकी भावनाएं कुछ भी रही हों—अन्य सभी फ्रासीसियों की भाँति यह सोचता था कि फ्रास का मुख्य हित ग्रेट ब्रिटेन के साथ कदम मिलाने में है। इधर ब्रिटिश सरकार ने यदि अहस्तक्षेप (non-intervention) को वास्तविकता बनाए रखने का नहीं, तो कम से कम हस्तक्षेप को व्यापक योरोपीय युद्ध का रूप धारण करने से बचाने का, तो हर प्रयत्न किया हो। तनाव १९३९ के वसंत तक जारी रहा जबकि केटेलोनिया (Catalonia) में गणतन्त्र सरकार की स्थिति कमजोर हो चुकी थी, मेड्रिड पर अन्ततः (finally) सेनापति फ्रेंको की सेना ने अधिकार कर लिया। उसके बाद फ्रास और ग्रेट ब्रिटेन दोनों ही की सरकारों ने फ्रेंको सरकार को विधिवत् मान्यता दे दी।

किंतु इससे विश्व-स्थिति कम संकटपूर्ण नहीं हुई। जिस समय स्पेनिश युद्ध पूरे वेग से चल रहा था, उस समय जापान ने चीन में अपनी कार्रवाई प्रारम्भ की। *अन्य सब बातों के होते हुए भी यह कार्रवाई आक्रमणात्मक चढाई* (aggressive invasion) ही थी क्योंकि युद्ध की घोषणा नहीं की गई थी। नवम्बर १९३७ मे, इटली कॉमिन्टर्न विरोधी समझौते (Anti-Comintern pact) में शामिल हो गया जो कि जर्मनी और जापान के बीच किया गया था। इसके अनुपरिणाम स्वरूप (as a sequel) इटली ने राष्ट्र-सघ से हट जाने की घोषणा ११ दिसम्बर को की। म्युनिक में जब स्वय मुसोलिनी ने हिटलर से समारोहपूर्ण सरकारी भेंट (ceremonial official visit) की थी, तब जर्मनी के साथ इटली के सुदृढ सम्बन्धों की पुष्टि हो चुकी थी। उसके प्रत्युत्तर में, १९३८ में, रोम में हिटलर का बडे समारोहपूर्वक स्वागत किया गया। ऐसी कोई भी बात नहीं छूटी जो कि बर्लिन-रोम धुरी (Berlin-Rome axis)—कम से कम सिद्धात रूप में जिससे जापान भी सबद्ध था—की शक्ति की पुष्टि करने के लिए आवश्यक हो। यह सम्भव प्रतीत होने लगा कि असन्तुष्ट राष्ट्र की हानि-पूर्ति के लिए बिलकुल निकट भविष्य में ही कार्रवाई की जायगी। चेकोस्लोवाकिया के जर्मन तत्व अपने असन्तोष की घोषणा पहिले ही कर चुके थे तथा जर्मनी में शामिल होने की इच्छा भी व्यक्त कर चुके थे। सूडेटन जर्मनों का नेता हेनलीन (Henlein) एक योरोपीय व्यक्तित्व का व्यक्ति हो गया तथा प्रचार कार्य के लिए ब्रिटेन आया।

इसी बीच रूस मे एक महत्त्वपूर्ण शुद्धि (purge) चल रही थी। सोवियत सरकार ने १६३६ मे कई ऐसे राजनीतिज्ञो पर मुकदमे चलाए जो लेनिन के समय के प्रतिकारी दलो में सर्वाधिक प्रसिद्ध रह चुके थे। अब, १६३७ में कुछ सुविख्यात सेनापतियो को भी इसी प्रकार निकाल दिया गया था। यह अनुमान किया जाने लगा कि फ्रास सोवियत गुटबन्दी का सैनिक महत्त्व (military value) इससे बहुत कम हो गया है। इस विषय मे भी सदेह बढ रहा था कि ऑस्ट्रिया की स्वतन्त्रता मे इटली का वही हित अब भी बना रहेगा जो कि ब्रेनर-सीमा पर अपनी सैनिक टुकडियाँ जमाकर उसने १६३४ मे दिखाया था।

कुल मिलाकर, १६३७ का वर्ष अप्रकट घटनाओ (undisclosed events) की तैयारी का वर्ष ही था।[1] भूमध्यसागर (Mediterranean) मे युद्ध का खतरा सबसे अधिक प्रतीत होता था जहाँ इटली वर्तमान शक्ति-विभाजन (division of power) से बहुत अधिक असतोष प्रकट किया करता था। उसका यह दावा था कि अबीसीनिया मे उसे जो नई प्राप्ति हुई है उसके कारण उसे स्वेज नहर (Suez Canal)—जो कि अबीसीनिया तक जाती है—के नियत्रण मे स्थान मिलना चाहिए तथा ट्यूनिस (Tunis) की जनसख्या मे इटालियन लोगो की प्रमुखता से यह स्पष्ट है कि यह उपनिवेश, वास्तव मे, इटली के अधिकार में ही होना चाहिए। इटली द्वारा ग्रेट ब्रिटेन—जिसके विस्तृत पुनर्शस्त्रीकरण को जर्मनी और इटली दोनो ही के प्रति ठोस प्रतिरोध (positive resistance) की नई नीति का सूचक माना जाता था—के विरुद्ध प्रचड प्रचार किया गया। ब्रिटिश विदेशमत्री ईडन ने जेनेवा में १६ जनवरी १६३८ को हुई राष्ट्र-सघ परिषद् की बैठक मे, ब्रिटेन की सैनिक तैयारियो को अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा में वृद्धि करने के सहयोग सम्बन्धी उन सिद्धान्तो की सहायक बताया जिन पर राष्ट्रसघ आधारित था। किन्तु ब्रिटिश ससद (Parliament) मे हुई बहस से ब्रिटिश मन्त्रिमन्डल मे मतभेद की सूचना मिलती थी और २० फरवरी को यह घोषित कर दिया गया कि ईडन का त्यागपत्र स्वीकार कर लिया गया है। जर्मन और इटालियन प्रचार साधन (organs of publicity) प्राय ही ईडन को अपने वैध दावो (legitimate claims)

1. "But, on the whole, 1937 was only a year of preparation for undisclosed events."

की पूर्ति मे बाधक प्रचारित करते रहे थे। ब्रिटिश लोकसभा में अपने त्यागपत्र पर प्रकाश डालते हुए ईडन ने यह स्पष्ट किया कि वे इटली से किसी भी प्रकार की वार्ता चलाने के तब तक विरोध में थे, जब तक कि इटली शत्रुतापूर्ण प्रचार (hostile propaganda) बन्द करने और स्पेन से अपनी सेनाएँ हटा लेने सम्बन्धी अपने वचन पूरे नही कर देता। प्रधानमन्त्री के रूप में बाल्डविन के उत्तराधिकारी नेविल चेम्बरलेन (Neville Chamberlain) ने ईडन के उत्तराधिकारी लॉर्ड हेलिफेक्स (Lord Halifax) के सहयोगपूर्वक इटली से वार्ता चलाने के अपने विचार की घोषणा की। बाइसवी फरवरी को चेम्बरलेन ने यह मत प्रकट किया कि छोटे छोटे देशो मे इस विश्वास को बढावा देना गलत होगा कि राष्ट्रसघ आक्रमण से उनकी रक्षा करेगा। लगभग दो वर्षों पूर्व ही, चूँकि बाल्डविन ने राष्ट्रसघ को ब्रिटिश नीति का अतिम आश्रय (sheet-anchor) घोषित किया था, अतएव अब यह स्पष्ट था कि इस समय मोर्चा (front) बदल दिया गया था। चेम्बरलेन ने यह स्वीकार किया कि पहिले उन्हे यह विश्वास था कि इस प्रकार की सहायता समव हो सकेगी किन्तु अब उन्होने अपनी राय बदल दी है। यदि यह आश्वासन दिया जाता कि स्पेन से विदेशी सेनाएँ हटा लेने सम्बन्धी ब्रिटिश योजनाएँ स्वीकार कर ली जाएँगी, तो ग्रेट ब्रिटेन यह वचन दे सकता था कि वह इटली की अबीसीनिया-विजय को मान्यता देने के लिए राष्ट्रसघ से अनुरोध करेगा।

जर्मनी द्वारा आक्रमण का प्रारम्भ
(Germany Begins Aggression)

इसी बीच, अतर्राष्ट्रीय सुरक्षा को एक नया खतरा उपस्थित होगया। स्ट्रेसा (Stresa) मे १६३५ में हस्ताक्षरित (signed) एक समझौते के अधीन ब्रिटेन ने फ्रास और इटली के साथ ही ऑस्ट्रिया की स्वतन्त्रता और अखडता (independence and integrity) में अपना हित घोषित किया था। अन्य राज्यो पर नात्सी जर्मनी ने जो आक्रमण किए उनमे से प्रथम आक्रमण के कारण इस स्वतन्त्रता को इस समय गम्भीर खतरा आ उपस्थित हुआ था।

सन् १६३८ के प्रारम्भ में, हिटलर ने जर्मनी की सभी सशस्त्र सेनाओं की सर्वोच्च कमान (supreme command) अपने हाथों में ले ली थी। इस प्रकार जो अधिकारी उसके सामान्य कार्यक्रम (general line of action)

का विरोध करते थे, उन पर वह अपनी इच्छा लाद सकता था। रिबेनट्रॉप (Ribbentrop) जो अभी तक ग्रेट ब्रिटेन मे राजदूत था नायरेथ (Neuroth) के स्थान पर विदेशमन्त्री बना। इसके बाद से, आक्रमणात्मक कार्रवाई प्रारम्भ हुई। ऑस्ट्रियन नात्सियो द्वारा आयोजित अशातिपूर्ण प्रदर्शनो के बाद, ऑस्ट्रिया के प्रधानमन्त्री शुशनिग (Schuschnigg) को हिटलर ने बेर्शटेसगाडेन (Berchtesgaden) में भेंट के लिए बुलाया। शुशनिग ने एक प्रकार का अल्टीमेटम स्वीकार कर लिया जिसके अनुसार उसे अपनी सरकार में नात्सी प्रतिनिधियो को लेना पडा। जो भी हो, इतने में ही उसकी खैर नही रही। बारहवी मार्च को जर्मन सेनाएं विएना में प्रविष्ट होगई और उन्होने विएना पर अधिकार कर लिया। इस सेना की एक टुकडी तुरन्त ही बेनर दर्रे (Brener Pass) पर पहुँची और इटालियन चौकियो के सैनिको तथा उसने परस्पर अभिवादन किया। सन् १६३४ से ही इटली के रुख मे भारी परिवर्तन हो चुका था। ऑस्ट्रिया मे इस आक्रमण का कोई विरोध नही हुआ। सभवतः अधिकाश आबादी यह चाहती थी कि ऑस्ट्रिया को जर्मनी में शामिल कर लिया जाये। किन्तु यह स्पष्ट था कि इसके बाद आक्रमण एक अन्य देश में हो सकता था जहाँ उसका तीव्र विरोध हो। चेकोस्लोवाकिया पर इसका यह परिणाम हुआ कि अब उसे अतिविस्तृत (greatly extended) सीमात पर जर्मनी की शक्ति का सामना करना था। कारपेथियन (Carpathians) स्थित जर्मनी के सामने का इस क्षेत्र का कुछ भाग किलेबंदी पूर्ण (fortified) था तथा ऑस्ट्रिया के सामने का शेष भाग खुला हुआ था। उसकी कुल जनसख्या डेढ करोड से कम थी। उसमें से लगभग पेंतीस लाख सूडेटन जर्मन थे जो कि सीमात पर सुगठित समूहों (compact groups) के रूप मे बसे हुए थे। डेन्यूब की ओर दक्षिण में करीब-करीब दस लाख मेग्यार लोग (Magyars) थे जो हगरी से पुनः संयुक्त हो जाने की माँग करते थे। पूर्व मे पोलैंड टेशेन (Teschen) नामक महत्त्वपूर्ण खनिज-जिले (mining district) का दावा करता था जो मित्र-राष्ट्रों द्वारा लादे गए एक समझौते के अनुसार १६२० में चेक लोगो को मिला था।

तो, इन परिस्थितियो में, चेक सीमा पर बडे पैमाने पर सैनिक गतिविधि करने (to hold manoeuvers) की जर्मनी ने तैयारियाँ की। चेक सरकार

ने अपनी कुछ रक्षित सेना (reserves) बुला ली और इसी बीच सूडेटनों से कोई समझौता कर लेने के लिए चिन्तापूर्ण प्रयत्न किये। किन्तु चेक सरकार न केवल आन्तरिक व्यवस्था बनाए रखने में समर्थ हो सकी अपितु जबर्दस्ती आक्रमण का मुकाबिला करने के लिए भी तैयार थी। फ्रांस और सोवियत संघ भी इस बात के लिए वचनबद्ध थे कि यदि उस पर आक्रमण हो, तो वे उसकी सहायता करें। इस सम्बन्ध मे कुछ करने का ब्रिटेन का कोई सीधा उत्तरदायित्व नही था। किन्तु २४ मार्च को चेम्बरलेन ब्रिटिश लोकसभा में कह चुके थे कि यदि इस कारण से ब्रिटेन का मित्र फ्रांस युद्ध मे घसीटा गया, तो औपचारिक घोषणाओ (formal pronouncements) की अपेक्षा तथ्यो का विवशतापूर्ण सत्य (inexorable pressure of facts) संभवतः अधिक प्रभावकारी सिद्ध होगा। इस घोषणा का यह अर्थ लगाया गया था कि ब्रिटेन ने यह वचन दिया है कि यदि फ्रांस ने चेकोस्लोवाकिया का साथ दिया, तो ब्रिटेन भी उसका साथ देगा।

इन सब बातो के होते हुए भी, योरोपीय युद्ध का भय स्पेन में चल रहे युद्ध से ही मुख्यत. सम्बन्धित था। क्योकि वहाँ गणतन्त्रीय सरकार (Republican Government) के अधिकार के बन्दरगाहो में जो ब्रिटिश जहाज माल पहुँचाते थे, उन पर विद्रोहियो के वायुयानो—जिनमे कि जर्मन या इटालियन चालक होते थे, ऐसा कहा जाता था—द्वारा प्राय बमवर्षा की जाती थी। किन्तु दोनों ही पक्षों से विदेशी सेना हटा लेने की एक ब्रिटिश योजना पर चर्चा भी चल रही थी। मध्य योरोप मे घिर रहे विपत्ति के बादलो को कम करने के लिए, लॉर्ड रन्सिमेन (Lord Runciman) को समझौता कराने (conciliator) तथा सलाहकार के रूप में कार्य करने के लिए प्रेग[1] (चेक सरकार ने इसके लिए औपचारिक रूप से ही अनुरोध किया था) भेजा गया। किन्तु जर्मन सरकार से परामर्श कर प्रस्तुत किए गए सूडेटन दावे अधिकाधिक आग्रहपूर्ण (insistent) होते गये। यद्यपि उन्हे और अधिक रियायतें (concessions) देने का प्रस्ताव किया गया था, तदपि १२ सितम्बर को हिटलर (Herr Hitler) ने न्यूरेम्बर्ग (Nuremberg) मे एक विशाल जनसमूह (great gathering) के सामने सूडेटनो को यह सलाह दी कि वे जर्मनी में

१. चेकोस्लोवाकिया की राजधानी।

पुनः शामिल होने की अपनी मांग पर दृढ रहे तथा उन्हें जर्मन सेना की सहायता प्राप्त रहने का वचन भी हिटलर ने दिया। चूँकि फ्रास और सोवियत सघ चेक लोगो की सहायता करने का वचन दे चुके थे, इसलिए इससे युद्ध की आशंका उत्पन्न हो गई। ब्रिटेन की ओर से चेम्बरलेन ने इस समय प्रयत्न करना प्रारम्भ किया। सितम्बर १४ को उन्होने यह विचार प्रकट किया कि वे शातिपूर्ण समाधान के लिए स्वयं जर्मनी जाना चाहते हैं। पन्द्रहवी तारीख को वे वायुयान द्वारा म्युनिक गए और बेर्शटेसगाडेन मे हिटलर से उनकी भेंट कराई गई। वहाँ से वे दूसरे ही दिन वायुयान से लदन लौट आये। सितम्बर १८ को फ्रास के प्रधानमन्त्री देलादियर (Daladier) और विदेशमन्त्री बॉनेत (Bonnet) भी उनके साथ हो लिये। इसी समय राष्ट्रसघ-सभा अधिवेशन चल रहा था; लिट्विनोव ने चेक सरकार और फ्रास को दिया गया वचन—यदि फ्रास ने चेकोस्लोवाकिया की ओर से हस्तक्षेप किया तो चेक लोगों की सहायता करने के लिए सोवियत सरकार अपने सभी साधनो का उपयोग करेगी—सार्वजनिक रूप से दोहराया। किन्तु सैनिक सहयोग के विषय में कोई परामर्श नहीं किया गया। पिछले वर्ष की भाँति इस वर्ष भी रूस मे स्टालिन द्वारा प्रारम्भ किया गया शुद्धि कार्य (purge) जारी था तथा इस कारण सोवियत सैन्य सगठन (military machine) की कार्य-कुशलता के बारे में संदेह व्यापक रूप से फैला हुआ था।

चेम्बरलेन और देलादियर ने मिलकर एक योजना बनाई जिसे वे सयुक्त रूप से चेकोस्लोवाक सरकार के सामने रखना चाहते थे। उसके अनुसार सूडेटन जर्मन आबादी वाला काफी क्षेत्र जर्मनी को सौंप दिया जाना था। योजना के इस अग को चेम्बरलेन ने क्रातिकारी किन्तु आवश्यक शल्यक्रिया (surgical operation) बताया। चेकोस्लोवाक सरकार ने घोषणा की कि फ्रास और ग्रेट ब्रिटेन से बहुत अधिक दबाव के कारण, उसे इस योजना के प्रति अपनी मौन सम्मति (acquiescence) देनी पड रही है। राइन स्थित गोडेसबर्ग (Godesberg) में हिटलर से दूसरी भेंट के लिए चेम्बरलेन पुन. वापस जर्मनी गये। इस अवसर पर नात्सी नेता (Fuhrer) ने इतनी आश्चर्यजनक माँगें रखी कि चेम्बरलेन ने उनका एक ज्ञापन (memorandum) आगे भेज देने के अतिरिक्त और कुछ करने मे इन्कार कर दिया। यह निश्चय किया

गया कि यदि हिटलर ने चेक क्षेत्र में तत्काल ही कूच कर जाने की अपनी धमकी को असली रूप दिया, तो फ्रांस और ग्रेट ब्रिटेन हिटलर का मुकाबला करने में चेक लोगों की सहायता करेंगे। ब्रिटिश नौसेना को तैयार कर लिया गया और हवाई हमले (air raid) के विरुद्ध लन्दन में जल्दी-जल्दी कदम भी उठाए गये। किन्तु चेम्बरलेन ने—उनका इस समय भी यह मत था कि जो रियायतें पहिले दी जा चुकी हैं उनको देखते हुए ऐसे कोई मतभेद शेष नहीं बचे हैं जिनके कारण युद्ध संभव हो सके—पुनः एक सम्मेलन आयोजित करने के लिए मुसोलिनी से अपील की और इस अपील मे चेम्बरलन को सफलता भी मिली। उन्तीसवी सितम्बर को हिटलर, मुसोलिनी, चेम्बरलेन और देलादियर के एक सम्मेलन ने वे शर्तें[1] तय करदी जो कि चेक लोगों पर लादी जानी थी। इन चर्चाओं के समय चेक लोगों या सोवियत संघ का कोई प्रतिनिधि उपस्थित नहीं था। इन शर्तों को मान लेने के कारण क्रुद्ध जनता का सामना कर पाने में असमर्थ पाकर चेकोस्लोवाक सरकार ने त्याग-पत्र दे दिया। चेक सेना (Czech Legion) के एक विख्यात नेता सेनापति सिरोवी (Syrovy) ने शासन का कार्य भार सभाला। कुछ दिनो के बाद बीनेस (Benes) ने, जो कि मसारिक (Masaryk) की मृत्यु के बाद से ही, राष्ट्रपति के पद पर था, भी त्यागपत्र दे दिया और देश त्याग कर दिया। कुछ समय तक तो ऐसा प्रतीत होने लगा कि चेम्बरलेन की विजय हुई है। वापस लौटने पर, उनका बहुत उत्साह से स्वागत किया गया था, और उन्होंने हिटलर तथा स्वयं उनके द्वारा हस्ताक्षरित वह दस्तावेज अभिमानपूर्वक बताया था जिसमें यह घोषणा की गई थी कि दोनों ही राजनीतिज्ञों के देश मतभेद के सभी सभव कारणों को मिटा देने के लिए अत्यन्त उत्सुक हैं तथा योरोप की शांति में योगदान करना चाहते हैं। देलादियर ने यद्यपि इस प्रकार के किसी दस्तावेज पर हस्ताक्षर नहीं किए थे, तदपि फ्रास में उसका भी इसी प्रकार उत्साहपूर्ण स्वागत किया गया।

आगे चलकर यह प्रकट किया गया कि हिटलर ने चेम्बरलेन को यह आश्वासन भी दिया था कि सूडेटन क्षेत्र की प्राप्ति योरोप मे उसकी क्षेत्रिक

---

१. इस समझौते को म्युनिक पैक्ट कहा जाता है। —अनुवादक

महत्त्वाकांक्षाओं में से अन्तिम महत्त्वाकांक्षा है (last of his territorial ambitions in Europe) और जर्मन लोगो के अतिरिक्त अन्य जातियों (races) के लोगों को जर्मनी मे शामिल करने की उसकी इच्छा नही है। स्वयं हिटलर ने स्पोर्ट पेलास्ट (Sport Palast) बर्लिन मे २६ सितम्बर, १६३८ को बोलते हुए कहा, "मैंने श्री चेम्बरलेन को आश्वासन दिया है और मैं अब भी इस बात पर जोर देता हूँ कि जब यह समस्या हल हो जाएगी तब योरोप में जर्मनी की और कोई क्षेत्रिक समस्या नही रह जाएगी। मुझे चेक राज्य मे और कोई रुचि नही रह जाएगी तथा मैं उसकी गारन्टी दे सकता हूँ। हम और अधिक चेक (Czech) नही चाहते।"[1]

चेकोस्लोवाक राज्य मे बहुत अधिक संकुचन (drastic reduction) हो चुका था। पूर्व में, पोलैंड ने सशस्त्र कार्रवाई (armed action) की धमकी देकर टेशेन क्षेत्र और उसकी महत्त्वपूर्ण कोयला-खदानों की मांग की थी जो पूरी कर दी गई। दक्षिण में, हगरी ने बहुत अधिक क्षेत्र के लिए दावा किया जिसमे कि दस लाख के लगभग मेग्यार (Magyars) लोग रहते थे। यह माँग भी विवशतापूर्वक पूरी कर दी गई। चेकोस्लोवाक राज्य का सदा ही अशात और असतुष्ट अग स्लोवाकिया स्वायत्त शासन की माँग करता था। तुलनात्मक दृष्टि से, वह एक पिछडा हुआ प्रदेश था और प्रशासन कार्य मुख्यत· चेक अधिकारियों के ही हाथो में था। परिणामस्वरूप ईर्ष्या बढी जिसे जर्मन दलालो ने श्रमपूर्वक प्रोत्साहित किया। स्लोवाकिया चेक प्रदेशो—जो अब अत्यधिक अस्तव्यस्त हो चुके थे—से उत्तरोत्तर (increasingly) पृथक होता गया। म्युनिक में लादी गई शर्तों के अनुसार, एक अन्तर्राष्ट्रीय आयोग—जिसमें जर्मनी के साथ ही साथ ब्रिटेन, फास, इटली और चेकोस्लोवाकिया के प्रतिनिधि होने थे—द्वारा चेक क्षेत्र से सुडेटन जिलो को पृथक् करने वाली रेखा निश्चित की जानी थी। किन्तु वास्तव में हुआ यह कि जर्मन सेना आगे बढती गई और उसने जिस पर मन

---

[1] "I have assured Mr. Chamberlain and I emphasise it now, that when this problem is solved Germany has no more territorial problems in Europe. I shall not be interested in the Czech State any more, and I can guarantee it We don't want any Czech any more."

गया, उसी पर अधिकार कर लिया जिसमें अनेक ऐसे शहरों पर अधिकार करना भी शामिल था जिनकी आबादी मुख्यतः चेक थी। चेक राज्य के लिए प्रशासन की एक काम चलाऊ इकाई (workable unit of administration) बनाने के लिए भी कोई प्रयत्न नही किया गया। इसी बीच, पोलैंड और हंगरी ने अपने दावों की पूर्ति सैनिक अधिकार (military occupation) द्वारा करने का प्रयत्न किया जिसका चेकोस्लोवाक सेना ने मुकाबिला किया। विशेषतः लम्बे और सकड़े चेकोस्लोवाक क्षेत्र के एकदम पूर्वी भाग मे स्थित रूथेनिया (Ruthenia) के पिछड़े प्रांत के विषय में विवाद था। हंगरी उसे इसलिए चाहता था कि उसके मिल जाने से उसे पोलैंड के साथ सामान्य सीमान्त मिल जाता। किंतु जर्मनी की यह इच्छा थी कि रूमानिया की सीमा तक फैला हुआ यह क्षेत्र नाममात्र के लिए स्लोवाकिया के अधीन रहे जो कि उत्तरोत्तर जर्मनी के नियन्त्रण मे आता जारहा था। इस प्रकार म्युनिक में बड़े राष्ट्रों ने जो समझौता लादा था उसने वास्तव में युद्धारम्भ (outbreak of war) को टाल दिया था किन्तु इस बात के अतिरिक्त कि तीस लाख जर्मन और स्कोडा (Skoda) स्थित विशाल शस्त्रास्त्र फैक्टरी का नियन्त्रण स्थायी रूप से जर्मनी के हाथो में रहे और किसी बात का निवटारा नही किया गया था।[1] ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस ने यह अनुभव कर कि उनकी एक बहुत बड़ी कूटनीतिक पराजय हुई, अपने पुनःशस्त्रीकरण के कार्य को तेजी से हाथ में ले लिया। जबकि एक के बाद एक चेक सरकार के प्रमुख के रूप मे उत्तराधिकारी होने वाले किंकर्त्तव्यविमूढ (embarrassed) राजनीतिज्ञ सभी

---

1 "Thus the settlement imposed by the Great Powers at Munich had indeed avoided the outbreak of war, but settled nothing, except that three million Germans, and the control of the great arms factory at Skoda, should be permanently attached to the Reich Great Britain and France, recognising that a major diplomatic defeat had been inflicted on them, took energetically in hand the task of their own rearmament; while the embarrassed statesman who succeeded one another as heads of the Czech Government expressed on all occasions their desire to confirm to German Policy"

अवसरो पर यह व्यक्त करने लगे कि वे जर्मन नीति के साथ कदम मिलना चाहते हैं।

किंतु समर्पण (submission) ही पर्याप्त नहीं था। हिटलर ने लगभग ढाई लाख उन जर्मनो की सुरक्षा के बारे में चिंता प्रकट की जो कि अभी भी चेक शासन मे रह रहे थे। मार्च १५, १९३९ को उसने राज्य के राष्ट्रपति बीनेस के उत्तराधिकारी हेचा (Hacha) को बुलाकर प्रचड सैनिक कार्रवाई (violent military action) की धमकी दे, हेचा को इस बात के लिए राजी कर लिया कि बोहेमिया और मोरेविया के पुराने प्रात जर्मनी के संरक्षण मे आजाएंगे तथा उन पर जर्मन सेना द्वारा अधिकार कर लिया जायगा। किंतु सचाई यह है कि जर्मन सेनाएं उस समय के पहले से ही सीमात पार कर रही थी और कुछ चेक नगरो पर उन्होने अधिकार भी कर लिया था। स्लोवाकिया को नाम मात्र के लिए स्वतन्त्र रहने दिया गया। किन्तु पैसठ लाख चेक जनता को एक बार फिर जर्मन शासन—जो उस शासन से बहुत भिन्न था जिसका अनुभव चेक जनता ऑस्ट्रियन साम्राज्य के अंग के रूप में कर चुकी थी—के अन्तगत ले आया गया।

युद्ध का आरम्भ
(Outbreak of War)

विजेता के रूप मे प्रेग मे प्रविष्ट होने के तुरन्त बाद ही हिटलर ने लिथुआनिया (Lithuania) की सरकार को एक अलटीमेटम देकर यह माँग की कि मेमल (Memel) और उसके आसपास का जिला उसे सौंप दिया जाये। इक्कीसवीं मार्च को उस पर अधिकार कर लिया गया और इस बाल्टिक बदरगाह का पुन॰ सैनीकरण (re-militarisation) तुरन्त ही प्रारम्भ हो गया। लगभग इसी समय रिबेनट्रॉप ने पोलैंड के राजदूत को वे अन्तिम शर्तें बताई जो जर्मनी पोलिश सरकार पर लादना चाहता था। ये शर्तें थी—डानजिग—जो विस्तुला (Vistula) का प्रवेश द्वार है—जर्मनी को पुन॰ लौटा दिया जाये तथा जर्मनी को वह क्षेत्र दिया जाये जो पूर्वी प्रशा से शेष जर्मनी को सयुक्त करता है। इस पर पोलैंड का उत्तर यह था कि वह इन आरोपित शर्तों को मानने के लिए तैयार नही है।

चूँकि यह स्पष्ट था कि हिटलर द्वारा चेम्बरलेन को स्वय दिया गया आश्वासन महत्वहीन *था, और पोलैंड के प्रति भी वे ही चालें प्रारम्भ होगई थी*

जो कि चेकोस्लोवाकिया के प्रति चली गई थी इसलिए ब्रिटिश सरकार ने अब यह घोषणा करने का निर्णायक कदम उठाया कि, "यदि ऐसी कोई कार्रवाई की गई जिससे पोलेंड की स्वतन्त्रता को स्पष्ट ही खतरा हुआ और यदि पोलिश सरकार अपनी राष्ट्रीय सेनाओ से उसका मुकाबिला करना आवश्यक समझे" तो ग्रेट ब्रिटेन अपनी शक्ति के अनुसार सभी प्रकार की सहायता पोलैंड को देगा। फ्रास पहिले से ही पोलेंड का मित्र था; किन्तु चेम्बरलेन को यह कहने का अधिकार दिया गया था कि वे फ्रास की ओर से भी यह बात कह सकते हैं।

कुछ ही दिनो के बाद, इटली ने तेजी से हमला कर अलबानियन बन्दरगाहो पर अधिकार कर लिया तथा उसका स्वामी बन बैठा। अलबानिया की स्वतन्त्रता की रक्षा करने का भार, विधि की विडम्बना से, विशेष रूप से इटली को ही सौंपा गया था। इस प्रकार आक्रमण एक नए क्षेत्र मे प्रारम्भ हो गया। ग्रेट ब्रिटेन ने अपनी नीति को यहाँ तक मोडा कि फ्रास के साथ मिलकर उसने यूनान और रूमानिया को उस प्रकार की सहायता की गारन्टी दी जैसी पोलैंड को दी गई थी। पोलैंड ने भी अपनी महत्ता का अनुभव कर यह गारन्टी पारस्परिक आधार पर दी थी और आक्रमण की स्थिति में फ्रास तथा ग्रेट ब्रिटेन की सहायता करने का वचन दिया था। यूगोस्लाविया, जिससे सभवतः यूनान स कम खतरा नही था, ने भी यह घोषणा की कि उसे सहायता की आवश्यकता नही है। जर्मनी और इटली दोनो ही के साथ उसके व्यापारिक सम्बन्ध बढ रहे थे और चेकोस्लोवाकिया का उदाहरण ध्यान मे रखते हुए, इस प्रकार की गारन्टी को बहुत अधिक सरक्षण मानना सहज नही था। जो भी हो यूनान तथा उसके बदरगाहो मे, ब्रिटेन की सहायता से पहुँचा जा सकता था। रूमानिया के पास रूस के बेसारेबिया (Bessarabia) क्षेत्र और बलगेरिया के डोबरूजा (Dobrudja) क्षेत्र तथा ट्रासिलवानिया का हगेरियन क्षेत्र था, इस कारण वह सहायता का कोई भी प्रस्ताव स्वीकार कर सकता था। इसके अतिरिक्त, इस समय ब्रिटिश सरकार को टर्की से एक सधि कर सकने में सफलता मिल गई जिसके अनुसार संधिकर्त्ताओ में से प्रत्येक ने यह वचन दिया कि यदि भूमध्यसागर क्षेत्र मे उनके हितों को किसी प्रकार का खतरा उपस्थित हुआ, तो वे एक दूसरे की सहायता करेंगे। इसी प्रकार का एक समझौता टर्की और फ्रास के बीच उस समय किया गया था जब अलेक्जाड्रिटा के सेन्डजाक (Sandjak of Alexandretta) क्षेत्र से सम्बन्धित टर्की के दावे पूरी तरह संतुष्ट किए जा चुके थे।

ग्रेट ब्रिटेन में इन तैयारियों में और भी गति उस समय आगई जबकि २० अप्रैल को एक विधेयक (Bill) प्रस्तुत किया गया जिसके अनुसार रण-सेवा योग्य आयु (military age) के सभी आदमियों के लिए सैनिक प्रशिक्षण लेना अनिवार्य किया जाना था। उसके स्वीकार हो जाने पर, उन्नीस और बीस वर्ष के आदमियों को तुरन्त ही सेना में भरती होने के लिए आमन्त्रित किया गया। योरोपीय ढग (Continental model) पर शातिकाल मे इस अनिवार्य-भर्ती सेना (conscript army) के सगठन को ग्रेट ब्रिटेन के इस निश्चय का, कि और अधिक आक्रमण को रोकने के लिए अपनी पूरी शक्ति का उपयोग किया जाए, सबसे सबल प्रमाण माना गया था। जर्मन सरकार ने ब्रिटेन की इन सारी कार्रवाइयो को इस बात का प्रमाण माना कि, "ब्रिटिश लोग ब्रिटेन द्वारा युद्ध आरम्भ करने को अब असभव नही मानते बल्कि इसके विपरीत उसे ब्रिटिश नीति की प्रमुख समस्या (capital problem) मानते हैं।" ("that the British no longer regard war by Britain as an impossibility, but on the contrary as a capital problem of British policy")। अप्रैल की सत्ताइसवी तारीख को उसने १६३५ के आग्ल-जर्मन नौसैनिक समझौते (Anglo-German naval agreement of 1935) को मानने से भी इन्कार कर दिया जिसके अनुसार जर्मनी ने अपनी नौसेना ब्रिटेन की नौसेना के पैंतीस प्रतिशत तक ही सीमित रखना स्वीकार कर लिया था। हिटलर ने यह शिकायत की कि ग्रेट ब्रिटेन उस समझौते की अवहेलना कर रहा है जिस पर कि स्वय उसने और चेम्बरलेन ने म्युनिक सम्मेलन के बाद हस्ताक्षर किए थे तथा जो "दोनो ही देशो की जनता की इस इच्छा का प्रतीक (symbol) था कि वे एक दूसरे के विरुद्ध युद्ध नही करेंगे।" तथा ब्रिटेन अब जर्मनी को घेरने की नीति पर पुनः चलने लगा है।

वास्तव मे इस नीति का जोरो से अनुसरण किया जारहा था किन्तु इसके लिए पर्याप्त कारण था क्योकि यह तो स्पष्ट था ही कि यदि जर्मनी ने पोलैंड पर आक्रमण किया तो फ्रास और ब्रिटेन दोनो ही उसे किसी भी प्रकार की सीधी सहायता नही दे सकेंगे। उनके द्वारा दी गई गारन्टी का सभवत. रोधक मूल्य (deterrent value) ही हो सकता था। यह बात भी इतनी ही स्पष्ट थी कि यदि सोवियत सघ दो पश्चिमी प्रजातन्त्रो के साथ सहयोग करता, तो

विशाल वायुसेना वाली एक विशाल सेना आक्रमणकर्ता (aggressor) के अत्यन्त समीप ही जमा की जा सकती थी। फ्रांस अब भी सोवियत संघ का मित्र था, तथा मार्च के बाद से, संयुक्त कार्रवाई संबंधी वार्ताएँ मास्को में चल ही रही थीं, और यह विश्वास के साथ कहा जाता था कि उनका परिणाम अनुकूल (favourable) निकलेगा, विशेषकर उस स्थिति में जब यह घोषणा की गई थी कि वार्ताओं में भाग लेने के लिए फ्रांस और ग्रेट ब्रिटेन के सैनिक प्रतिनिधि भेजे गए हैं। किन्तु वार्ताओं में आकुलताकारी विलंब (perplexing delay) हुआ तथा यह ज्ञात हो सका कि सोवियत संघ तब तक कोई भी समझौता करने के लिए तैयार नहीं है जब तक कि बाल्टिक राज्यों, लिथुआनिया, लेटविया (Latvia), इस्टोनिया और फिनलैंड संबंधी सोवियत गारन्टी भी उसमें शामिल न हो। जो भी हो, इन देशों ने यह घोषणा की कि उन्हें ऐसी किसी गारन्टी की आवश्यकता नहीं है जो उनकी स्वतंत्रता में किसी प्रकार की कमी करती हो। उन्होंने जर्मनी के साथ अनाक्रमण समझौते (non-aggression pacts) करने का प्रस्ताव रखा और किया भी ऐसा ही। पोलैंड ने भी अपने क्षेत्र में किन्हीं भी परिस्थितियों में, सोवियत सेना को प्रविष्ट होने देने से इन्कार कर दिया। इतना सब कुछ होते हुए भी, चूँकि हिटलर की नीति का प्रमुख उद्देश्य, सोवियत संघ जिसका भी पक्ष ले, उसका प्रचंड विरोध करना था, अतएव यह आशा करना स्वाभाविक ही था कि सोवियत संघ ऐसी किसी भी कार्रवाई में सहायता पहुँचाएगा जो कि एकसंघात्मक जर्मन गणतंत्र (Third Reich)* की बढ़ती हुई शक्ति को रोकने के लिए की जाये। इसी समय एकाएक यह ज्ञात हुआ कि जर्मनी और रूस के बीच एक अनाक्रमण समझौता करने के लिए रिबेनट्रॉप मास्को आ पहुँचा है। इस प्रकार के समझौते पर २३ अगस्त को हस्ताक्षर होगये। इस समझौते का केवल यही फल नहीं हुआ कि पूर्व में जर्मनी का जो कुछ भी विरोध होता वह पोलैंड को अपने ही साधनों के भरोसे करना

---

*First Reich—Germany as an Empire.
Second Reich—Federal republic
Third Reich—Unitary republic—Tr.

पड़ता अपितु इसका परिणाम यह भी हुआ कि उसे रसद (supply) का एक ऐसा साधन मिल गया जिससे किसी भी समुद्रीय नाकेबदी (maritime blockade) का खतरा बहुत कम हो गया।

इस घोषणा के बाद, ग्रेट ब्रिटेन पोलैंड को दिए गए अपने वचन वापस ले लेगा—यह आशा इतनी प्रबल प्रतीत होती थी कि चेम्बरलेन ने जर्मन प्रधानमंत्री को सचेत करते हुए स्वयं लिखा कि "यदि परिस्थिति उत्पन्न हुई, तो ब्रिटिश सरकार बिना किसी विलंब के अपनी पूरी ताकत का उपयोग करेगी।"[1] चेम्बरलेन ने यह यह भी लिखा कि उनके मतानुसार (in his judgment) जर्मनी और पोलैंड के बीच ऐसा कोई प्रश्न ही विवादास्पद (at issue) नहीं है जो ताकत का प्रयोग किए बिना हल नहीं किया जा सकता हो तथा नहीं किया जाना चाहिये ("could not and should not be resolved without the use of force")।

जर्मनी और पोलैंड के बीच तत्कालीन विवाद डानजिग और तथाकथित—गलियारे (corridor) से सबंधित था जो वर्सेलीज की संधि द्वारा जर्मनी से पृथक् कर दिए गये थे। शेष जर्मनी से पूर्वी प्रशा के विभाजन का भी हमेशा विरोध किया जाता था। इसके विपरीत स्वयं हिटलर ने भी प्राय: यह स्वीकार किया था कि पोलैंड को समुद्री मार्ग की आवश्यकता है। किन्तु पोलैंड ने मछली व्यवसाय प्रधान ग्राम गिडनिया (fishing village of Gdynia) में, अपने ही क्षेत्र में, एक नए बंदरगाह का निर्माण कर विस्तुला (Vistula) में व्यापार के लिए एकमात्र बंदरगाह के रूप में डानजिग के एकाधिकार को ही न केवल समाप्त कर दिया था अपितु उसकी महत्ता में भी वास्तव में कमी कर दी थी। व्यापारिक प्रतिद्वन्द्विता और राजनैतिक आदर्शवाद इस प्रश्न के साथ जुड़ गये। किन्तु जर्मनी में डानजिग को शामिल करने की इच्छा उस पर अधिकार करने वाले राष्ट्र की यह महत्त्वाकांक्षा सूचित करती थी कि वह राष्ट्र वहाँ पर सैन्य शक्ति का ऐसा केन्द्र स्थापित करना चाहता था कि वह पोलैंड का समुद्र से संबंध तोड़ सके। गलियारे के आरपार एक क्षेत्रातीत कटिबंध (extra-

1. "If the case should arise, the British Government would employ without delay all the forces at their command".

territorial belt) के लिए किए गए एक और दावे को पोलैंड ने अस्वीकार कर दिया क्योंकि इसे उसने जर्मनी द्वारा पोलैंड का और अधिक क्षेत्र जर्मनी में मिलाये जाने संबंधी प्रथम कदम समझा। इन कारणों से पोल लोगों ने आत्म-समर्पण करने से इन्कार कर दिया। अब जर्मनी द्वारा तीन पृथक् मोर्चों पर पोलिश क्षेत्र पर एक साथ आक्रमण किया जाना था। यह आक्रमण पहिली सितंबर को हुआ। तीन सितम्बर को ग्रेट ब्रिटेन ने युद्ध की घोषणा कर दी और, उसके कुछ ही घंटों बाद, फ्रांस ने भी रणभेरी फूंक दी।

परिशिष्ट

(Appendices)

१. मुनरो सिद्धांत
(Monroe Doctrine)

[अमरीकी राष्ट्रपति मुनरो द्वारा २ दिसम्बर १८२३ को की गई घोषणा से उद्धरण]

......*यह अवसर इस सिद्धात—जिसमें सयुक्त राज्य अमेरिका के अधि*-कार और हित (rights and interests) सन्निहित (involved) हैं—की घोषणा करने के लिए उपयुक्त है कि अमरीकी महाद्वीप, जिसने अपनी स्थिति मुक्त एव स्वतत्र (free and independent) बनाली है तथा उसे इस प्रकार बनाए रखा है, को कोई भी योरोपीय राष्ट्र भविष्य में उपनिवेशीकरण के उपयुक्त न समझे।

......*जब हमारे अधिकारों पर आघात किया जाता है या जब उन्हे गभीर* खतरा उपस्थित हो जाता है केवल तब ही हम क्षति के प्रति रोष प्रकट करते हैं या अपनी प्रतिरक्षा के लिए तैयारी करते हैं। इस गोलार्ध मे जो भी गति-विधियाँ की जाएँ, उनसे हमारा आवश्यक रूप से निकटतर सबध है। इसके जो कारण हैं वे सभी विज्ञ (enlightened) और निष्पक्ष पर्यवेक्षको (observers) को स्पष्ट होने चाहिए। मित्र राष्ट्रो (allied powers)* की राजनैतिक शासन-प्रणाली इस बारे मे अमेरिका की शासन-प्रणाली से आवश्यक रूप से भिन्न है। यह अन्तर उनकी सबधित सरकारो में विभिन्नता के कारण है। अपनी इस प्रणाली की प्रतिरक्षा के लिए, जो जन धन (blood and treasure) की इतनी क्षति उठाकर प्राप्त की गई है तथा जो कि उसके अपने विज्ञतम (most enlightened) नागरिको की बुद्धिमत्ता से परिपक्व (matured) हुई और जिसके अधीन हमने अपूर्व सुख (unexampled felicity) का उप-भोग किया है, यह सारा राष्ट्र कृत-सकल्प है। अत. अमेरिका और उक्त राष्ट्रो के बीच मित्रतापूर्ण संबधो के कारण तथा स्पष्ट भाषण (*candour*) की भावना से प्रेरित होकर हम यह बता देना चाहते हैं कि यदि उन्होंने अपनी प्रणाली को

*अर्थात् आस्ट्रिया, फ्रास, प्रशा और रूस।

इस गोलार्ध में भी फैलाने का कोई प्रयत्न किया, तो उनके इस प्रयत्न को हमारी शांति और सुरक्षा के लिए खतरा समझा जाएगा। किसी भी योरोपीय राष्ट्र के वर्तमान उपनिवेशों अथवा अधीन क्षेत्रों में हमने न तो हस्तक्षेप किया ही है और न करेंगे ही। किन्तु जिन सरकारों ने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी है, उसे बनाए रखा है, तथा उनकी उस स्वतंत्रता को हमने बहुत सोच विचार और न्याय्य सिद्धान्तों पर मान्यता दे दी है, उन पर अत्याचारपूर्ण शासन करने या अन्य किसी प्रकार से उनके भाग्य को नियन्त्रित करने के उद्देश्य से यदि किसी योरोपीय राष्ट्र द्वारा हस्तक्षेप किया गया, तो हम उसे संयुक्त-राज्य अमेरिका के प्रति अमित्रतापूर्ण रुख के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं समझ सकेंगे।

———

२. विलसन के चौदह सूत्र
(Fourteen Points)

[जनवरी ८, १६१८ को अमरीकी कांग्रेस (Congress) मे राष्ट्रपति विलसन द्वारा दिए गए अभिभाषण (Address) से उद्धरण]

(१) प्रकट रूप से किए गए शांति के इन प्रकट अनुबन्धनो (covenants) के बाद, किसी भी प्रकार के गुप्त अन्तर्राष्ट्रीय समझौते नहीं किए जाएंगे और कूटनीतिक गतिविधि सदैव ही स्पष्ट रूप से तथा लोगो को अन्धकार में रखे बिना ही (in the public view) की जाएगी ।

(२) जब तक कि अन्तर्राष्ट्रीय अनुबन्धनो को लागू करने के लिए सामुद्रिक आवागमन अन्तर्राष्ट्रीय कार्रवाई द्वारा आंशिक रूप म या पूरी तरह से बन्द नहीं कर दिया जाए, तब तक शांति और युद्ध काल दोनो ही में समान रूप से क्षेत्रिक सागर (territorial waters) से बाहर भी सामुद्रिक आवागमन (navigation) की पूर्ण स्वतन्त्रता रहेगी ।

(३) शांति स्वीकार करने और उसे बनाए रखने के लिए सगठित होने वाल राष्ट्रो के लिए, यथासंभव, सभी आर्थिक रुकावटें दूर की जाएंगी तथा राष्ट्रों मे परस्पर व्यापार के लिए समान अवसर प्राप्त कराने की परिस्थितियाँ निर्मित की जाएंगी ।

(४) इस बात की पर्याप्त गारन्टियाँ ली और दी जाएंगी कि गृह-सुरक्षा (domestic safety) से सगति रखते हुए, राष्ट्रो के शस्त्रास्त्र कम से कम कर दिए जाएँ ।

(५) सभी औपनिवेशिक दावो का निर्वाध, उदार और पूर्ण निष्पक्ष समायोजन कर लिया जाएगा जिसका आधार इस सिद्धान्त का कठोर पालन होगा कि सार्वभौमत्व के ऐसे सभी प्रश्नो का निर्णय करते समय सम्बन्धित जनता के हितो का भी उतना ही ध्यान रखा जाएगा जितना उस सरकार के न्याय्य (equitable) दावों का जिसका कि हक (title) निश्चित किया जाना है ।

(६) समस्त रूसी क्षेत्र से सेनाएं हटा ली जाएं और रूस से सम्बन्धित सभी प्रश्नों का इस प्रकार समाधान निकाला जाए कि रूस को अपने राजनैतिक विकास और अपनी राष्ट्रीय नीति के स्वतन्त्र निर्धारण के लिए बाधारहित तथा अड़चनहीन (unhampered and unembarrassed) अवसर प्राप्त कराने तथा उसे यह आश्वासन दिलाने—आश्वासन ही क्या, वह जैसी सहायता स्वयं चाहे या उसे जैसी सहायता की आवश्यकता हो वैसी सहायता उपलब्ध कराने —कि उसकी अपनी संस्थाओं के होते हुए भी (under institutions of her own choosing) स्वतन्त्र राष्ट्रों के समाज में उसका हार्दिक स्वागत (sincere welcome) होगा, मे विश्व के अन्य राष्ट्रों का सर्वाधिक और उन्मुक्त (free and best) सहयोग प्राप्त हो सके। आगामी महीनों में रूस के साथ अन्य देशों द्वारा जो व्यवहार किया जाएगा, वह उनकी सद्भावना (good-will), उनके अपने हितों की तुलना में उसकी आवश्यकताओं के प्रति समझदारी तथा उनकी बुद्धिमत्ता और स्वार्थहीन सहानुभूति की अग्नि परीक्षा (acid test) होगा।

(७) सारी दुनिया इस बात पर सहमत होगी कि बेल्जियम से सेनाएं हटा ली जानी चाहिए तथा उसे पुनः अपना पूर्व अस्तित्व प्राप्त हो जाना चाहिए किन्तु उसके उस सार्वभौमत्व मे कमी करने का कोई प्रयत्न नहीं किया जाना चाहिए जिसका उपभोग वह अन्य स्वतन्त्र राष्ट्रों के साथ ही साथ कर रहा है। इस कार्य के अतिरिक्त और कोई भी कार्य राष्ट्रों में उन विधियों (laws) के प्रति विश्वास पैदा नहीं कर सकेगा जो स्वयं उन्होंने एक दूसरे के सम्बन्धों के नियमन (government) के लिए निश्चित किए हैं। इस उपचारक कार्य (healing act) के बिना अन्तर्राष्ट्रीय विधि का सारा ढांचा और वैधता सदैव ही अधूरे रहेंगे।

(८) सारा फ्रांसीसी क्षेत्र स्वतन्त्र कर दिया जाए और आक्रमित भाग उसे पुन. लौटा दिए जाएं तथा आल्सेक लॉरेन (Alsace Lorraine) के संबंध में प्रशा ने १८७१ में फ्रांस को जो क्षति पहुँचाई है तथा जिसने लगभग पचास वर्षों तक विश्व शांति को अनिश्चित बना रखा है, उसकी पूर्ति की जाए ताकि सभी के हित में शांति को एक बार संकटरहित (secure) बनाया जा सके।

(९) इटली के सीमान्तों का समायोजन (adjustment) राष्ट्रीयता (nationality) के स्पष्ट मान्य आधार पर पुनः किया जाए।

(१०) ऑस्ट्रिया-हंगरी की जनता को राष्ट्रों में जिसका स्थान हम सुरक्षित और निश्चित देखना चाहते हैं, स्वायत्तशासिक विकास का सर्वाधिक निबाध (freest) अवसर दिया जाना चाहिए।

(११) रूमानिया, सर्बिया (Serbia) और मॉन्टेनेग्रो (Montenegro) खाली कर दिए जाएँ, अधिकृत क्षेत्र वापस लौटा दिए जाएँ; सर्बिया को निर्बाध तथा सुरक्षित समुद्री मार्ग दिया जाए; तथा विभिन्न बालकन राज्यो के पारस्परिक सम्बन्ध निष्ठा और राष्ट्रीयता (allegiance and nationality) के इतिहास सिद्ध (historically established) आधार पर मित्रतापूर्ण मन्त्रणा (friendly counsel) द्वारा निश्चित किए जाएँ एव विभिन्न बालकन राज्यो की राजनैतिक तथा आर्थिक स्वतन्त्रता और क्षेत्रिक अखण्डता (territorial integrity) की अन्तर्राष्ट्रीय गारन्टियो सम्बन्धी समझौते किए जाएँ।

(१२) वर्तमान ऑटोमान साम्राज्य (Ottoman Empire) के तुर्की भागो को सुरक्षित सार्वभौमत्व (secure sovereignty) का आश्वासन दिया जाए किन्तु इस समय जो अन्य राष्ट्र-जातियाँ (nationalities) तुर्की शासन मे रह रही हैं उन्हें बिलकुल सुरक्षापूर्ण जीवन तथा स्वायत्तशासिक विकास के हस्तक्षेप हीन अवसर (unmolested opportunity) का आश्वासन दिया जाए तथा डारडेनेलोज (Dardanelles) को अन्तर्राष्ट्रीय गारटियो के अनुसार सभी राष्ट्रो के व्यापार और जहाजो के लिए निर्बाध मार्ग के रूप मे स्थायी रूप से खोल दिया जाए।

(१३) एक स्वतत्र पोलिश राज्य की स्थापना की जाए जिसमे वे क्षेत्र शामिल किए जाएँ जिनमें निर्विवाद रूप से पोल आबादी हो। इस राज्य को सुरक्षित और निर्बाध समुद्री मार्ग दिया जाए तथा अन्तर्राष्ट्रीय समझौते द्वारा उसकी आर्थिक और राजनैतिक स्वतत्रता तथा क्षेत्रिक अखडता की गारन्टी दी जाए।

(१४) छोटे और बडे दोनो ही प्रकार के राष्ट्रो की राजनैतिक स्वतन्त्रता और क्षेत्रिक अखडता की पारस्परिक गारटियाँ समान रूप से प्राप्त हो सकें, इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए कुछ विशिष्ट अनुबन्धो (specific covenants) के अनुसार राष्ट्रो के एक विशाल सगठन का निर्माण किया जाना चाहिए।

———

३- राष्ट्रसंघ (League of Nations) के अनुबंधपत्र से उद्धरण (extracts)

[इसमे वे सभी धाराएँ शामिल हैं जिनका संदर्भ इस पुस्तक मे दिया गया है]

अनुच्छेद १

...... और यदि सभा का दो-तिहाई बहुमत उसे सदस्य बनाना स्वीकार करे, तो ऐसा कोई भी पूर्णतः स्वशासी (fully self-governing) राज्य, अधिदेश या उपनिवेश जिसका उल्लेख परिशिष्ट (Annex) में न किया गया हो, राष्ट्रसंघ का सदस्य बन सकता है किन्तु शर्त यह है कि उसे अन्तर्राष्ट्रीय कर्त्तव्यों का पालन करने की अपनी सच्ची इच्छा की प्रभावकारी गारंटियाँ देनी पड़ेंगी तथा उसकी भूसेना, नौसेना और वायुसेना तथा शस्त्रास्त्र संबंधी जो विनिमय (regulations) राष्ट्रसंघ द्वारा निश्चित किए जाएँगे, उन्हें वह स्वीकार करेगा।

अनुच्छेद ४

.... यदि राष्ट्रसंघ का कोई सदस्य परिषद् का सदस्य न हो और यदि उसके हितो को विशेष रूप से प्रभावित करने वाले विषयों पर परिषद् की किसी बैठक मे विचार किया जाना हो तो उसे परिषद् की उस बैठक में सदस्य की हैसियत से शामिल होने के लिए, एक प्रतिनिधि भेजने के लिए आमंत्रित किया जायेगा।

अनुच्छेद ५

जब तक कि इस अनुबंधपत्र में अथवा वर्तमान संधि की शर्तों के द्वारा स्पष्ट रूप से अन्यथा उपबंधित (otherwise expressly provided) न किया गया हो, सभा या परिषद् की किसी भी बैठक में निर्णय के लिए बैठक मे उपस्थित राष्ट्रसंघ के सभी सदस्यो की सहमति (agreement) आवश्यक होगी।

सभा या परिषद् की बैठको की प्रक्रिया (procedure) संबंधी सभी मामलों, जिनमें विशेष मामलो की जाँच के लिए समितियो की नियुक्ति भी शामिल

होगी, का विनियमन सभा या परिषद् द्वारा किया जाएगा तथा उनसे संबंधित निर्णय बैठक में उपस्थित राष्ट्रसंघ के सदस्यों के बहुमत द्वारा किया जा सकेगा।

अनुच्छेद ८

राष्ट्रसंघ के सदस्यों की यह मान्यता है कि शांति बनाए रखने के लिए राष्ट्रीय सुरक्षा से संगति रखते हुए, राष्ट्रीय शस्त्रास्त्रों का कम से कम किया जाना तथा सामूहिक कार्रवाई (common action) द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय कर्त्तव्यों का पालन किया जाना आवश्यक है।

अनुच्छेद १०

राष्ट्रसंघ के सदस्य संघ के सभी सदस्यों की क्षेत्रिक अखंडता (territorial integrity) तथा वर्तमान राजनैतिक स्वतन्त्रता का स्वयं सम्मान करने तथा बाह्य आक्रमण से रक्षा करने का वचन देते हैं। ऐसे किसी आक्रमण के समय या ऐसे किसी आक्रमण की धमकी या खतरे के समय, परिषद् यह परामर्श देगी कि किन उपायों द्वारा यह कर्त्तव्य पूरा किया जा सकता है।

अनुच्छेद ११

कोई भी युद्ध अथवा युद्ध की धमकी, चाहे उसका प्रभाव राष्ट्रसंघ के किसी भी सदस्य पर तत्काल ही पड़ता हो अथवा न पड़ता हो, इसके द्वारा (hereby) सारे राष्ट्रसंघ से सम्बन्धित घोषित किए जाते हैं तथा राष्ट्रसंघ ऐसी कोई भी कार्रवाई कर सकेगा जो कि राष्ट्रों की शांति बनाए रखने के लिए उचित और प्रभावपूर्ण समझी जाए। यदि ऐसा कोई संकट-काल (emergency) उपस्थित हुआ, तो राष्ट्रसंघ के किसी भी सदस्य के अनुरोध पर महासचिव (Secretary-General) तुरन्त ही परिषद् की बैठक बुलाएगा।

राष्ट्रसंघ के हर सदस्य का यह भी मित्रतापूर्ण अधिकार (friendly right) घोषित किया जाता है कि वह सभा या परिषद् के ध्यान में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर प्रभाव डालने वाली ऐसी कोई भी परिस्थिति ला सकेगा जिससे कि अन्तर्राष्ट्रीय शांति भंग होने या राष्ट्रों के बीच सद्भावना—जिस पर कि शांति निर्भर करती है—बिगड़ने की आशंका हो।

अनुच्छेद १२

राष्ट्रसंघ के सदस्य इस बात पर सहमत हैं कि यदि उनके बीच कोई

ऐसा विवाद उठ खडा हो जिसका परिणाम विग्रह (rupture) हो सकता हो तो वे उस मामले के सम्बन्ध में पचनिर्णय कराएंगे या न्यायालय में उसका निबटारा कराएंगे या जांच (inquiry) के लिए परिषद् के पास भेजेंगे और वे इस बात पर भी सहमत हैं कि वे तब तक युद्ध का आश्रय नही लेंगे, जब तक कि पचों के फैसले या न्यायालय के निर्णय या परिषद् के प्रतिवेदन को तीन माह न बीत गए हो।

अनुच्छेद १४

स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना के लिए परिषद् योजनाएं बनाकर राष्ट्रसघ के सदस्यों के समक्ष उनकी स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करेगी। यह न्यायालय अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप के ऐसे किसी भी विवाद को सुन सकेगा और उस पर निर्णय दे सकेगा जो कि विवाद से सबधित पक्ष उसके सामने प्रस्तुत करें। यदि परिषद् या सभा कोई प्रश्न या विवाद उसके पास भेजे, तो न्यायालय अपनी परामर्शपूर्ण राय (advisory opinion) भी दे सकेगा।

अनुच्छेद १५

यदि राष्ट्रसघ के सदस्यों के बीच ऐसा कोई विवाद उठ खडा हो, जिसका परिणाम सभवतः विग्रह हो सकता हो और यदि उसे अनुच्छेद १३ के अनुसार पचनिर्णय या न्यायालय द्वारा निबटारे के लिए प्रस्तुत नही किया गया हो तो राष्ट्रसघ के सदस्य यह समझौता करते हैं कि वे उस मामले को परिषद् के सामने प्रस्तुत करेंगे। विवाद से सबधित कोई भी पक्ष महासचिव को विवाद विद्यमान होने की सूचना देकर इस प्रकार के मामले को प्रस्तुत कर सकता है। महासचिव उस विवाद की पूरी जाँच और उस पर विचार के लिए सभी आवश्यक प्रबन्ध करेगा.......

परिषद् विवाद का निबटारा कराने का प्रयत्न करेगी और यदि इस प्रकार के प्रयत्नो में उसे सफलता मिली, तो एक वक्तव्य प्रकाशित किया जाएगा जिसमें विवाद सम्बन्धी वे तथ्य और स्पष्टीकरण तथा समझौते की वे शर्तें दी जाएंगी जिन्हें प्रकाशित करना परिषद् उचित समझे।

यदि विवाद का इस प्रकार निबटारा न हो सके, तो परिषद् या तो निर्विरोध मत से या बहुमत द्वारा एक प्रतिवेदन तैयार कर प्रकाशित करेगी जिसमे विवाद सम्बन्धी तथ्यो और उन सिफारिशो का उल्लेख किया जाएगा जो कि सम्बन्धित

विवाद के सबध में न्याय्य और उचित (just and proper) समझ कर की जाए.......

यदि विवाद से सम्बन्धित एक या अधिक पक्षों के प्रतिनिधियों के अतिरिक्त परिषद् के अन्य सदस्य, किसी प्रतिवेदन पर एकमत हो जाएं (unanimously agree to), तो राष्ट्रसघ के सदस्य यह समझौता करते हैं कि वे विवाद से सम्बन्धित उस पक्ष के विरुद्ध युद्ध का आश्रय नहीं लेंगे जो कि प्रतिवेदन में की गई सिफारिशों का पालन करे।

यदि परिषद् ऐसा प्रतिवेदन तैयार करने में असफल रहे जिस पर विवाद से सम्बन्धित एक या अधिक पक्ष के प्रतिनिधियों को छोडकर उसके सदस्य एकमत हो सकें, तो राष्ट्रसघ के सदस्यों का यह अधिकार सुरक्षित रहेगा कि वे अधिकार और न्याय (right and justice) बनाए रखने के लिए, जो कार्रवाई करना वे आवश्यक समझें, उसे वे करें।

यदि विवाद से सम्बन्धित किसी पक्ष द्वारा यह दावा किया जाए तथा यदि परिषद् यह पाए कि विवाद ऐसे मामले से सम्बन्धित है जो कि अन्तर्राष्ट्रीय विधि (law) के अनुसार उस पक्ष के एक दम घरेलू क्षेत्राधिकार (domestic jurisdiction) में है, तो परिषद् इस आशय का प्रतिवेदन देगी तथा उसके निबटारे के बारे में कोई सिफारिश नहीं करेगी।

इस अनुच्छेद के अधीन किसी भी स्थिति में परिषद् विवाद को सभा में भेज सकती है। यदि विवाद से सम्बन्धित कोई भी पक्ष अनुरोध करे, तो विवाद इस प्रकार सभा में भेजा जाएगा किन्तु शर्त यह है कि ऐसा अनुरोध परिषद् के *समक्ष विवाद प्रस्तुत किए जाने के चौदह दिनों के भीतर किया जाना चाहिए।*

अनुच्छेद १६

यदि राष्ट्रसघ का कोई सदस्य अनुच्छेद १२, १३, या १५ के अधीन अपने अनुबन्धनों (covenants) की अवहेलना कर युद्ध का आश्रय ले, तो वह स्वतः ही (*ipso facto*) राष्ट्रसघ के सभी सदस्यों के विरुद्ध युद्ध करने वाला समझा जाएगा। राष्ट्रसघ के सदस्य इसके द्वारा यह वचन देते हैं कि वे तुरन्त ही उससे सभी प्रकार के वाणिज्यिक अथवा आर्थिक सम्बन्ध तोड लेंगे, अनुबन्धपत्र की अवहेलना करने वाले राज्य के राष्ट्रवासियों और अपने राष्ट्रवासियों के बीच सभी प्रकार का व्यवहार निषिद्ध कर देंगे, तथा अनुबन्धपत्र की अवहेलना करने वाले

राज्य के राष्ट्रवासियो तथा अन्य किसी भी राज्य के राष्ट्रवासियों के बीच सभी प्रकार के आर्थिक, वाणिज्यिक और व्यक्तिगत (personal) व्यवहार को रोकेंगे चाहे वह राज्य राष्ट्रसघ का सदस्य हो अथवा न हो।

ऐसी स्थिति में परिषद् का यह कर्त्तव्य होगा कि वह सबधित विभिन्न सरकारो को यह सिफारिश करे कि राष्ट्रसघ के अनुबन्धनो (Covenants of the League) की रक्षा के लिए उपयोग में लाई जाने वाली सशस्त्र सेना के लिए राष्ट्रसघ के सदस्य कितनी संख्या में समर्थ थलसेना, नौसेना या वायुसेना पृथक् रूप से दें।

अनुच्छेद १७

यदि राष्ट्रसघ के किसी सदस्य और ऐसे किसी या किन्ही राज्य या राज्यों के बीच विवाद हो, जो कि राष्ट्रसघ का/के सदस्य न हो/हों, तो ऐसे राज्य अथवा राज्यो से सबधित विवाद के प्रयोजनो के लिए, राष्ट्रसघ की सदस्यता के कर्त्तव्यो को ऐसी शर्तों पर स्वीकार करने का अनुरोध किया जा सकता है, जैसी कि परिषद् न्याय्य समझे · ··

अनुच्छेद १९

समय समय पर सभा राष्ट्रसघ के सदस्यो को विश्व शान्ति को जिन अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियो के जारी रहने से खतरा हो सकता है उन पर विचार करने तथा ऐसी सधियों पर पुनर्विचार करने की सलाह दे सकती है जो कि इस समय अप्रवर्तनशील (inapplicable) हो गई हो।

अनुच्छेद २१

इस अनुच्छेद की किसी भी बात का किन्ही ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों—जैसे पच निर्णय-सधियों (treaties of arbitration) तथा मनरो सिद्धान्त के समान प्रादेशिक समझौतों (regional understandings) की वैधता पर कोई प्रभाव नही पडेगा जो कि शात बनाए रखने के लिए किए गए हो।

अनुच्छेद २२

उन उपनिवेशो और क्षेत्रो पर, जो कि पिछले युद्ध के परिणामस्वरूप उन राज्यों के सार्वभौमत्व में नही रह गए है, जिनका पहिले उन पर शासन था तथा जिनमें ऐसे लोग बसते हैं, जो कि आधुनिक विश्व की कठिन परिस्थितियों में अपने पैरों पर खडे होने योग्य नहीं हैं, यह सिद्धान्त लागू किया जाए कि ऐसे

लोगो का कल्याण और विकास (well-being and development) सभ्य देशो का पवित्र कर्त्तव्य (sacred trust of civilisation) है तथा इस कर्त्तव्य के निश्चित रूप से पालन के लिए व्यवस्था इसी मनुबधपत्र में कर दी जाए।

इस सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप देने का सर्वोत्तम उपाय यह है कि ऐसे लोगो का संरक्षण उन समुन्नत राष्ट्रो को सौंपा जाए जो अपने साधनों, अपने अनुभव या अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण, इस जिम्मेदारी को सब से अच्छी तरह निभा सकते हो तथा जो यह जिम्मेदारी अपने ऊपर लेने के लिए प्रस्तुत हो तथा इस सरक्षण अधिकार का उपयोग वे राष्ट्रसघ की ओर से सरक्षक-राज्य के रूप में करें।

सम्बन्धित जनता के विकास की अवस्था, उनके क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति, आर्थिक हालत और इसी प्रकार की अन्य परिस्थितियो के कारण सरक्षित राज्यों का स्वरूप विभिन्न होगा।

पहिले तुर्की साम्राज्य में शामिल कुछ समुदाय (certain communities) विकास की ऐसी अवस्था तक पहुँच गए है कि उनके अस्तित्व अस्थायी रूप से स्वतन्त्र राष्ट्रो के रूप में माना जा सकता है किन्तु कोई एक सरक्षक-राज्य उन्हें तब तक प्रशासकीय सलाह (administrative advice) और सहायता देता रहेगा, जब तक कि वे अपने पैरो पर स्वय खडे न हो जाएँ। सरक्षक-राज्य का चुनाव करते समय इन समुदायो की इच्छाओ पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए।

अन्य लोग—विशेषकर मध्य अफ्रीका क—ऐसी अवस्था मे हैं कि सरक्षक-राज्य की जिम्मेदारी उनके क्षेत्र मे ऐसी परिस्थितियो मे प्रशासन करना होना चाहिए कि उन लोगो को विश्वास और धर्म (conscience and religion) की स्वतन्त्रता—जिस पर केवल सार्वजनिक व्यवस्था और नैतिकता (public order and morals) बनाए रखने का ही बधन हो (subject only to) —की गारन्टी प्राप्त हो सके तथा दुष्कर्मों (abuses) जैसे दास व्यापार, शस्त्रास्त्र व्यापार तथा शराब के व्यापार का निषेध किया जा सके एव किले-बदी अथवा थलसैनिक या नौसैनिक अड्डे बनाना और पुलिस प्रयोजनो तथा क्षेत्रों

की रक्षा के अतिरिक्त अन्य किन्हीं भी प्रयोजनों के लिए, देशी (native) लोगों को सैनिक प्रशिक्षण देना रोका जा सके एवं राष्ट्रसंघ के अन्य सदस्यों को व्यापार और वाणिज्य के लिए समान अवसर भी प्राप्त हो सकें।

ऐसे भी क्षेत्र हैं—जैसे दक्षिण पश्चिम अफ्रीका और कुछ दक्षिण प्रशांत द्वीप—जो जनसंख्या के छितरे होने के या छोटे होने या सभ्यता के केन्द्रों से दूर पड़ जाने अथवा संरक्षक-राज्य के क्षेत्र से भौगोलिक निकटता तथा अन्य परिस्थितियों के कारण, संरक्षक-राज्य के क्षेत्र के ही अविभाज्य अंगों के रूप में संरक्षक राज्य की विधियों के अनुसार ही भली-भाँति शासित किए जा सकते हैं किन्तु देशी लोगों के हित की दृष्टि से उपर्लिखित सावधानियाँ (safeguards) बरती जानी चाहिए।

हर संरक्षित-राज्य के संबंध में, संरक्षक-राज्य, उसे सौंपे गए क्षेत्र के संबंध में, परिषद् को एक वार्षिक प्रतिवेदन भेजेगा।

संरक्षक राज्य का किस सीमा तक प्राधिकार होगा, वह नियंत्रण या प्रशासन करेगा, इसका निश्चय राष्ट्रसंघ के सदस्यों ने पहिले से ही नहीं कर दिया हो, तो परिषद् हर मामले में यह सीमा स्पष्ट रूप से निश्चित करेगी।

संरक्षक-राज्यों के वार्षिक प्रतिवेदन प्राप्त करने और उनकी जाँच करने तथा संरक्षण कर्त्तव्यों का पालन करने संबन्धी सभी मामलों पर परिषद् को परामर्श देने के लिए एक स्थायी आयोग की नियुक्ति की जाएगी।

महत्त्वपूर्ण घटनाओं की कालक्रमानुसार तालिका

१६१८		
जनवरी	१८	राष्ट्रपति विलसन के चौदह सूत्र
नवबर	११	जर्मनी से विरामसन्धि
१६१६		
जून	२८	जर्मनी से वर्सेलीज की संधि
सितबर	१०	ऑस्ट्रिया से सैन्ट जर्मेन की सधि
नवबर	१७	बलगेरिया से न्यूइलो की सधि
१६२०		
जनवरी	१०	वर्सेलीज-सधि के अनुमोदन का विनिमय राष्ट्रसघ अस्तित्व मे आया
जून	४	हगरी से ट्रिएनाँ की सधि
१६२१		
मार्च	१६	ग्रेट ब्रिटेन और सोवियत रूस में व्यापारिक समझौता
मार्च	१८	पोलैंड और सोवियत रूस में रिगा की सधि
दिसबर	१३	चार-राष्ट्र प्रशात सधि पर वाशिंगटन में हस्ताक्षर
१६२२		
फरवरी	६	नौसैनिक सधि और चीन से सम्बन्धित नौ-राष्ट्र सधि पर वाशिंगटन में हस्ताक्षर
फरवरी	२८	ग्रेट ब्रिटेन द्वारा मिस्र की स्वतन्त्रता को मान्यता
अप्रैल	१६	जर्मनी और सोवियत रूस मे रैपेलो की संधि
१६२३		
जनवरी	११	फ्रासीसी और बेल्जियम सेनाओं द्वारा रूर पर अधिकार
जुलाई	२४	टर्की से लुसाने की सधि
१६२४		
फरवरी	१	ग्रेट ब्रिटेन द्वारा सोवियत सरकार को मान्यता
अगस्त	३०	डेविस समझौतो पर लन्दन में हस्ताक्षर

अक्टूबर २ राष्ट्रसंघ सभा द्वारा जेनेवा-उपसंधि स्वीकार

१९२५

मार्च १० ग्रेट ब्रिटेन द्वारा जेनेवा उपसंधि स्वीकार

दिसम्बर १ लोकार्नो संधियों पर लंदन में हस्ताक्षर

१९२६

सितम्बर १० राष्ट्रसंघ में जर्मनी का प्रवेश

१९२७

जनवरी १ हंकाऊ में चीनी राष्ट्रीय सरकार की स्थापना

दिसम्बर १८ रूसी कम्युनिस्ट पार्टी से ट्रॉट्स्की का निष्कासन

१९२८

अगस्त २७ पेरिस समझौते (ब्रायण्ड केलॉग समझौता) पर हस्ताक्षर

१९२९

अगस्त ३१ हेग सम्मेलन द्वारा यंग योजना का अनुमोदन

१९३०

अप्रैल २२ नौसैनिक संधि पर लंदन में हस्ताक्षर

जून ३० मित्र-राष्ट्र सेनाओं द्वारा राइनभूमि खाली की गई

१९३१

मार्च २१ जर्मनी और ऑस्ट्रिया में चुंगी संघ समझौता

जून २० राष्ट्रपति हूवर द्वारा भुगतान विलंब काल का प्रस्ताव

सितम्बर १९ जापान द्वारा मंचूरिया में सैनिक कार्रवाई का प्रारम्भ

सितम्बर २१ ग्रेट ब्रिटेन द्वारा स्वर्ण-मान का परित्याग

१९३२

फरवरी २ निःशस्त्रीकरण सम्मेलन का प्रारम्भ

जुलाई ६ लुसाने में क्षतिपूर्ति समझौते पर हस्ताक्षर

अगस्त २० ग्रेट ब्रिटेन और अधिराज्यों में व्यापारिक समझौतों पर ओटावा में हस्ताक्षर

अक्टूबर ३ ईराक से ब्रिटिश संरक्षण शासन की समाप्ति

१९३३

जनवरी ३० हर हिटलर जर्मनी का प्रधानमंत्री बना

फरवरी	२४	मंचूरिया संबंधी राष्ट्रसंघ-सभा का प्रस्ताव जापानी प्रतिनिधिमंडल द्वारा सदस्यता-त्याग
जून	१२	विश्व अर्थ-सम्मेलन का प्रारम्भ
अक्टूबर	१४	जर्मनी द्वारा निःशस्त्रीकरण सम्मेलन तथा राष्ट्रसंघ की सदस्यता त्यागने की घोषणा
१९३४		
जनवरी	२६	जर्मन पोलिश समझौते पर हस्ताक्षर
सितम्बर	१८	सोवियत संघ को राष्ट्रसंघ का सदस्य बनाया गया
अक्टूबर	९	मार्सेलीज में यूगोस्लाविया के शासक अलेक्जेंडर की हत्या
१९३५		
जनवरी	७	सिनॉर मुसोलिनी और मोसिये लावाल द्वारा रोम में फ्रांस इटली समझौता पर हस्ताक्षर
मार्च	१६	जर्मनी द्वारा वर्सेलीज-संधि के सैनिक उपबंधों का परित्याग
मई	२	फ्रांसीसी-सोवियत समझौते पर हस्ताक्षर
अक्टूबर	२	इटली की सेनाओं द्वारा अबीसीनिया में प्रवेश
नवंबर	१८	इटली के विरुद्ध आर्थिक अनुशास्तियाँ लगाई गईं
१९३६		
मार्च	७	जर्मनी असैनीकृत क्षेत्र पर पुनः अधिकार
मई	९	इटली द्वारा अबीसीनिया को अपने राज्य में मिलाया गया
जुलाई	४	इटली के विरुद्ध अनुशास्तियाँ हटा ली गईं
जुलाई	१८	स्पेनिश गृहयुद्ध का प्रारंभ
१९३७		
जुलाई	८	जापान द्वारा चीन में अघोषित युद्ध का प्रारंभ
१९३८		
मार्च	१२	जर्मनी द्वारा ऑस्ट्रिया को अपने राज्य में मिलाया गया
सितम्बर	२९	चेकोस्लोवाकिया सम्बन्धी म्युनिक समझौता

१९३९

मार्च	१५	बोहेमिया और मोरेविया पर जर्मनी द्वारा अधिकार
अप्रैल	१	स्पेनिश गृहयुद्ध का अन्त
अप्रैल	७	अलबानिया पर इटली द्वारा अधिकार
मई	२६	ग्रेट ब्रिटेन में अनिवार्य भरती स्वीकार
अगस्त	२३	जर्मन-सोवियत समझौते पर हस्ताक्षर
सितम्बर	१	पोलैंड पर जर्मनी द्वारा चढ़ाई
सितम्बर	३	ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस द्वारा जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा

शब्दावली

अँग्रेजी हिन्दी पर्याय

Abortive treaty	निष्फल संधि
Abrogate	रद्द होजाना
Absolute majority	पूर्ण बहुमत
Abuses	दुष्कार्य
Academic	विद्यालयीय
Acquiescence	मौन सम्मति
Accuser	आरोपक
Act	१. अधिनियम २. कृत्य
Administration of Justice	न्याय प्रशासन
Adverse vote	विपरीत मत
Advisory opinion	परामर्शपूर्ण राय
Afloat	कर्जमुक्त
Agenda	कार्यसूची
Agent	१ अभिकर्ता २ दलाल
Aggression, unprovoked	अकारण आक्रमण
Aggressive action	आक्रमणात्मक कारवाई
Aggressive invasion	आक्रमणात्मक चढाई
Aggressor	आक्रमणकर्ता
Agreement	१ करार, समझौता २ सहमति
Air Pact	वायुसेना समझौता
Air route	वायुपथ

Alcohol	मद्यसार
Alien race	विजातीय लोग
Alienation	१. परकीकरण २. स्वत्वान्तरण
Alleged	कथित
Alliance	१. गुटबदी २. मैत्री
Allied and Associated Power	मित्र और साथी राष्ट्र
Allied Commission	मित्र-राष्ट्रीय आयोग
Allied Commissioner	मित्र-राष्ट्रीय आयुक्त
Allied war debts	मित्र-राष्ट्रों के युद्धकालीन कर्जे
Alphabetical	वर्णक्रमानुसार
Altercation	झड़प
Ambassador's Conference	राजदूत सम्मेलन
American Immigration Act	अमरीकी आप्रवासन अधिनियम
Amour-Propre	आत्माभिमान
Anglo-Saxon	आग्ल-सेक्सन
Annex (v.)	मिला लेना
Annual Conference	वार्षिक सम्मेलन
Annuity	वार्षिकी
Anomalous	विषम
Applicable	प्रभावशील
Application	१. आवेदनपत्र २. लागू होना
Arbitration	पंचनिर्णय
Arbitration treaty	पचनिर्णय सधि
Arbitrator	पंच

Armament	१. शस्त्रास्त्र २ शस्त्रीकरण
Armed action	सशस्त्र कारवाई
Armistice	विराम सधि
Assessment	निर्धारण
Asset	भ्रास्ति
Autocracy	निरकुशता
Autonomous	स्वायत्तशासी
Autonomy	स्वायत्ता
Auxiliary Craft	*सहायक यान*
Axis	धुरी
Balance	सतुलन
Balance of trade	व्यापार सतुलन
Bank of International Settlement	अतर्राष्ट्रीय भुगतान बैंक
Basin	नदी क्षेत्र
Battleship	युद्धपोत
Belligerent	युद्धरत
Belt	कटिबध
Beneficiary	हितग्राही
Bete noir	भ्रांख का कांटा
Big Stick	महा दन्ड
Bill	१ विधेयक २ बिल
Bilateral	द्विपक्षी
Binding	बधनकारी
Black Shame	अश्वेत लज्जा
Blood and treasure	जन धन
Boom period	तेजी

Bond	१ बंधपत्र २ ऋणपत्र
Bond holder	ऋणपत्रधारी
Brigade	ब्रिगेड
Brigandage	लूट-खसोट
Budget	आयव्ययक
Bulwark	मुख्याधार
Bureau	कार्यालय
Business Concern	व्यापारिक प्रतिष्ठान
Cabinet	मन्त्रिमण्डल
Cabinet crisis	मन्त्रिमण्डलीय सकट
Camp	खेमा
Campaign	अभियान
Candour	स्पष्ट भाषण
Capital ship	युद्ध पोत
Capitulation	विमोक
Catholic Church	कैथोलिक धर्माधिकारी
Ceded territories	समापत क्षेत्र
Censure	भर्त्सना
Censure, vote of	भर्त्सना प्रस्ताव
Chamber of Deputies	प्रतिनिधि सभा
Champion	पक्षधर
Chancellor	प्रधानमन्त्री
Chancellor of the Exchequer	वित्त मन्त्री
Charge	ऋणभार
Civil	१ असैनिक २ नागरिक
Civil political leader	असैनिक राजनैतिक नेता

Civil servant	असैनिक कर्मचारी
Civil war	गृह-युद्ध
Classic	शास्त्रीय
Clerk	लिपिक
Cogent	प्रबल
Cognate race	सजातीय जाति
Colonial superiority	उपनिवेशीय श्रेष्ठता
Colonisation	उपनिवेशीकरण
Coloured	अश्वेत
Commission	आयोग
Commission on chemical warfare	रासायनिक युद्ध आयोग
Commissioner	आयुक्त
Committee	समिति
Committee on Arbitration and Security	पचनिर्णय और सुरक्षा समिति
Common action	सामूहिक कार्रवाई
Common fear	सामान्य भय
Commonwealth of Nations	राष्ट्र-मण्डल
Communications (Pl.)	अड्डे और मोर्चे
Communist International	अन्तर्राष्ट्रिक कम्युनिस्ट सस्था
Community	समुदाय
Community of states	राज्य समाज
Compact group	सुगठित समूह
Compensation	क्षतिपूर्ति
Competitive power	प्रतिद्वन्द्विता शक्ति
Concentration camp	नजरबन्दी शिविर

Concession	१ रियायत २ सुविधा क्षेत्र
Conciliation	समझौता
Conditional	सशर्त
Condominium	मिश्र अधिकार
Congress	महासभा
Connivance	उपेक्षा
Conscription	अनिवार्य भर्ती
Conservative	अनुदार
Constitutional	सांवैधानिक
Contemporary history	सामयिक इतिहास
Continued	सतत
Contractual obligation	करारिक उत्तरदायित्व
Convention	समझौता
Corridor	गलियारा
Council	परिषद्
Council, supreme	सर्वोच्च परिषद्
Counter-boycott	प्रत्युत्तर बहिष्कार
Counter offensive	प्रत्युत्तर आक्रमण
Counter measures	प्रति उपाय
Counter part	प्रतिरूप
Counter-proposal	प्रत्युत्तर प्रस्ताव
Counter stroke	प्रति-प्रहार
Coup	राज्यहरण
Court of International Justice	अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय
Covenant	१ अनुबन्धपत्र २. अनुबन्धन
Credit	साख

Creditor	लेनदार
Crisis	सकट
Crown	सम्राट
Cruiser	गश्ती जहाज
Customs area	चुङ्गी क्षेत्र
Customs barrier	चुङ्गी नाका
Day-to-day	दैनेदिन
Deadlock	गतिरोध
Debacle	पतन
Debit and credit	नामे और जमा
Debt	कर्ज
Debtor country	कर्जदार देश
Decade	दशक
Decree	आज्ञप्ति
Defection	कर्त्तव्यविमुखता
Defence	प्रतिरक्षा
Defendant	प्रतिवादी
Defensive	प्रतिरक्षात्मक
Defensive alliances	प्रतिरक्षात्मक गुटबन्दियाँ
Defensive warfare	प्रतिरक्षात्मक युद्ध
Definitive	अन्तिम
Degraded	अवनत
Deliberations	विचार विमर्श
Delinquency	पथभ्रष्टता
Deliveries in kind	वस्तु-भुगतान
Demand	माँग
Demilitarisation	असैनीकरण
Democratic Party (U. S. A.)	डेमोक्रेटिक पार्टी

Democratic republic	प्रजातान्त्रिक गणतन्त्र
Denunciation	रद्द किया जाना
Dependency	अधीन राज्य
Destitution	अकिंचनता
Destroyer	विध्वंसक
Detachment	सैनिक टुकड़ी
Deterrent	रोधक
Deterrent value	रोधक मूल्य
Devoid of Capital	पूँजीहीन
Dialect	बोली
Dictated peace	आरोपित शांति
Dictatorship	तानाशाही
Diplomacy	कूटनीति
Diplomatic configuration	कूटनीतिक नक्शा
Diplomatic relations	दौत्य संबंध
Diplomatic representative	कूटनीतिक प्रतिनिधि
Directing influence	निर्देशक प्रभाव
Director	संचालक
Director, Council of	संचालक परिषद्
Disaffected	१ अनिष्ठावान २. असंतुष्ट
Disagreement	असहमति
Disarmament	निःशस्त्रीकरण
Disband	विघटित करना
Discretion	स्वविवेक
Discriminatory	विभेदात्मक
Dismemberment	विखंडन
Dispersed	विसर्जित
Dispossessed	हृतधन

Disturbing forces	विक्षोभकारी शक्तियाँ
Document	दस्तावेज, आलेख
Dollar Imperialism	डॉलर साम्राज्यवाद
Domestic revolution	गृह क्रांति
Domestic safety	गृह सुरक्षा
Dominion	अधिराज्य
Downward race	क्षिप्र ह्रास
Draft	प्रारूप
Due	देय
Dummy convention	सत्याभ समझौता
Earmarked	विशेषांकित
Eastern Pact	पूर्वीय समझौता
Easy going	आत्म संतुष्ट
Economic breakdown	अर्थ व्यवस्था भंग
Economic nationalism	आर्थिक राष्ट्रीयतावाद
Economic outlet	आर्थिक बहिर्मार्ग
Economic union	आर्थिक संघ निर्माण
Embargo	रोक
Empty gesture	धौंस
Encroachment	अतिक्रमण
Enlarged	वर्धित
En route	मार्ग में
Entomology	मानव वंश-विज्ञान
Equittable	न्याय्य
European Union	योरोपीय संघ
Eventually	अंतत.
Ex-allies	भूतपूर्व मित्रो
Exchequer	राजकोष
Executive power	कार्यपालन शक्ति
Exonerating	दोषमुक्त कर

Expedient	इष्टकर
Exporter	निर्यातकर्ता
Export subsidy	निर्यात सहायता
Extract	उद्धरण
Extra-territorial	(राज्य) क्षेत्रातीत
Extra-territorial Jurisdiction	क्षेत्रातीत अधिकार
Factor	घटक
Fallacy	भ्रांति
Fascist	फासिस्ट
Fatherland	पितृभूमि
Federal	सघीय
Feud	आपसी झगडे
Fiasco	विफलता
Fitful	सतत
Flagging	ह्रासमान
Flagrant	निंदास्पद
Fleet	बेडा
Flight	पलायन
Foot-Note	पाद टिप्पणी
Forces of reaction	प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ
Formal	औपचारिक
Formally	१ विधिवत् २. नियमानुसार
Fortunes of war	युद्धश्री
Forward policy	अग्रगामी नीति
Four-Power-Pact	चार-राष्ट्र समझौता
Fourteen Points	चौदह सूत्र
Franco-Soviet Alliance	फ्रांस-सोवियत गुटबंदी
Free city	स्वतन्त्र नगर

Free trade	अबाधित व्यापार
Freest possible	यथासभव निर्बाध
Frontier post	सीमात चौकी
Front Populaire	लोक मोर्चा
Fuhrer	नात्सी नेता
Fundamental	मूलभूत
Fundamental issue	मूलभूत प्रश्न
Garrison	नगर रक्षक सेना
General Act for the Pacific Settlement of International Disputes	अन्तर्राष्ट्रीय विवादो के शातिपूर्ण समाधान के लिए सामान्य अधिनियम
General Staffs	सेनपति सहायकगण
Gold bloc	स्वर्ण-गुट
Gold parity	स्वर्ण-तुल्यता
Gold reserve	स्वर्ण-कोष
Governor	राज्यपाल
	(बैंक) अध्यक्ष
Governing body	प्रबन्धकारिणी
Governing Commission	शासी आयोग
Great Power	बडा राष्ट्र
Great Wall	महान् भित्ति
Head quarter	मुख्यालय
High Commissioner	उच्च आयुक्त
His Majesty's Government in the United Kingdom and Northern Ireland	ग्रेट ब्रिटेन और उत्तरी आयर्लैंड के सयुक्त राज्य की सम्राट् की सरकार

Holly Alliance	ईसाई देश गुटबंदी
Hostile Land	शत्रुभूमि
House of Commons	लोकसभा (ब्रिटिश)
Humanitarian	मानवतावादी
Idealism	आदर्शवाद
Immigrant	आप्रवासी
Immigration	आप्रवासन
Imminent	आसन्न
Imperial	साम्राज्यिक
Improvident	अमितव्ययी
Incipient	प्रारंभ हुए
Inflation	मुद्रास्फीति
Insoluble	असमाधेय
Instructor	अनुदेशक
Instrument	लेख
Integrity	अखंडता, अखंड
Inter alia	और बातो के साथ ही साथ
Inter allied debts	मित्र राष्ट्रो के आपसी कर्ज
Inter Allied High Commission	अन्तर्मित्र-राष्ट्रीय उच्च आयोग
Inter-Governmental	अन्त् सरकारी
Inter-war history	अन्तर्युद्ध इतिहास
Inter-dependence	अन्योन्याश्रय सम्बन्ध
Interest	हित
Interior	अन्तप्रदेश
Interpretation	निर्वचन
Intervening country	हस्तक्षेपकर्ता देश
Invested	विनियोजित
Investing public	विनियोजक जनता

Investor	विनियोजक
Ipso facto	स्वरूप से ही
Irredentism	पुनर्प्राप्तिवाद
Irrevocably	अपरिवर्तनीय रूप से
Joint Sovereignty	संयुक्त राजप्रभुता
Jurisdiction	क्षेत्राधिकार
Key product	आधार उत्पादन
Kingdom	राजतन्त्र
Laissez faire	अबाधा
Landlocked	भूवेष्टित
Latin Great power	लैटिनी बड़ा राष्ट्र
League of Nations	राष्ट्रसंघ
Leased territory	पट्टाश्रामित क्षेत्र
Left Wing	वामपथी दल
Leftist	वामपथी
Legal conundrum	कानूनी पेंच
Legalisation	वैधकरण
Legality	वैधता
Legally	विधितः
Legation	उपदूतावास
Legion	सेना
Legislation	विधान
Legitimate	वैध
Lesser States	छोटे-छोटे राज्य
Lesser Power	अल्प महत्त्वपूर्ण राष्ट्र
Limitation	सीमन
Limitation treaty	सीमन-संधि

Limited Naval Conference	सीमित नौसैनिक सम्मेलन
Linguistic	भाषिक
Little Entente	लघुमैत्री-सघ
Majority	१. बहुमत २. बहुसख्यक
Mandatory Power	संरक्षणकर्ता राष्ट्र
Mandatory system of Government	संरक्षणात्मक शासन-प्रणाली
Matter of procedure	नियमिक मामला
Measure of value	मूल्यमान
Mediator	मध्यस्थ
Mein Kampf / My struggle	मेरा सघर्ष
Memorandum	ज्ञापन ; स्मरण-पत्र
Men on services	सेवारत सैनिक
Merchant man	वाणिज्यपोत
Metallurgical industry	धातु उद्योग
Military age	रण सेवा योग्य आयु
Military autocracy	सैनिक निरकुशता
Military Convention	सैनिक समझौता
Military machine	सैनिक सगठन
Military Occupation	सैनिक अधिकार
Military threat	सैनिक खतरा
Military value	सैनिक महत्त्व
Milliard	अरब
Mining district	खनिज जिला
Minister for League of Nations Affairs	राष्ट्रसघ मामलो के मन्त्री

Minority treaty	अल्पसंख्यक संधि
Missionary zeal	प्रचारकोचित उत्साह
Monarchy	राजतंत्र
Moratorium	चुकान विलंब काल
Mortgage	बंधक
Most favoured nation	सर्वाधिक अनुगृहीत राष्ट्र
Multilateral	बहुपक्षीय
Multiplicity	विविधता
Municipality	नगरपालिका
National	१ राष्ट्रीय २. राष्ट्रवासी
National Assembly	राष्ट्रीय-सभा
National consciousness	राष्ट्रीय चेतना
National home	मातृभूमि
National Socialism	राष्ट्रीय समाजवाद
Nationalism	राष्ट्रवाद
Nationalist party	राष्ट्रवाद पार्टी
Nationalities	राष्ट्र-जातियाँ
Native	देशी
Native State	देशी राज्य
Natural inferiority	प्राकृतिक हीनता
Naval	१. नौसैनिक २. समुद्री
Naval base	समुद्री अड्डा
Naval disarmament	नौसैनिक नि:शस्त्रीकरण
Naval Power	नौसैनिक राष्ट्र
Naval Supremacy	सामुद्रिक प्रभुत्व
Naval treaty	नौसैनिक-संधि
Navigation	सामुद्रिक आवागमन

Nazi Revolution	नात्सी क्रांति
Near East	निकटपूव
Negative policy	नकारात्मक नीति
Negligence	प्रमाद
Negotiation	चर्चा
Neutral	तटस्थ
Neutrality Act	तटस्थता अधिनियम
New Deal	नया कार्यक्रम
Nomad	खानाबदोश
Nomadic population	खानाबदोश आबादी
Non aggression pact	अनाक्रमण समझौता
Non capital ship	युद्धपोत भिन्न जहाज
Non committally	वचनबद्ध न करते हुए
Non European World	गैर योरोपीय ससार
Non existent	अविद्यमान
Non intervention	अहस्तक्षेप
Non legal	अवैध
Non Nazi	नात्सी भिन्न
Non-recognition	अमान्यता
Non territorial	क्षेत्रतर
Noxious gases	हानिकर गैस
Numerical scheme	साख्यिक योजना
Obligation	१. बाध्यता २. दायित्व
Obligatory	बाध्यकर
Observer	पयवेक्षक
Occupied area	अधिकृत क्षेत्र
Odium	बुरामत
Offensive	आक्रमणात्मक कारवाई

Official	१. अधिकारी २. (name) अधिकृत
On account	आंशिक भुगतान
Optional Clause	ऐच्छिक धारा
Ordinance	अध्यादेश
Organ of publicity	प्रचार साधन
Organic fusion	आवयविक एकीकरण
Organisation	सगठन
Organised resistance	सगठित मुकाबला
Oriental	पौर्वात्य
Original decline	मूल ह्रास
Outer	बहिर
Outlawed	विधिबहिष्कृत
Outlawry of war	युद्ध का विधि बहिष्कार
Outlying	दूरस्थ
Outpost	चौकी
Outstanding	शेष , बकाया
Overgrown	अतिवर्द्धित
Over-riding factor	अधिभूत कारण
Overruled	अमान्य कर दिया
Pacific Islands	प्रशांत द्वीप
Pacifist	शांतिवादी
Pacifist doctrine of non resistance	शांतिवादी सत्याग्रह सिद्धान्त
Pact of alliance	मैत्री-समझौता गुटबन्दी समझौता
Pact of reconciliation	पुनर्मैत्री समझौता
Pairs of states	दो दो राज्य
Pan American	अखिल अमरीकी

Panel	क्रमसूची
Paper money	पत्र मुद्रा
Paradoxical	परस्पर विरोधी
Parallel	समातर
Paramount	सर्वोपरि
Parliament	ससद्
Parliamentary Democracy	संसदीय प्रजातन्त्र
Parliamentary system	ससदीय शासन-व्यवस्था
Passive resistance	निष्क्रिय प्रतिरोध (सत्याग्रह)
Patrol	गश्तीदल
Peace by force	शक्ति द्वारा शाति स्थापित करना
Peace Conference	शाति-सम्मेलन
Peacemaker	शाति-स्थापक
Peace Settlement	शाति-समझौता
Peak figure	शिरो सख्या
Penal	दाडिक
Penalty	१. दड २. शास्ति
Pending	विचाराधीन
Pensioner	निवृति वेतनभोगी
Period of crisis	सकट काल
Period of enforcement	प्रवतन-काल
Period of optimism	आशावाद काल
Period of pacification	शातिकरण-काल
Perplexing	आकुलताकारी
Persecute	सपीडित करना
Petition	याचनापत्र, प्रार्थनापत्र
Physical guarantee	भौगोलिक गारन्टी
Place of refuge	आश्रय स्थान

Plebiscite	जनमत
Point of detail	विषय-विस्तार
Point of law	विधि प्रश्न
Pointedly	सूत्र रूप में
Police operations	पुलिस कार्रवाई
Politcal immaturity	राजनैतिक अपरिपक्वता
Political or social regime	राजनैतिक या सामाजिक-व्यवस्था
Polygot	बहुभाषाभाषी
Positive resistance	ठोस प्रतिरोध
Possessions	अधीन प्रदेश
Postscript	उत्तरलेख
Potential	सभाव्य
Potentially	सभाव्यत
Power	१. शक्ति २. राष्ट्र
Power, Great	बडा राष्ट्र
Precarious balance	खतरनाक सतुलन
Precedent	पूर्वोदाहरण
Predecessor	पुरोगामी
Preference	अधिमान
Preferential	अधिमानात्मक
Preparatory Commission for Disarmament Conference	नि शस्त्रीकरण सम्मेलन-तैयारी आयोग
Pre war	युद्ध पूर्व
Price control	मूल्य नियत्रण
Primitive	आदिम जातीय
Private enterprise	निजी उद्योग
Privy	गुप्त सहकारी

Probationary period	परीक्षावधि
Productive guarantee	उत्पादक गारन्टी
Professional	व्यावसायिक
Prohibition	निषेध, मनाही
Prohibitive visa fee	निषेधात्मक विसा फीस
Pro Germany	जर्मन पक्षी
Proletariat	सर्वहारा
Prosecutor	अभियोक्ता
Protection of labour	श्रमिकों को संरक्षण
Protectorate	रक्षित राज्य
Protestant	प्रोटेस्टेंट धर्मानुयायी
Protocol	१. पूर्वपत्र २. उपसंधि
Protocol for the Pacific Settlement of International Disputes	अंतर्राष्ट्रीय विवादों के शांतिपूर्ण समाधान के लिए उपसंधि
Provision	१. उपबंध (अधिनियम) २. व्यवस्था (अधिनियम)
Provocative	उत्तेजनात्मक
Public debt	लोक ऋण
Public opinion	लोकमत
Puppet Government	कठपुतली सरकार
Purchasing power	क्रय शक्ति
Purge	शुद्धि
Pusillaminous attitude	दब्बू रुख
Questionnaire	प्रश्नावली
Quiescent	अक्रियाशील
Quota	परिमाण निर्धारण

Race	मूलजाति
Racial	मूलजातिक
Radical	क्रांतिवादी
Radical ministry	उग्र मन्त्रिमंडल
Rapid	त्वरित
Ratification	अनुसमथन
Reactionary	प्रतिक्रियावादी
Rearmament	पुनर्शस्त्रीकरण
Rearmament on land	थलसेना का पुनर्शस्त्रीकरण
Rearrangement	पुनर्व्यवस्थापन
Receipt	१. प्राप्ति २. आय
Reciprocal Trade Agreement Act	पारस्परिक व्यापारिक समझौता अधिनियम
Reconciliation	पुनर्मैत्री
Recurrence	पुनरावृत्ति
Redeemable	विमोच्य
Reduced	अल्पीकृत
Re election	पुनर्निर्वाचन
Re emergence	पुनरुद्भव
Regent	राजप्रशासक
Regional	प्रादेशिक
Regional understanding	प्रादेशिक समझौता
(to) Register	पंजीयित करना
Regulation	विनियमन
Reichsbank	(जर्मनी की) राज्य बैंक
Reichstag	(जर्मनी की) लोकसभा
Reinforcement	कुमुक
Relief	राहत

Relief bond	राहत ऋणपत्र
Reluctance	आनाकानी; अनिच्छा
Renewed	नवकृत
Reorganisation	पुनर्सगठन
Reparation	क्षतिपूर्ति
Reparation Commission	क्षतिपूर्ति आयोग
Reparation Powers	*क्षतिपूर्तिग्रहीता राष्ट्र*
Repercussion	प्रतिप्रभाव
Repetition	पुनरावृत्ति
Report	प्रतिवेदन
Representation	अभ्यावेदन
Reprisal	प्रतिशोध
Repuplic	गणतंत्र
Republican party	रिपब्लिकन पार्टी
Repudiation	१. परित्याग २. अस्वीकार
Requirements	अपेक्षाएँ
Research work	खोज कार्य
Reserve	१. रक्षित सेना २. सनिति (Currency)
Restored	पुनर्स्थापित
Restriction	निर्बन्धन
Return of power politics	शक्ति-कूटनीति का पुनः आरंभ
Revenue receipt	राजस्व आय
Revisionism	१. पुनरुत्थानवाद २. सशोधनवाद
Revival	पुनरुत्कर्ष
Revolution	क्रांति
Revolutionary	क्रांतिकारी

Rift	फूट
Right wing	दक्षिणपंथी दल
Ring	घेरा
Rival	प्रतिद्वन्द्वी
Rival grouping	प्रतिद्वन्द्वात्मक गुटबंदी
Round up	धरपकड़
Routine activity	नैत्यक गतिविधि
Royal Commission	शाही आयोग
Royalist	राजावादी
Rubric	शीर्षक
Ruling	सत्तारूढ़
Rupture	विग्रह
Sacred trust of civilization	सभ्य देशों का पवित्र कर्त्तव्य
Sanction	अनुशास्ति
Satellite	पिछलग्गू
Satellite cities	*अनुयायी नगर*
Schedule of payment	भुगतान कार्यक्रम
Second place	गौण स्थान
Secretariat	सचिवालय
Secretary General	महा सचिव
Secretary of state	मंत्री
Security	१. प्रतिभूति २ सुरक्षा
Security, demand for	सुरक्षा मांग
Self determination of peoples	जनता द्वारा आत्म निर्णय
Self governing	स्वशासी

Semi barbarian	आधे जंगली
Semi independent	अर्ध स्वतंत्र
Senior	वरिष्ठ
Separatist	पार्थक्यवादी
Sequel	अनुपरिणाम
Settlements	बस्तियाँ
Sheet anchor	अंतिम आश्रय
Short term borrowing	अल्पकालीन ऋण
Signatory	हस्ताक्षर-कर्ता
Signed	हस्ताक्षरित
Silent evasion	अप्रकट उल्लंघन
Sinfulness of war	युद्ध पाप
Skirmish	मामूली भिडन्त
Slavery convention	दासता समझौता
Slump	मंदी
Social services	समाजोपयोगी सेवाएं
Socialist	समाजवादी
Solvency	हैसियत
Sovereignty	सप्रभुता
Soviet	सोवियत
Speculator	सट्टे बाज
Spiritual autobiography	उच्चादर्शपूर्ण आत्मचरित
Sporadic outbreaks	छुटपुट घटनाएँ
Stabilisation	स्थिरीकरण
Standard Maximum	प्रामाणिक अधिकतम
State bank	राज्य बैंक
State machine	प्रशासन तंत्र
State monopoly	राज्य का एकाधिकार
State of war	युद्धस्थिति

State regulation	राज्य द्वारा विनियमन
Statement of policy	नीति वक्तव्य
Statesmanship	राजनीतिकुशलता
Status	स्थिति
Status Quo	पूर्व स्थिति
Statute	विधान
Statute of Westminister	वेस्टमिनिस्टर विधान
stipulate	ठहराव करना
Storm centre	विक्षोभ केन्द्र
Straits	जलडमरूमध्य
Strategic importance	सामरिक महत्व
Struggle for power	शक्ति संघर्ष
Subjects	प्रजा
Sub marine	पनडुब्बी
Submission	समर्पण
Subsequent	परवर्ती
Subsidy	आर्थिक सहायता
Suburb	उपनगर
(to) Superintend	अधीक्षण करना
Supernational	अधिराष्ट्रीय
Supernational military force	अधिराष्ट्रीय सेना
Supplementary	पूरक
Supreme Command	सर्वोच्च कमान
Supreme Court	सर्वोच्च न्यायालय
Surgical operation	शल्य क्रिया
Surtax	अधिकर
(to) Suspend	विलंबित करना
Suzerainty	प्रभुत्व

Tacit	मौन
Tactics	पैंतरा
Tangled question	पेचीदा प्रश्न
Tantamount to	के बराबर
Tariff	आयात-निर्यात-कर
Tariff protection	आयात निर्यात कर-संरक्षण
Tarrif truce	अस्थायी आयात निर्यात-कर समझौता
Technical	प्राविधिक
Technical sub-commission	प्राविधिक उप आयोग
Temporary Mixed Commission	अस्थायी मिश्र आयोग
Territorial waters	क्षेत्रिक सागर
Term	१. अवधि २ निबंधन
Time honoured	समयादृत
Title	हक
Tonnage	टन परिणाम
Trade Mission	व्यापारिक शिष्टमंडल
Tranquility	शांति
Transaction	लेन देन
Transfer	१. स्थानांतरण २. हस्तांतरण
Transition	संक्रमण
Transport	परिवहन
Treasury view	राजकोष दृष्टिकोण
Treaty of Arbitration	पंचनिर्णय संधि
Treaty of Mutual Assistance	परस्पर सहायता संधि
Treaty of peace	शांति संधि

Treaty prohibition	संधि निषेध
Treaty-veto	संधि निषेध
Tribunal	न्यायाधिकरण
Trio	त्रिगुट
Tripartite	त्रिपक्षीय
Trustee	न्यासी
Unacceptable	अस्वीकार्य
Un-American	अमरीकी परम्परा के विरुद्ध
Unanimity rule	निर्विरोध नियम
Unanimous	निर्विरोध
Unanimously agree	एकमत होजाना
Undefined	अनिश्चित
Unequal treaty	असमान संधि
Undertaking	आश्वासन
Undesirable	अवाछनीय
Undisclosed	अप्रकट
Unexpected	अप्रत्याशित
Unified	एकीकृत
Uninhabited	निर्जन
Union of Soviet Socialist Republics	सोवियत समाजवादी गणतन्त्र संघ
Unit	१. इकाई २. (Nil) यूनिट
United	संयुक्त
Unifed States of America	संयुक्त राज्य अमरिका
United States of Europe	योरोपीय संयुक्त राज्य
Universal	सार्वदेशिक
Unjustifiable	अन्याय्य

Unless otherwise expressly provided	जब तक कि स्पष्ट रूप से अन्यथा उपबंधित न किया गया हो
Unlimited	असीमित
Unofficial	असरकारी
Unofficial name	असरकारी नाम
Unremunerative	अलाभदायी
Unrestricted	१. निर्बन्धनहीन २. अबाधित
Untenable position	असमर्थनीय स्थिति
Unwelcome	अरुचिकर
Upper	उपरि
Uppermost	सर्वोपरि
Up to-date	अद्यावधिक
Usage	प्रथा
Vacillating	ढुलमुल
Valid	वैध
Vengeance	प्रतिशोध
Vicious circle	कुचक्र
Victim of aggression	आक्रमण का शिकार
Violation	अतिक्रमण
Volte face	उथल पुथल
Vulnerable	जेय
War Criminal	युद्ध अपराधी
War debt	युद्ध कर्ज
War guilt	युद्ध अपराध
War indemnity	युद्ध-क्षतिपूर्ति
Warlike	युद्धसम
Wartime gain	युद्धकालीन प्राप्ति

Ways and means	अर्थोपाय
Wealthy class	धनिक वर्ग
Well being	कल्याण
White Russia	श्वेत रूस
Without prejudice to	विपरीत प्रभाव डाले बिना ही
World Economic Conference	विश्व अर्थ सम्मेलन
World order	विश्व व्यवस्था
Wounded to the quick	गहरी चोट पहुँचाई
Zenith	चरम शिखर
Zone	क्षेत्र